प्रकाशक

दिल्ली सारस्वत संघ

नई दिल्ली

"वत्स, इस जगत का उपादान कारण अभाव और अशांति है। संयोग-वियोग, रोग-शोक, सुख-दुख, विरह-विच्छेद इस संसार की अनिवार्य और नित्य नैमित्तिक घटनाएं हैं। ये कभी भी दूर नहीं हो सकती। ये सब किसी की भी दूर नहीं हुईं। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण को सखा रूप में पाकर भी पाण्डवों की व्यावहारिक दुर्गति दूर नहीं हुई थी। ये अनिवार्य हैं। दूर करने का प्रयास करने पर इनकी मात्रा बढ़ती ही जायेगी, कम नहीं होगी। साधुओं, शास्त्रों और श्रीगुरुदेव के श्रीमुख से इस सत्य की उपलब्धि करके धैर्यपूर्वक प्रारब्ध का भोग करने की शिक्षा लेना ही प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है। यदि एक पैसा देकर किसी दुखी का दुख दूर नहीं कर सकते तो उसके दुख से दुखी बनो। उसके दुख की वेदना अपने हृदय में अनुभव करना और उसके प्रति सहानुभूतिशील होना ही सभी गृहस्थों का धर्म है।"

श्रीमत् स्वामी निगमानन्द
परमहंस देव
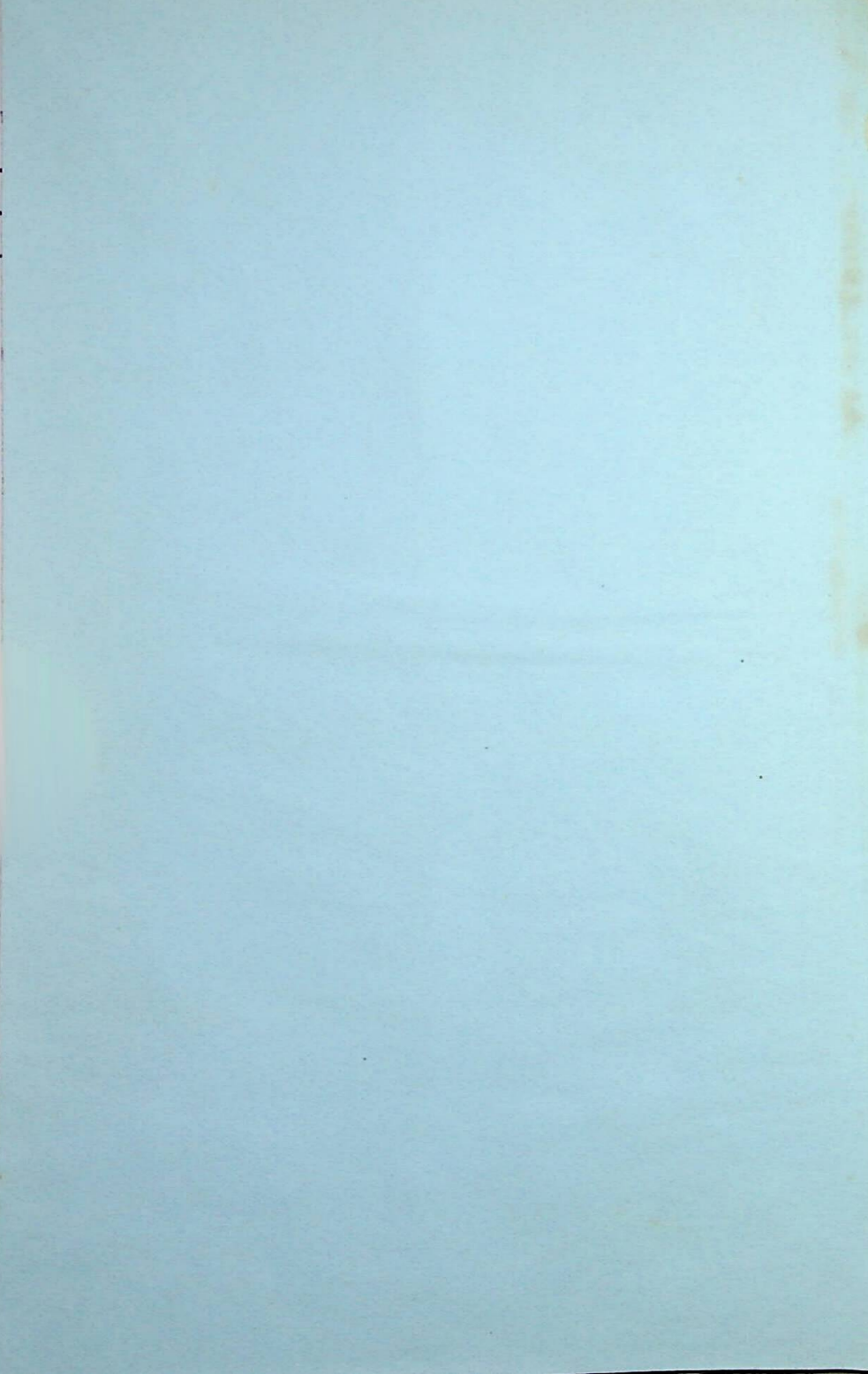
त्वमेव माता च पिता त्वमेव,

त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव,

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,

त्वमेव सर्वं मम देवदेव ।

SADAGURU NIGAMANANDA

Publisher :
DELHI SARASWAT SANGHA,
C-44, Green Park,
New Delhi-110016
(For and on behalf of Nilachal Saraswat Sangh, Puri)

Year of Publication 1990

Place of availability :
Delhi Saraswat Sangh,
C-44, Green Park,
New Delhi-110016
And
Nilachal Saraswat Sangh,
Sat Siksha Asan Mandir,
Plot No A-4, Unit-9,
Bhubaneswar-751007

Cover Design :
Prof. Jagannath Dash,
Department of Anthropology,
Utkal University,
Vani Vihar, Bhubaneswar-4
And
Miss Alaka Bhatnagar,
Sarojini Nagar, New Delhi-23

Printed by :
M/s SARADA PRINTERS
A-1/281, Hastsal Road,
Uttam Nagar, New Delhi-110059

Price Rs. 50-00 only

सदगुरु निगमानन्द

लेखक

श्री बनमाली दाश

और

श्री दुर्गा चरण महान्ति

हिन्दी रूपान्तर

श्री दुर्योधन प्रधान

प्रकाशक

दिल्ली सारस्वत संघ

नई दिल्ली

सद्गुरु निगमानन्द

प्रकाशक :

दिल्ली सारस्वत संघ

सी-४४ ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-१६
(नीलाचल सारस्वत संघ, पुरी के लिए और उनकी ओर से)

प्रकाशन वर्ष १९९०

प्राप्ति स्थान :
दिल्ली सारस्वत संघ,
सी-४४, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-११००१६
और
नीलाचल सारस्वत संघ,
सत शिक्षा आसन मन्दिर,
प्लाट नं० ए-४, यूनिट-९, भुवनेश्वर-७५१००७

कवर डिजाईन :
प्रो० जगन्नाथ दाश,
नृतत्त्व विभाग, उत्कल विश्वविद्यालय,
वाणी विहार, भुवनेश्वर-४
और
कुमारी अलका भटनागर,
सरोजिनी नगर, नई दिल्ली-२३

मुद्रक :
शारदा प्रिंटर्स
ए-1/281, हस्तसाल रोड, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059

मूल्य : पचास रुपए केवल

हिन्दी संस्करण की भूमिका

सत्यं शिवं सुन्दरं प्रसन्नं ज्ञान विग्रहम ।
करुणानिलयं शान्तं सदगुरुं प्रणमाम्यहम ।।

जगत पिता की सृष्टि में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और मनुष्यत्व की साधना ही सर्वश्रेष्ठ साधना है। इच्छा करने पर यही मनुष्य देवत्व, ईश्वरत्व और ब्रह्मत्व तक प्राप्त कर सकता है। संसार में सच्चे मनुष्यों का अभाव है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सच्चे मनुष्य की विशेष आवश्यकता होती है। केवल मनुष्य शरीर धारण करने पर कोई मनुष्य नहीं बन जाता है। मनुष्यत्व प्राप्त करने के लिए साधना करनी होती है। मनुष्यत्व को साधना को संसार के विभिन्न धर्मों ने भिन्न-भिन्न नाम दिए हैं। फिर भी सब का मूल उद्देश्य एक है। इस पर विशेष प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है।

इस पुस्तक में देवमानव श्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव का जीवन चरितामृत है जिन्होंने सामान्य मनुष्य के रूप में जन्म लेकर अपनी साधना शक्ति से देवत्व, ईश्वरत्व और ब्रह्मत्व प्राप्त किया है। मात्र तीन वर्ष की अल्पावधि में ही तन्त्र, ज्ञान, योग और प्रेम की साधनाओं

में चरम सिद्धि प्राप्त करने के बाद उन्होंने स्वयं को जनसेवा में नियोजित कर दिया और बुलन्द आवाज से घोषणा की कि मैं मनुष्य को ब्रह्मत्व की उपलब्धि करने का सहज और सुगम उपाय बता सकता हूं। प्रत्येक मनुष्य को मनुष्यत्व प्राप्त करने का अधिकार है। इसके लिए उसे किसी साम्प्रदायिक भाव से नहीं बन्धना पड़ेगा अथवा घर संसार छोड़ कर जंगल में तपस्या निरत नहीं होना पड़ेगा। इसी दैनंदिन जीवन यात्रा के चलते भगवत भाव की पूर्ण उपलब्धि हो सकेगी। साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि आज संसार में संन्यास धर्म की नहीं अपितु गार्हस्थ्य धर्म की विशेष आवश्यकता है। संसार में सद गृहस्थ होंगे, तो उनके घरों में पुनः व्यास, वशिष्ठ, शंकर, गौरांग जैसे महापुरुष जन्म लेंगे। गृहस्थाश्रम चारों आश्रम में से श्रेष्ठ है इस गृहस्थाश्रम की पुनर्जागृति के लिए उन्होंने कुछ अभिनव और सरल उपाय प्रदर्शित किए हैं। वे स्वयं आदर्श गृहस्थ थे। इसलिए आदर्श गृहस्थ जीवन की महान उपलब्धि पर उन्हें पूर्ण विश्वास है।

यह पुस्तक अपने मूल रूप में सर्व प्रथम उड़िया में लिखी गई थी। इस बीच मूल उड़िया पुस्तक के छः संस्करण प्रकाशित किए जा चुके हैं।

हमारे टाटानगर (जमशेदपुर) संघ के कुछ श्रद्धालु भक्तों ने राष्ट्रभाषा हिन्दी में इसे प्रकाशित करने की आवश्यकता अनुभव की ताकि हिन्दीभाषी क्षेत्र के श्रद्धालु जन प्रभुश्री निगमानन्द देव द्वारा प्रचारित तथा प्रवर्तित

भावधारा को समझ सकें और उसे अपने जीवन में उतार कर आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर सकें। इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने वर्ष १९७३ में इसका प्रथम हिन्दी संस्करण प्रकाशित किया जो एक सराहनीय प्रयास था। यह पुस्तक उसका संशोधित संस्करण है।

इस पुस्तक की विषयवस्तु के बारे में कुछ लिखना अनावश्यक है, क्योंकि महापुरुषों का जीवन-चरित मध्याह्न सूर्य की तरह स्वयं ही प्रकाशमान है। फिर भी प्रभुश्री के जीवन चरित के अतिरिक्त इस पुस्तक में जिन बातों की अवधारणा की गई है, उनमें भाव लोक के स्वरूप, मृत्यु और परलोक तत्व, सर्व धर्म समन्वय, आदर्श गृहस्थ जीवन उपलब्धि, संघ शक्ति की प्रतिष्ठा और भगवत भाव के आदान प्रदान सम्बन्धी प्रसंग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन लोगों ने आर्थिक सहायता देने के साथ साथ हार्दिक सहानुभूति व्यक्त की है, हम लोग उनके चिर ऋणी रहेंगे। हम लोग श्री भूपेन्द्र कुमार जी पाठक और अन्य दो सज्जनों के प्रति अपना अनन्य आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक इसकी पाण्डु लिपि में संशोधन करने का अनुग्रह किया है। साथ ही हम राज्य हिन्दी प्राध्यापक प्रशिक्षण संस्थान उड़ीसा. भुवनेश्वर के प्रधानाचार्य, डा० शंकरलाल जी पुरोहित के प्रति भी विनम्र कृतज्ञता व्यक्त करते हैं जिन्होंने मूल उड़िया पुस्तक के साथ अनूदित कृति का मिलान कर उसकी त्रुटियों को दूर करने में अपना अमूल्य योगदान दिया है। अन्त में हम शारदा

प्रिंटर्स, उत्तम नगर के कर्मचारियों के प्रति विशेष आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में सीमित समय के भीतर इसके मुद्रण कार्य को पूरा किया है। इन सभी धर्मप्राण व्यक्तियों का सहयोग नहीं रहता, तो सम्भवत: हम इस महान कार्य में जरा भी आगे नहीं बढ़ पाते। हम लोग इन सभी के आध्यात्मिक कल्याण के लिए प्रभुश्री के श्रीचरण कमलों में विनम्र निवेदन करते हैं।

हमने इस पुस्तक में मूल पुस्तक के भाव को यथावत् बनाए रखने का भरसक प्रयास किया है। संभव है, हमारे सीमित ज्ञान के कारण इसमें कुछ त्रुटियां रह गई हों। तथापि हमें विश्वास है कि विद्वान पाठक त्रुठियों के लिए हमें क्षमा करेंगे और स्वधर्म पालन करने का व्रत लेंगे।

किमधिक विस्तरेण,

प्रभुश्री चरणाश्रित
दुर्योधन प्रधान
अध्यक्ष
दिल्ली सारस्वत संघ

नई दिल्ली,
दिनांक ९ फरवरी, १९९०

अनुक्रमणिका

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पांचवां अध्याय

छठा अध्याय

सातवां अध्याय

आठवाँ अध्याय

नवाँ अध्याय

दसवां अध्याय

ग्यारहवां अध्याय

बारहवां अध्याय

तेरहवां अध्याय

चौदहवां अध्याय

पंद्रहवाँ अध्याय

सोलहवां अध्याय

सत्रहवां अध्याय

अठारहवां अध्याय

उन्नीसवां अध्याय

बीसवां अध्याय

इक्कीसवां अध्याय

बाईसवां अध्याय

तेईसवां अध्याय

विग्रहों की सूची

परमहंस श्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव

पहला अध्याय
बाल्य जीवन

ॐ ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीः साक्षिभूतम्,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

अलौकिक प्रतिभा को लेकर जन्म लेने वाले किसी महापुरुष या महान विभूति के सम्बन्ध में कुछ लिखने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि उनका जन्म किस समय हुआ था और उनके आने के पहले देश में कैसी स्थिति थी। जिस समय देश में पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से धर्म, नीति और समाज में विप्लव और असद् आचरणों का बोलबाला था, लोग स्वधर्म का त्याग कर भयावह परधर्म के प्रति बरबस आकृष्ट हो रहे थे, ऐसे ही समय में स्वामी निगमानन्द जी का आविर्भाव हुआ था।

जन्म स्थान

हमारे देश भारत में नदिया जिले से लोग भलीभाँति परिचित हैं। महाप्रभु श्री चैतन्य देव ने इसी नदिया जिले में जन्म लेकर संसार को भगवद् भक्ति और प्रेम-माधुरी का रसास्वादन कराया था। श्रीमन् चैतन्य महाप्रभु के समय से और उसके परवर्ती काल में इस जिले में कितने साधकों, भक्तों और महापुरुषों का जन्म और तिरोभाव हुआ है, उसकी कोई गणना नहीं है। स्वामी निगमानन्द जी का जन्म भी इसी नदिया जिले के मेहर पुर सब-डिवीजन में हुआ था। भैरव नदी उक्त सब-डिवीजन को दो भागों में विभाजित करती है। कुछ समय पूर्व तक

इस नदी के दोनों तटों पर नील के व्यवसायी गोरे लोग रहते थे। इस नदी के पश्चिमी किनारे पर नीलकोठी के दक्षिण में कुतब पुर नामक एक छोटा सा गाँव है। इस गाँव में प्राय: सभी जातियों के लोग रहते हैं। उनमें कुम्हार और मनियार लोगों की संख्या सबसे अधिक है। उस गाँव में अधिकाँश लोग चूड़ियों का व्यापार करते थे। इसलिए उनको सांसारिक सुख–सुविधाओं का अभाव बहुत कम था। मित्रपूजा, मनसा पूजा, दुर्गापूजा आदि तीज–त्यौहारों के सिवाय उन लोगों को धर्म की कोई विशेष जानकारी नहीं थी। वे एक दूसरे से ईर्ष्या करते और द्वेष रखते थे तथा आपस में झगड़ते रहते थे। ऐसे परिवेश में वहाँ पर श्री भुवन मोहन भट्टाचार्य नामक एक नैष्ठिक ब्राह्मण रहते थे।

पितृ परिचय

उस क्षेत्र में भुवन मोहन भट्टाचार्य अपनी सद्वृत्तियों और वंश-मर्यादा के लिए प्रख्यात थे। गांव के सभी लोग उनके परोपकार, विनय और नम्रता से मुग्ध होकर उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति रखते थे। भट्टाचार्य महोदय के हृदय में देवताओं और ब्राह्मणों के प्रति विशेष श्रद्धा थी। वे स्वयं विश्व-विख्यात महायोगी स्वामी भास्करानन्द के शिष्य थे।

मातृ परिचय

कुतब पुर के पास राधाकान्त पुर गांव है। उस गांव में त्रैलोकनाथ चक्रवर्ती नामक व्यक्ति रहते थे। वे एक सम्पन्न सद्गृहस्थ थे। उनकी पुत्री माणिक्य सुन्दरी देवी से भट्टाचार्य महोदय का विवाह सम्पन्न हुआ।

माणिक्य सुन्दरी देवी जिस समय ससुराल आई, उस समय तक उनकी सास स्वर्ग सिधार चुकी थी। इसलिए ससुराल में आने के तुरन्त बाद ही उन्हें गृहस्वामिनी का दायित्व वहन करना पड़ा। देवी माणिक्य सुन्दरी परोपकार परायण और गम्भीर प्रकृति की महिला थीं। उनके सद्गुणों से परिचित लोग उनका विशेष आदर करते थे।

उनकी उदारता से परिचित दीन-दुखी समय-असमय उनके पास आते रहते थे और वे उन्हें भोजन कराकर तृप्ति अनुभव करती थीं। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि वे खाने पर बैठी नहीं कि कोई द्वार पर आकर माँ-माँ पुकारते हुए खाना मांगने लगता और वे उसी क्षण उठकर आगन्तुक को अपना खाना परोसतीं और स्वयं सारा दिन भूखी रह जाती थीं।

विवाह के बाद सात-आठ वर्ष बीत गये, पर माणिक्य सुन्दरी को कोई सन्तान नहीं हुई। इससे उनके मन में बड़ी निराशा हुई। यदि कोई आक्षेप करते हुए कहता कि अन्नपूर्णा जैसी महीयसी महिला के सन्तान नहीं हुई तो उसके उत्तर में देवी कहती थीं कि क्या स्वयं गर्भ धारण न करने से मैं माँ नहीं हूं ? ऊपरी तौर पर ऐसा कह देतीं, पर पुत्र का अभाव वे महसूस करती थीं और पुत्र प्राप्ति के लिए देवी देवताओं से प्रार्थना करती थीं।

गर्भ धारण

देवी ने अन्ततः बुजुर्ग महिलाओं के उपदेशानुसार कार्तिकेय की नित्य पूजा आरम्भ की। लगभग दो वर्ष के व्रत पालन के बाद माणिक्य सुन्दरी देवी के शरीर में गर्भ धारण के लक्षण दिखाई दिये। यह जानकर कुतब पुर और राधाकान्त पुर में खुशी की लहर दौड़ गई। गर्भ धारण के बाद से उनके शरीर में अनेक परिवर्तन दिखाई दिये और उनमें अपूर्व नैसर्गिक सुन्दरता आ गई। गर्भ में स्थित सन्तान का ज्यों-ज्यों विकास होता गया, त्यों-त्यों देवी को प्रतिदिन दिव्य अनुभूतियाँ होने लगीं और वे नित्य दिव्य स्वप्न, दिव्य दर्शन करने लगीं। बीच-बीच में घर अपूर्व सौरभ से महकने लगा। कभी-कभी वे देवी-देवताओं का प्रार्थना गीत और आरती की घंटा ध्वनि सुनती थीं। इन अद्‌भुत घटनाओं से वे भाव-विभोर हो जाती थीं।

जन्म और जातकर्म

प्रसव के समय देवी माणिक्य सुन्दरी राधाकान्त पुर में अपने पित्रालय में रह रही थीं। १२८६ बंगाब्द (सन् १८८० ई०) की श्रावण

पूर्णिमा की रात्रि को २ बजे देवी को पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ। इससे दम्पति के आनन्द की सीमा न रही। कौलिक प्रथा के अनुसार सूर्य आदि देवताओं की पूजा के बाद शिशु का नामकरण संस्कार किया गया। भुवन मोहन ने अपने गुरु भास्करानन्द स्वामी के आदेशानुसार बालक का नाम **नलिनीकान्त** रखा। ज्योतिषी ने शिशु के सिंह राशि और एकादश में वृहस्पति के चलन को देखकर भट्टाचार्य महोदय को नवजात शिशु के भविष्य के बारे में आभास करा दिया। भट्टाचार्य महोदय ने महामाया के चरणों में सानन्द प्रणाम करते हुए पुत्र की मंगल कामना की।

ग्रह-चक्र

मेष–शनि, मिथुन–केतु (ई० १६/५६/५२), कर्क–बुध, सिंह–रवि, मंगल और शुक्र, धनु–राहु, कुम्भ–चन्द्र, मीन–वृहस्पति।

बाल चपलता

बालक नलिनीकान्त कुतब पुर में उपर्युक्त परिवेश में धीरे धीरे बढ़ने लगे। उम्र बढ़ने के साथ-साथ उनकी शरारतें भी बढ़ती गईं। आस-पड़ोस के लोग उनकी शरारतों से क्षुब्ध रहने लगे। कभी-कभी वे उनकी शरारतों से उत्तेजित होकर उन्हें दण्डित करना तो चाहते थे परन्तु अगले ही क्षण खिले कमल के समान उनके मुख को देखकर सब कुछ भूल जाते थे और इस सम्बन्ध में उनके माता-पिता से कुछ भी नहीं बता पाते थे। घुंघराले बालों से घिरे उनके सुन्दर मुख को देखकर वहुत क्रोधी व्यक्ति भी हंसे बिना नहीं रह पाता था। पुत्र को इन सब शरारतों से दूर रखने के लिए भुवन मोहन ने उन्हें विद्यालय में भेजने का निश्चय किया। उसके बाद नलिनीकान्त निम्न प्राथमिक विद्यालय में विद्यार्जन करने लगे।

शिक्षा

बालक नालिनीकान्त के अन्तर में शक्ति की जो चंचलता दिखाई देती थो, वह जब विद्याभ्यास में लगी तो उन्होंने बहुत कम समय में ही निम्न प्राथमिक विद्यालय की सारी पढ़ाई पूरी कर ली।

दिव्य दर्शन

एक दिन सायंकाल के समय उनकी चाची ने उनके हाथ में सांध्य दीपक देकर उन्हें पास के चण्डीमण्डप में भेजा । दिये को हाथ में लेकर जैसे ही नलिनीकान्त मण्डप में पहुंचे, मण्डप स्थल अचानक आलोकित हो उठा और उस आलोकमण्डल के भीतर दसभुजा दुर्गा की मूर्ति प्रकट हुई । बालक दिये को दूर फेंक माँ के पास आ गये और माँ को पूरी घटना के बारे में बताने के बाद थर-थर कांपने लगे । माँ ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा, "बेटा, भय किस बात का ! जिस प्रकार मैं तेरी माँ हूं, ठीक वैसे ही दसभुजा दुर्गा जगत की माँ हैं । क्या मुझे देखकर तुझे डर लगता है ? माँ ने तुझे दर्शन दिये हैं, यह तो बड़े सौभाग्य की बात है ।" उस समय वे मात्र नौ वर्ष के थे ।

इस घटना के कुछ दिन बाद नलिनीकान्त ने एक और अद्‌भुत दृश्य देखा । कृष्ण पक्ष की अंधेरी रात में वे अपने घर में सोये हुए थे । अचानक नींद टूट जाने पर वे क्या देखते हैं कि घर के भीतर पूर्णचन्द्र प्रकाशित हुआ है । आश्चर्य की बात यह है कि उन्होंने विस्मय में डूबकर जिस ओर भी देखा, उन्हें उस ओर वही चाँद दिखाई दिया ।

प्रभुश्री ने कहा कि बचपन से ही मेरे मन में जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों की स्मृति थोड़ी बहुत जागृत होती थी । उन्होंने अपनी तरुणावस्था में "सुधांशुबाला" नामक उपन्यास और "तरणीसेन वध" नामक नाटक लिखा था । उनमें भी उनकी इस जन्म-जन्मान्तर की स्मृति की झलक दीख पड़ती है ।

बचपन में उन्हें वैयक्तिकता की जो अनुभूति हुई थी वह भी उल्लेखनीय है । वेदान्ती ज्ञानी अथवा योगी जन्म-जन्मान्तर की तपस्या से जिस स्तर तक पहुंचने में समर्थ नहीं होते प्रभुश्री में बचपन से ही वही भाव स्वतः प्रस्फुटित हो चुका था ।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वे कहीं चुपचाप बैठे हैं तो वे देखते हैं कि समूचा जगत ज्योतिर्मय हो उठा है और वे स्थूल शरीर को

त्याग कर बिजली की गति से मानो सूर्यमण्डल के दूसरे पार उठते जा रहे हैं जहां ग्रहों, तारों, चन्द्र और सूर्य से समन्वित भूमण्डल स्पष्ट दिखाई दे रहा है। पृथ्वी गोल है और सूर्य एक स्थान पर स्थिर है। सामान्य अवस्था में इस धरती पर बैठकर यह दृश्य नहीं दिखाई देता।

प्रभुश्री ने कहा है– उस अवस्था में मैंने प्रत्यक्ष देखा कि सूर्य स्थिर और निश्चल है, पृथ्वी अविराम वेग से घूम रही है एवं सूर्य की प्रदक्षिणा कर रही है। वे इस दृश्य को देखकर बहुत आनन्दित होते थे। परन्तु यह साक्षीभाव उनके वश में नहीं था। इसलिए उन्हें बहुत दुःख होता था। उस अवस्था में वे चाहते थे कि उसकी पुनरावृत्ति हो। लेकिन चाहने पर ऐसा होता नहीं था। दस-बारह दिन के बाद वह अवस्था पुनः स्वतः आ जाती थी। इस पर बालक नलिनीकान्त का कोई वश नहीं था। इसलिए वे मन ही मन बहुत कष्ट अनुभव करते थे।

बाल चरित्र

नलिनीकान्त की तीक्ष्ण बुद्धि और प्रतिभा का परिचय तो गांव के विद्यालय में पढ़ाई करते समय ही मिल गया था। वे अपनी आयु के बच्चों का नेतृत्व भी करते थे। कभी-कभी वे ऐसी बातें करते थे जिन्हें सुनकर बड़े-बूढ़े भी निरुत्तर हो जाते थे।

अद्भुत स्वप्न

नालिनीकान्त बचपन में बार- बार प्रायः एक ही स्वप्न देखते थे। स्वप्न में वे देखते थे कि वे अपने ही घर में बिछौने पर सोये हुए हैं और कोई महापुरुष उन्हें बुला रहे हैं। वे केवल उनकी आवाज सुनते हैं, पर वे उन्हें देख नहीं पाते हैं। उसके बाद वे आवाज सुनकर बिछौने से उठकर उनके साथ चलना शुरु कर देते हैं। चलते-चलते वे एक ऐसे स्थान में पहुंच जाते हैं जहां पर न तो रोशनी है और न अन्धकार। वह दृश्य शुक्ल पक्ष की मेघों से आच्छादित रात्रि जैसा दिखता था। कुछ

दूर जाने पर एक तालाब में कमल का एक फूल दिखाई पड़ता है। वे उन महापुरुष को उस कमल के फूल से धीरे-धीरे ऊपर उठते देखते हैं। साथ ही उन्हें ऐसा भी लगता है कि वे भी उनके साथ एक सूत्र में बंधे हुए हैं। महापुरुष के ऊपर उठने के साथ-साथ नलिनीकान्त भी ऊपर उठते जाते हैं। परन्तु काफी ऊपर उठ जाने के बाद महापुरुष उस योग-सूत्र को बीच में काट देते हैं। नलिनीकान्त पतंग की तरह चक्कर खाते हुए नीचे गिरने लगते हैं। तभी भय के मारे उनकी नींद टूट जाती है।

वे बीच-बीच में एक और स्वप्न भी देखा करते थे। स्वप्न के भीतर उन्हें महसूस होता था कि कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर ब्रह्म-रन्ध्र को बेधते हुए उसके ऊपर स्थित भाव लोक में पहुंच गयी है। परन्तु उस समय उन्हें यह सोचते हुए जब डर लगता था कि वहाँ से कैसे लौटें तभी उनकी नींद टूट जाती थी। इस संबन्ध में मुख्य बात यह है कि जिन दिनों वे यह स्वप्न देखते थे उन दिनों उन्हे कुण्डलिनी अथवा चक्रों आदि की कोई जानकारी नहीं थी। बाद में साधना करते समय तत्त्वों को समझ लेने के बाद उन्होंने इस स्वप्न का विवरण व्यक्त किया था।

धार्मिक संस्कार

नलिनीकान्त ने गाँव के विद्यालय की पढ़ाई पूरी करने के बाद मेहर पुर के उच्च विद्यालय में प्रवेश लिया। उपनयन के बाद उनकी धार्मिक प्रवृत्ति प्रबल हो उठी। उन्होंने नियमानुसार संध्या, दैनिक पूजा-पाठ, देवी-देवताओं के स्तोत्र और कवच का पाठ करना प्रारम्भ कर दिया। रामायण और महाभारत का पाठ करते समय उनकी आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगते थे। पुत्र में धर्मभाव के ऐसे लक्षण देखकर स्नेहमयी माँ सभी धार्मिक पुस्तकें छिपा दिया करती थीं और पुत्र के भविष्य के बारे में सोचते ही व्याकुल हो उठती थीं।

सहजात संस्कार

दरियापुर में पढ़ाई करते समय नलिनीकान्त के चरित्र में भारी परिवर्तन दिखाई दिए। धीरे-धीरे उनके मन से आभिजात्य का

अभिमान और हृदय की संकीर्णता दूर होती गई। एक दिन गाँव में किसी विजातीय अनजान व्यक्ति की मृत्यु हो गई। उसका दाह संस्कार करने को कोई भी तैयार नहीं था। यह देखकर नलिनीकान्त स्वयं उसका दाह संस्कार करने के लिए निकल पड़े। बाद में दूसरे लोगों ने इस कार्य में उनकी सहायता की। यदि कभी गाँव में आपसी झगड़े के कारण किसी का हुक्का पानी बन्द कर दिया जाता था तो नलिनीकान्त सबसे पहले उसका निमन्त्रण स्वीकार कर उसके घर जाकर उसके वहां भोजन करते थे। यदि गाँव में बड़े-बूढ़ों में कोई दलबंदी होती थी तो उसका उपाय निकाल कर वे दलबंदी को तोड़ने का यत्न करते थे।

नलिनीकान्त गाँव के युवा वर्ग के नैतिक चरित्र में कोई दोष देखते तो उसका विरोध करते थे और दोषी व्यक्तियों को दण्डित कराने की व्यवस्था करते थे। नलिनीकान्त के चरित्र में एक और विशेषता थी कि वे अन्याय कभी सहन नहीं करते थे। वे सोचा करते थे कि अन्याय का प्रतिकार न करना कायरता का परिचायक है। अन्याय का प्रतिकार करते समय वे आपा खो बैठते थे और कभी-कभी ऐसे कार्य कर जाते थे जिससे कि उनके आत्मीयजनों को बहुत दुःख होता था। इस प्रकार की घटनाओं में एक कुलवधू को अनुशासित करने की घटना बहुत ही रुचिकर है। "श्री श्री निगमानन्द जीवन प्रसंग" के प्रथम भाग में इस घटना का विस्तृत विवरण मिलता है। नलिनीकान्त भैरव नदी में स्नान करने के लिये गए हुए थे। स्नान कर लौटते समय उन्होंने सुना कि उनके घर के पास पाल बिरादरी की गली में शोर-शराबा हो रहा है और वहां लोगों की भीड़ इकट्ठी हुई है। नलिनीकान्त ने मौके पर जाकर देखा कि एक बहू अपनी सास को पकड़कर उसकी पिटाई कर रही है। लोग खड़े तमाशा देख रहे हैं। कोई उसका प्रतिकार नहीं कर रहा है। बुढ़िया की हालत देख नलिनीकान्त आपा खो बैठे। उन्होंने पैरों से खड़ाऊ निकाला और बहू की जमकर पिटाई की तथा बुढ़िया को बचा लिया। इस बात को लेकर गाँव में बहुत शोर शराबा हुआ। परन्तु अंत में सभी ने एक स्वर से

स्वीकार किया कि नलिनीकान्त ने तो कोई अन्याय नहीं किया । वरन् उसने न्याय और सत्य का पक्ष लेकर अन्याय का प्रतिकार किया है ।

नलिनीकान्त के मन में ब्राह्मणत्व का अभिमान, छोटे-बड़े, ऊंच-नीच और छूत-अछूत आदि का भेदभाव न पाकर और एक भिन्न प्रकार का सामाजिक व्यवहार देखकर भुवन मोहन बहुत ही भयभीत हो गए। पुत्र की ऐसी उदार भावना को देखकर पिता ने उसका विवाह कर देने का निश्चय किया ।

रेल दुर्घटना

एक बार नलिनीकान्त कलकत्ता से रेलगाड़ी में कहीं जा रहे थे । लगभग डेढ़ घंटे की यात्रा के बाद कांचरा पड़ा स्टेशन के पास उन्होंने सुना कि यात्रियों में बड़ा शोर-शराबा हो रहा है । उन्होंने देखा कि विपरीत दिशा से एक रेलगाड़ी दौड़ी आ रही है । पल भर में ही दोनों गाड़ियों में टकराव हो जाने से कुछ डिब्बे चकनाचूर हो गये । इस घटना में अनेक यात्री हताहत हुए, परन्तु इसमें नलिनीकान्त ने खिड़की से कूदकर आत्मरक्षा की ।

माँ का देहान्त

इस दौरान नलिनीकान्त की स्नेहमयी माँ का देहान्त हो गया । माँ के देहान्त के समय वे अपने ननिहाल राधाकान्त पुर में थे । माँ के अन्तिम दर्शन नहीं हो पाने के कारण नलिनीकान्त को बहुत दुःख हुआ । मनुष्य शरीर की ऐसी परिणति देखकर उनका मन कुछ समय तक विषादग्रस्त रहा । वे शरीर की क्षणभंगुरता के बारे में गंभीर चिंतन करने लगे। उस दिन से उनके मन में हास-परिहास नहीं रहा। बालक के मुंह पर गंभीरता परिलक्षित होने लगी । उन्हें चिंतन करना ही सदैव अच्छा लगा। माँ के देहान्त के बाद सही अर्थ में उनके आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ हुआ। कठोपनिषद के विचार से मृत्यु रूपी यम ही महाज्ञान के प्रवक्ता हैं। जगत में मृत्यु ही जीव को क्षण भर के लिए अन्तर्मुखी कर देती है। मृत्यु से नलिनीकान्त

की यह पहली भेंट थी। यह भेंट व्यर्थ नहीं गई। उनका जीवन जिन सब चिंतनों से नियंत्रित होता था उनमें से अधिकांश का प्रादुर्भाव माँ के देहान्त के बाद ही हुआ।

माँ के देहान्त के बाद उन्होंने जितना सोचा कि "माँ कहाँ चली गई" उतना ही वे व्याकुलतापूर्वक महामाया से प्रार्थना करने लगे। यही उनकी जीवनव्यापी साधना का मुख्य पर्व है।

प्रभुश्री बचपन से ही अपने मन के भावों को गुप्त रखते थे जो उनकी गंभीरता का परिचायक है। वे किशोरावस्था की व्याकुलता के बारे में किसी को कुछ भी नहीं बताते थे। माँ के देहावसान के बाद उन्होंने माँ को देखने और जगन्माता को पाने के लिए बहुत चेष्टा की। × × × किशोर नलिनीकान्त भगवान को मातृरूप में देखना चाहते थे। परन्तु माँ अथवा महामाया किसी को न पाकर विषादवश उन्होंने जितने आँसू बहाये, वे अवर्णनीय है। × × × उपयुक्त अवसर आने से पूर्व इस जगत में कुछ भी घटित नहीं होता है। यह जानकर कि प्रभुश्री का गृहत्याग करने का सही समय नहीं आया है, जगन्माता ने उन्हें मातृरूप में दर्शन नहीं दिये।

माँ के देहावसान के बाद न तो स्वयं माँ की मूर्ति और न ही उसके बहाने जगन्माता, कोई भी नलिनीकान्त को परलोक अथवा भगवान के प्रति विश्वासी नहीं बना पायी। माँ को खोने के बाद उन्हें चारों ओर सूना-सूना प्रतीत होने लगा। माँ-माँ कहकर भरसक रोने पर भी वे माँ के दर्शन नहीं कर पाये।

इस प्रकार माँ के देहावसान के बाद से उनके जीवन में विषादयोग का आरंभ हुआ और उनमें तत्त्वज्ञान प्राप्त करने की सच्ची व्याकुलता पैदा हुई। माँ के जाने के बाद भगवत कृपा से उन्हें चिंतन करने का विशेष सुयोग मिला। उनका चित्त कठोर हो गया। दुःख के आघात से व्यथित और स्नेह से आतुर उनका चित्त कोई सहारा ढूंढ रहा था। हिन्दू संस्कारों के परिणामस्वरूप उनकी इच्छा हुई कि वे भगवान को एक बार माँ कहकर पुकारें और उनकी गोद में बैठकर उन्हें जोर से पकड़ें। वह भी इसलिए कि मरते समय माँ बता कर गई

थी "नलिनी से कहना, मैं उसे जगज्जननी की गोद में सौंपकर जा रही हूं।" परन्तु उन्होंने देखा कि जन्म के बाद शिशु के लिए माँ को पाना जितना सहज है इस जगन्माता को पाना उतना सहज नहीं है। जीवन में पहली बार मृत्यु के सामने खड़े होकर अपने सहज ज्ञान से नलिनी-कान्त ने महसूस किया कि इस संसार में शुरू से अंत तक सब कुछ केवल माया है। शरीर के भस्म हो जाने के साथ-साथ जिस प्रकार उनकी माँ ने अपने प्यारे पुत्र नलिनी को भुला दिया, ठीक वैसे ही चण्डीमण्डप पर जिस देवी ने किसी दिन उन्हें दर्शन दिये थे वह देवी भी उन्हें भूल चुकी है। माँ के देहावसान के बाद उनका सांसारिक बंधन जैसे टूटसा गया। परलोक और ईश्वर के संबंध में संशय उत्पन्न होने के कारण बचपन में उनमें जो सहज भक्ति और विश्वास था वह भी कहीं दूर हो गया। वे धीरे-धीरे नास्तिक बन गये। ननिहाल में तीन वर्ष रहकर दरियापुर स्कूल की पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद वे आगे की पढ़ाई के लिए ढाका चले गये।

जन्म लग्न विचार

भुवन मोहन पत्नी के देहावसान के बाद बहुत ही दुखी हो गये थे। पहले पत्नी का देहावसान हुआ और बाद में नलिनीकान्त जिस रेल-गाड़ी में जा रहे थे वह दुर्घटनाग्रस्त हो गई। इन घटनाओं के कारण भविष्य में होने वाले अमंगल की आशंका से भुवन मोहन पुत्र की **जन्म पत्री** का फलाफल जानने के लिये व्यग्र हो उठे। इस दौरान एक दिन कासिम बाजार की रानी स्वर्णमयी के सभा-पण्डित श्री श्यामाचरण ज्योतिषार्णव किसी कार्य से कुतब पुर आये हुए थे। भुवन मोहन ने पुत्र की जन्म पत्री का फलाफल जानने के लिये उनसे भेंट की। पण्डित महोदय ने लग्न ग्रहों की गणना कर बता दिया कि उन्होने ऐसा विचित्र लग्न कभी नहीं देखा था। इनका भविष्य जीवन बहुत ही रहस्यमय है। बहु कर्म, बहु ज्ञान, बहु मत, बहु पथ, बहु विपद, बहु संपद, बहु मान, बहु निन्दा, बहु त्याग, और बहु लाभ इनके जीवन की विशेषता है। पण्डित महोदय ने नलिनीकान्त को तरह-तरह से आशीर्वाद देकर विदा ली।

जन्म लग्न में ग्रहों की स्थिति
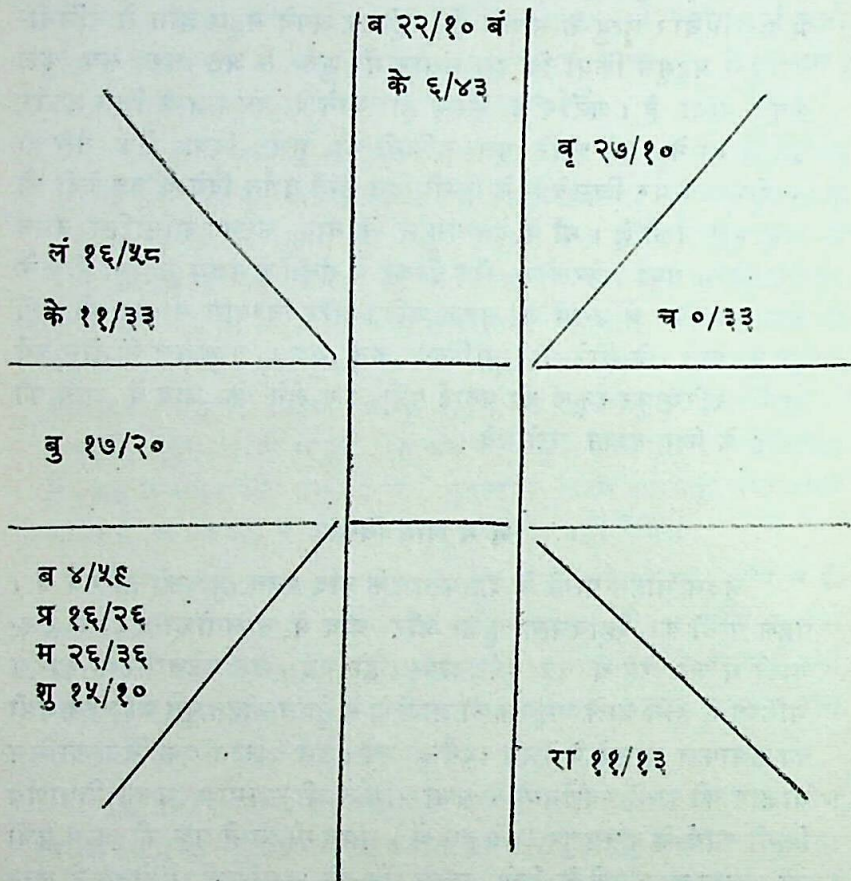
जन्म १२८६ बंगाब्द, भाद्रपद ४ दिन बृहस्पतिवार रात्रि २ बजे लं० २/१६/५८, द्वितीय ३/१०/४०, तृतीय ४/६/३८, चतुर्थ ५/६/५५, पंचम ६/१०/७, षष्ठ ७/१४/१७ ।

❀❀❀

दूसरा अध्याय
सांसारिक जीवन

विवाह

नैष्ठिक और शांत स्वभाव वाले ब्राह्मण के पुत्र होकर भी नलिनीकान्त दिन प्रतिदिन ऐसा व्यवहार करने लगे जिससे भुवन मोहन बहुत ही भयभीत हो उठे। पुत्र में ब्राह्मण होने का कोई अभिमान नहीं. छोटे-बड़े की सूझ नहीं, छूत-अछूत की कोई परवाह नहीं। यह सब देखकर भुवन मोहन को शंका हुई कि सम्भवतः जन्म पत्री में उल्लिखित भविष्य फल सच होकर रहेगा। इसलिए उन्होंने पुत्र का विवाह कर देने का निश्चय किया और एक सुयोग्य कन्या की खोज में लग गए। हाली शहर निवासी स्वर्गीय वैद्यनाथ मुखोपाध्याय की एक पुत्री थी। भुवन मोहन ने स्वयं देखा कि कन्या हर दृष्टि से सुन्दर है और लज्जा तथा विनम्रता से मण्डित उसका कण्ठस्वर संगीत की तरह मधुर है। बंगाब्द १३०४ में जब नलिनीकान्त की आयु १८ वर्ष की थी भुवन मोहन तेरह वर्षीया **सुधांशुबाला** को पुत्र-वधू बनाकर घर ले आये।

विवाह के बाद

नलिनीकान्त उन दिनों अपने ननिहाल में रहते थे। भुवन मोहन ने पुत्र के मन बहलाव के लिए पुत्र-वधू को उनके पास भेज दिया। परन्तु नलिनीकान्त ने पिता की देखभाल के लिए उन्हें तत्काल कुतब पुर भेज दिया। उनकी नानी जी ने इससे नाराज होकर उनकी पढ़ाई का खर्च देना बन्द कर दिया। इसलिए नलिनीकान्त ने आगे पढ़ने की आशा छोड़कर ओवरसियरी पढ़ना शुरु कर दिया। ओवरसियरी

पास करने के बाद उन्होंने गाँव के लोगों के अनुरोध पर कुछ दिनों तक स्थानीय माध्यमिक विद्यालय में अध्यापन कार्य किया और इसके साथ ही नौटंकी दल के साथ मिलकर अभिनय करना और नाटक लिखना आरम्भ कर दिया। दूसरे लोगों द्वारा लिखित नाटक उनके भाव के अनुकूल नहीं होते थे। इसलिए उन्होंने, स्वयं "तरणीसेन वध" नामक एक नाटक लिखा और उसमें तरणीसेन की भूमिका स्वयं निभाई।

कर्मजीवन

कुछ दिन इसी प्रकार बीत जाने के बाद उन्होंने नौकरी की खोज की और उन्हें दिनाजपुर के जिला बोर्ड में ओवरसियरी की नौकरी मिल गई। दिनाजपुर में नौकरी में आने के बाद नलिनीकान्त वहीं रहने लगे। भुवन मोहन ने यह सोचते हुए कि जिस उद्देश्य से पुत्र का विवाह किया था पुत्रवधू के घर पर रहने से वह उद्देश्य ही विफल न हो जाए, पुत्र-वधू को दिनाजपुर भेज दिया। वहाँ पर नलिनीकान्त का दाम्पत्य जीवन प्रारम्भ हुआ। पति-पत्नी के बीच अनन्य प्रेमभाव को देखकर पिता ने मन ही मन खुश होकर सोचा कि शायद जन्मकुण्डली का फल झूठा निकले।

नलिनीकान्त ने दिनाजपुर के जिला बोर्ड में नौकरी करते समय महसूस किया कि नौकरी में कितना कष्ट है। इंजीनियर अतुल कृष्ण मुखर्जी के सामने उन्हे सदैव डरा-डरा सा रहना पड़ता था। उन्हें ऐसी नीच वृत्ति सहन नहीं हुई। एक दिन साहब से उनकी कहासुनी हो गई और उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। उसके बाद वे कलकत्ता के दिगम्बर मित्र की पोती कृष्ण प्रमदा दासी के दान्तिया परगना स्थित जमींदारी के सुपरवाइजर बनकर पार्वतीपुर स्टेशन से दो-तीन मील दूर नारायणपुर कचहरी में रहने लगे। वहाँ पर परिवार के साथ रहने के लिए पर्याप्त स्थान था। इसलिए भुवन मोहन ने पुत्र-वधू को वहीं भेज दिया। वहाँ पर प्रायः छः मास रहने के बाद घर में कुछ असुविधायें होने के कारण नलिनीकान्त ने पत्नी को कुतब पुर भेज दिया।

नास्तिक भाव

नलिनीकान्त के धार्मिक भाव यौवनावस्था में विलुप्त हो गये थे। भक्ति और विश्वास कहीं दूर हो गया था। वे सदैव यही सोचते कि मृत्यु के साथ मनुष्य का सब कुछ समाप्त हो जाता है। जन्मान्तर और परलोक केवल कवि की कल्पना है और पूजा-अर्चना समय का दुरुपयोग करना है। ईश्वर पर अविश्वास न करने पर भी वे उन पर विश्वास नहीं करते थे। वे सोचा करते थे कि ईश्वर हो या न हो, इससे मनुष्य का कुछ आता-जाता नहीं है। हम सब ईश्वर के हाथों की कठपुतलियाँ मात्र हैं। संसार में जिसके पास जितनी सुविधाएं हैं, उसे उनका भोग करते ही जाना चाहिए। नास्तिक होने पर भी वे सदैव नीति का पालन करते थे। उनके भीतर अनुसंधान की प्रबल प्रवृति जागृत थी।

छाया मूर्ति देखना

पत्नी को घर भेजने के बाद लगभग तीन महीने बीत गए थे। नलिनीकान्त नारायणपुर की उसी कचहरी में रह रहे थे। एक रात वे बन्दोवस्त सम्बन्धी मुकदमें में साक्षी देने के लिए कुछ कागजात तैयार कर रहे थे। सहसा उन्होंने देखा कि उनके सामने रखी लालटेन का प्रकाश अचानक धीमा होता जा रहा है। कहीं कोई लालटेन की बत्ती कम कर रहा है सोचते हुए जब उन्होंने उस ओर देखा तो उन्हें दिखाई दिया कि जिस मेज के सामने उनकी पत्नी आकर अक्सर खड़ी होती थी बिल्कुल उसी स्थान पर मेज पर हाथ रखे उनकी छायामूर्ति खड़ी है। उस समय उनकी पत्नी के लिए कुतव पुर से नारायण पुर आना बिल्कुल असम्भव था। इसलिए इसे अपने मन का भ्रम मानते हुए जब उन्होंने फिर एक बार देखा तो पाया छायामूर्ति पहले की तरह निश्चल खड़ी है। वह स्वाभाविक रूप की अपेक्षा थोड़ी अधिक ज्योतिर्मय थी और चेहरा विषादग्रस्त और मलिन दिखाई दे रहा था। नलिनीकान्त यह देखकर भय के मारे चिल्ला उठे। इससे वह छायामूर्ति गायब हो गई। उनकी आवाज सुनकर घर के नौकर-चाकर दोड़कर वहाँ आये, पर नलिनीकान्त ने किसी को कुछ नहीं बताया।

छाया मूर्ति देखने के बाद

पत्नी की छायामूर्ति देखने के बाद नलिनीकान्त ने सोचा कि उनकी पत्नी तो इस जगत में नहीं है। उनके मन में आया कि इसी वक्त गाँव में जाकर देख आऊं। परन्तु उस समय हाथ में बहुत से काम थे। इसलिए उन्होंने आने वाली पूजा की छुट्टी में घर जाने का निश्चय किया। छायामूर्ति देखने के बाद उनके मन में उथल-पुथल मचने लगी। उन्होंने निश्चय किया कि मन में पूर्व संस्कार क्रियाशील हो रहे हैं जिसके कारण छायामूर्ति दिखाई देती है। इस प्रकार मन को समझाकर वे थोड़ा निश्चिंत हुए। पत्नी मर चुकी है— मन में ऐसे अमंगल की आशंका लाना नलिनीकान्त को बड़ा खराब लगा। आखिर उन्होंने इसे मन का भ्रम और दृष्टि-दोष मानकर मन को दृढ़ करने की चेष्टा की। इसके दो दिन बाद उन्हें पत्र मिला कि उनकी पत्नी अस्वस्थ हैं। इस पत्र को पाकर उनका मन और खराब हो गया। मन में जो थोड़ी बहुत आशा थी कि पत्नी जीवित है, अस्वस्थता का समाचार पाकर वह आशा भी जाती रही। नलिनीकान्त सोचने लगे कि इस अस्वस्थता से मृत्यु का घनिष्ठ सम्बन्ध है। उन्होंने सोचा कि तब क्या मरने के साथ-साथ वह मुझे दर्शन देकर चली गई? यदि मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व नहीं रहता है, तो मृतक की छायामूर्ति कैसे दिखाई देगी? इस प्रकार तरह-तरह के विचार उनके मन में आने लगे, पर वे किसी निश्चय पर नहीं पहुंच पाए। अन्त में उन्होंने सोचा कि यदि पत्नी की मृत्यु हो चुकी है तो घर जाने से न जाना ही अच्छा रहेगा। परन्तु इसके बारे में किसी को कुछ लिखने की उनकी इच्छा नहीं हुई। क्योंकि वह जीवित है, ऐसा सोचना बहुत सहज है, परन्तु मृत्यु की कल्पना भी बड़ी ही कष्टकर है।

पत्नी का देहावसान

इस प्रकार तरह-तरह से सोचते हुए वे घर जाने की तैयारियां करने लगे और यथा समय घर पहुंचे। वहां जाने पर उन्हें ज्ञात हुआ

कि जिस दिन जिस समय उन्होंने छायामूर्ति देखी थी, उसके चार घंटे पहले सुधांशुबाला की मृत्यु हो चुकी है।

आस्तिक भाव

नलिनीकान्त यह दुखद समाचार सुनने के बाद बहुत चेष्टा करने पर भी अपने को सम्भाल नहीं पाए अथवा उसे नहीं भुला पाए। बाद में अपनी चाची से पत्नी के मृत्युकालीन समाचार सुनकर वे बहुत ही चिंतित हो उठे। चाची ने बताया कि मृत्यु के तीन दिन पहले बहू चेतनाशून्य हो गई थी। केवल नलिनी का नाम सुनने से आंखें खोल कर देखती थी। मरने से पहले बहू बता कर गई, "उनसे कहना वे और विवाह नहीं करेंगे। धर्म और परलोक सत्य है। उनसे यह भी कहना कि वे सदगुरु का आश्रय लेकर दीक्षा लेने के बाद निस्त्रैगुण्य की साधना करेंगे।"

नलिनीकान्त घर पर एकान्त में बैठकर सोचने लगे। यह घर, साज सामान, सब कुछ है, पर वह नहीं है। उनका सुखमय संसार स्वप्न की तरह थोड़े दिनों में टूट गया है। मृत्यु के बाद सब कुछ समाप्त हो जाता है या कुछ रहता भी है? यदि सब कुछ समाप्त हो जाता है, तो छाया-मूर्ति आई कहां से? यदि परलोक सचमुच है, तो उससे मात्र एक बार भेंट करूंगा। जिस समय नलिनीकान्त यह सब सोच रहे थे उन्होंने कोई आवाज सुनी। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि यह ध्वनि उनकी पत्नी के बिछवे की है। थोड़ी ही देर के बाद आवाज धीरे-धीरे कम होती गई। मानो नलिनीकान्त के पास कोई खड़ा हो। उन्होंने अपनी पत्नी की उपस्थिति महसूस की। उसके बाद आगे कुछ न समझ पाने के कारण वे पहले की तुलना में अधिक व्याकुल रहने लगे। भुवन मोहन पुत्र-वधू की मृत्यु से टूट से गये।

मृत्यु से पहले सुधांशुबाला जो कुछ बता गई थी, उसके बारे में सोचकर नलिनीकान्त विस्मित हो उठे। "निस्त्रैगुण्य की साधना करो।" देहाती कुलवधू के मुंह से निकली यह बात उनकी समझ में

नहीं आई। नलिनीकान्त विस्मित होकर अवाक् बैठे रहे। अगले दिन अपने साथियों के साथ घर लौटते समय रात के लगभग दस बज चुके थे। रात अंधेरी थी। गाँव के भीतर पेड़ों के बीच होकर घर लौटते समय अपने सामने सेमल के पेड़ के नीचे वे अचानक चौंक उठे। पत्नी की वही छायामूर्ति, बहुत विषादग्रस्त मुंह। नलिनीकान्त का मन व्याकुल हो उठा। छायामूर्ति को दुबारा देखने के बाद नलिनीकान्त के लिए परलोक कवि की कल्पना नहीं रहा।

अगले दिन नलिनीकान्त लौटने को तैयार हुए और उन्होंने पिता से इसकी अनुमति मांगी। भुवन मोहन ने बहू के श्राद्ध के लिए पुत्र को रुक जाने के लिए कहा। पर नलिनीकान्त ने कहा, "आपने चिता को अग्नि दी है, अतः आप ही श्राद्ध करेंगे। मैं मालिक के कुछ जरूरी मुकद्दमों से सम्बन्धित काम छोड़ आया हूं, आपकी अनुमति हो, तो जाऊं।" भुवन मोहन ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की। नलिनीकान्त कलकत्ता चले गये।

उन्हें जब भी अवसर मिलता, वे परलोक सम्बन्धी जानकारी रखने वाले साधुओं, संन्यासियों और विद्वानों की खोज करने लगते। इस दौरान वह छायामूर्ति पुनः एक बार नलिनीकान्त के सामने प्रकट हुई। पर अबकी बार छायामूर्ति नहीं, दिव्य ज्योतिर्मय मूर्ति थी। पहले की तरह मलिनता का चिह्न नहीं था। कुछ देर बाद मूर्ति गायब हो गई।

तीसरी बार छायामूर्ति देखना

कलकत्ता में मुकदमे सम्बन्धी कार्य पूरा न होने के कारण वे नारायणपुर नहीं जा पाये थे। इस दौरान एक दिन (सुधांशुबाला की मृत्यु का नवां दिन) नलिनीकान्त बिस्तर पर लेटे हुए थे। नींद नहीं आ रही थी। वे दिवंगता पत्नी के बारे में सोच रहे थे। घर में दिया धीमा-धीमा जल रहा था। उन्हें ऐसा लगा कि घर में कोई घूम रहा है। बिल्कुल सुधांशुबाला के चलने जैसी आवाज थी। चूंकि नलिनीकान्त को परलोक पर विश्वास नहीं था, इसलिए वे विस्मित होकर उठ बैठे और उन्होंने

पूछा, "कौन है ?" उत्तर मिला, "मैं—तुम्हारी सुधा।" नलिनीकान्त बोले, "तुम्हारी आवाज तो मैं सुन रहा हूं, पर तुम दिखाई नहीं दे रही हो, क्यों ?" उत्तर मिला, "आप डरेंगे तो नहीं ?" नलिनीकान्त बोले, "यदि तुम्हें देखकर डरूंगा तो किसे देख कर खुश होऊंगा ?" तत्काल नलिनीकान्त के सामने सुधांशुबाला का हूबहू जीवन्त रूप दिखाई दिया। नलिनीकान्त बोले, "इतनी दूर क्यों ? मेरे पास आकर बैठो।" सुधांशुबाला की छायामूर्ति नलिनीकान्त के बाईं ओर आकर बैठ गई। छायामूर्ति को अपने बाएं हाथ से पकड़ कर नलिनीकान्त ने जैसे ही उनके चिरपरिचित और चिरनूतन मुखमण्डल की ओर देखा तो सुधांशुबाला की छायामूर्ति ने कहा, "तुम मेरा श्राद्ध नहीं करोगे ?"

नलिनीकान्त—पिताजी श्राद्ध करेंगे, मैं उन्हें कह कर आया हूं।

छायामूर्ति—तुम्हारे द्वारा श्राद्ध किए जाने से मुझे जितनी तृप्ति होगी, दूसरों के करने से क्या वह सम्भव होगा ?

हताश होकर नलिनीकान्त ने कहा, "पहले क्यों नहीं बताया ? कल ही तो श्राद्ध का दिन है। अब मैं क्या कर सकता हूं।"

छायामूर्ति ने थोड़ा सोचने के बाद उत्तर दिया, "तुम्हें और कुछ नहीं करना होगा। तुम्हारी जैसी इच्छा होगी वह मुझे दोगे, मैं उससे तृप्त हो जाऊंगी।"

बातचीत पूरी होने के साथ-साथ छायामूर्ति गायब हो गई। नलिनीकान्त स्तब्ध बैठे रहे।

श्राद्ध

अगले दिन नलिनीकान्त ने गंगा में स्नान किया और उसके बाद वे दो रुपए लेकर बाजार गए। वे बाजार से सुधांशुबाला की मनपसन्द चीजें खरीद लाए। उसके बाद उन्होंने घर को लीप-पोतकर साफ किया और श्राद्ध के लिए लाई गई चीजों को देवता भोग की तरह एक थाली में रखकर बैठने के लिए आसन बिछा दिया और उसके पास पानी का गिलास रख दिया। उसके बाद मन ही मन सुधांशुबाला का स्मरण कर कहा, "मेरी यह नगण्य भेंट स्वीकार करो।" ऐसी प्रार्थना

करने के बाद वे बैठे रहे। नलिनोकान्त ने सोचा कि सुधांशुबाला पूर्व रात्रि की तरह शरीर धारण कर भोजन करने आएगी। धीरे-धीरे समय बीतता गया, आधा घंटा बीत गया, सुधांशुबाला फिर भी नहीं आई। वे सभी वस्तुएं ज्यों की त्यों पड़ी रहीं।

इससे नलिनीकान्त का मन खिन्न हो उठा। उन्होंने सोचा कि हर वक्त पत्नी के बारे में सोचते रहने के कारण पिछली रात उसके दर्शन हुए थे। जिस प्रकार कोई गंभीर रोगी कल्पना में अनेक अनहोनी बातें देखता है ठीक वैसे ही मेरा शोकग्रस्त मन विकारग्रस्त होकर ये सब देख और सुन रहा है। मृतक कभी किसी दिन लौटकर नहीं आयेगा। मुझे अपने इस दुर्बल मन को स्वस्थ करना चाहिए। मैं बिना कारण पैसा खर्च कर ये चीजें लाया। मृतक खाता है, यह बात चिरकाल से अविश्वसनीय है। मेरे मन में जो ऐसा विकृत विचार आया, वही बड़ी लज्जा की बात है। जो हो, खाने की ये चीजें मैं स्वयं खा लूंगा। यह सोचकर नलिनीकान्त कड़वाहट और विरक्त भाव से आसन पर बैठे। उन्होंने ज्यों ही खाने के लिए हाथ बढ़ाया तो उन्हें आवाज सुनाई पड़ी, "छिः छिः, यह क्या कर रहे हो ?" यह कहते हुए सुधांशुबाला ने नलिनीकान्त को रोक लिया। नलिनीकान्त ने बड़े विस्मय से उत्तर दिया, "तुम तो नहीं खा रही हो, इसलिये मैं ही खा लेता हूं।"

"वह सब मैं खा चुकी हूं, क्या तुम मेरी जूठन खाओगे ?" छाया-मूर्ति ने नलिनीकान्त का हाथ पकड़ कर उत्तर दिया। वह प्रसन्न चित्त से आभार प्रकट करने की मुद्रा में उनकी ओर देखने लगी। नलिनी-कान्त ने प्रश्न किया, "कैसी बात कर रही हो कि तुम खा चुकी हो ? मैं तो इतनी देर से बैठा हुआ हूं, तुमने कुछ भी तो नहीं खाया।" इसके उत्तर में छायामूर्ति ने गम्भीर स्वर से कहा, "मृत्यु के साथ साथ मनुष्य का स्थूल शरीर मिट जाता है। परन्तु आत्मा की मृत्यु न होने के कारण उसका अस्तित्व रहता है। इस अवस्था में मनुष्य में स्थूल शरीर के लिए उपयोगी किसी चीज का भोग करने की क्षमता नहीं रहती है। वह सूक्ष्म रूप में द्रव्यों के सूक्ष्म अंश को ग्रहण करता है। तुमने जब

खाने की ये चीजें मुझे दीं तब मैंने इनका सूक्ष्मांश ग्रहण कर लिया। नलिनीकान्त ने कहा, "अब इस सबको क्या करूं?" उत्तर मिला, "गंगा में फेंक दो।" देखते ही देखते छायामूर्ति गायब हो गई और नलिनीकान्त निर्वाक और निश्चल बैठे रहे।

परलोक तत्त्व की खोज

एक बार नहीं, दो बार नहीं, तीन-तीन बार छायामूर्ति को देखने के बाद नलिनीकान्त को यह दृढ विश्वास हो गया कि परलोक का अस्तित्व है। नलिनीकान्त सोचने लगे, मनुष्य के आत्मीय लोग मर जाते हैं, पर कौन आकर उस मधुर स्मृति को पुनः जागृत करा देता है। इस परलोक तत्त्व के रहस्य का उद्घाटन करना होगा। यदि परलोक है, तो उससे एक बार अवश्य भेंट करनी होगी। विभिन्न लोगों के साथ हुई बातचीत से उन्हें पता चला कि कलकत्ता स्थित थियो-सोफिकल सोसाइटी में परलोक तत्त्व के सम्बन्ध में चर्चा की जाती है और वे आत्मा को बुलाकर परलोक सम्बन्धी तत्त्व संगृहीत करते हैं। इस दौरान उनका कुमिरा स्थानान्तरण हो गया। इसलिये उन्होंने कलकत्ता होकर वहाँ जाने का निश्चय किया।

कुमिरा जाते समय वे बीच में कलकत्ता उतरे। वहाँ लोगों से मृत व्यक्तियों से किस प्रकार बातचीत की जाती है और कहाँ जाने से तत्सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त होगी, आदि बातों के बारे में जानकारी प्राप्त कर अपनी कर्मस्थली लौट आए। बीच बीच में वे कलकत्ता आकर उस सोसाइटी के सदस्यों के साथ वार्तालाप कर उनसे परिचित हुए। वहाँ से उन्हें पता चला कि परलोक के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना हो तो मद्रास के पास स्थित आद्यार (Adyar) के आश्रम में जाकर रेवेरेण्ड लेडविटर साहब से इस संबंध में शिक्षा लेनी होगी। इसलिए वे दो महीने की छुट्टी लेकर मद्रास चले गए।

थियोसोफी की शिक्षा

नलिनीकान्त ने आद्यार पहुंच कर लेडविटर साहब से परलोक से आत्मा को बुलाने की क्षमता अर्जित की। उन्होंने थोड़े ही दिनों में

मीडियम, मैसमेरिजम, प्लाँचेट, मेंटल टेलीग्राफी आदि विधाओं की शिक्षा प्राप्त कर ली। वे जो सिखाते थे, नलिनीकान्त एक दो दिन में ही उसे पूरा कर लेते। नलिनीकान्त वहाँ के शिक्षकों को 'जाओ सो जाओ' कह कर उन्हें पल भर में ही सम्मोहित कर देते थे, परन्तु शिक्षकगण उन्हें किसी प्रकार सम्मोहित नहीं कर पाते। जो भी हो, उनके उपदेशानुसार चल कर नलिनीकान्त ने थोड़े दिन के भीतर हाथों हाथ फल प्राप्त किया। वे जिस व्यक्ति की आत्मा को बुलाना चाहते थे, उसमें उन्हें सफलता मिली। बुलाई गई आत्मा मीडियम के माध्यम से नलिनीकान्त के साथ बातचीत करने लगी। ऐसी अनेक गुप्त बातें होतीं और जिनके बारे में कोई दूसरा नहीं जानता, आमंत्रित आत्मा उन सब बातों के बारे में सही सही बता देती। उनकी पत्नी जीवितावस्था में एक गाना गाया करती थीं। नलिनीकान्त को वह गाना बहुत अच्छा लगता था। नलिनीकान्त के अनुरोध पर मीडियम उस गाने को अविकल पहले की तरह गाने लगा। इस प्रकार खुशी खुशी कुछ दिन बीत गए। बाद में नलिनीकान्त ने समझा कि इस प्रक्रिया से उन्होंने जो कुछ समझा है वह परलोक तत्त्व का एक अंश मात्र है। क्योंकि प्रेतात्मा को मीडियम के शरीर में लाना पड़ता है और बाद में मीडियम से प्रश्न करके जानकारी प्राप्त करनी होती है। थियोसोफीकल सोसाइटी में जिस विद्या की शिक्षा मिलती है, उसमें दिवंगत आत्मा को आकर्षित कर मूल व्यक्ति के साथ प्रत्यक्ष (materialise) बातचीत नहीं की जा सकती।

वे अपनी पत्नी के साथ प्रत्यक्ष बातचीत करना चाहते थे। इस लिए उक्त सोसाइटी में उनकी यह अभिलाषा पूरी होने का कोई उपाय न देखकर और दो महीनें में ही उक्त सोसाइटी की समस्त विद्याएं सीख लेने के बाद वे पुनः अपनी कर्मस्थली कुमिरा लौट आए।

मीडियम के द्वारा मृत व्यक्ति के साथ वार्तालाप करते समय उन्हें ऐसा लगता था कि यह सब सच है। परन्तु योगसिद्धि के बाद जब वे इन सब तत्त्वों की गहराई में गए तो उन्हें ज्ञात हुआ कि मीडियम के भीतर

वास्तविक प्रेतात्मा नहीं आती, वह सम्मोहित व्यक्ति का आत्मस्फुरण मात्र है। मनुष्य जो कुछ कहता है या सुनता है, वह सब वायुमण्डल में रिकार्ड होकर रह जाता है। मन को संयत कर उस स्तर पर रखने से सब कुछ पहले की तरह सुनाई देता है। सम्मोहन द्वारा मीडियम व्यक्ति को सम्मोहित करने अर्थात सम्मोहित व्यक्ति में अर्द्धचैतन्य अवस्था (subconscious stage) लाने से मीडियम व्यक्ति की आत्मशक्ति बढ़ जाती है। इससे अतीन्द्रिय दृष्टि खुल जाती है जिसके बल पर वह प्रश्नकर्ता को सभी गुप्त बातों की जानकारी देने में सक्षम होता है।

साधु विद्वेष

नलिनीकान्त के मन में आत्मा और परलोक के प्रति विश्वास तो जगा परन्तु साधु-संन्यासियों के प्रति जो आन्तरिक घृणा भाव उनके मन में था वह नहीं गया। नलिनीकान्त समझते थे कि जिन लोगों को खाने के लिए नहीं मिलता वे धर्म के नाम पर पाखण्ड करते फिरते हैं। किसी संन्यासी को देखते ही उन्हें क्रोध आ जाता। भुवन मोहन स्वामी भास्करानन्द के शिष्य थे। अतः उनके मन में संन्यासियों के प्रति विशेष श्रद्धा थी। किसी संन्यासी को देखने पर वे उनका विशेष आदर करते थे। नलिनीकान्त इसका तीव्र विरोध करते थे।

एक दिन एक जटाधारी संन्यासी अतिथि के रूप में नलिनीकान्त के घर पधारे। उनके पिता ने घर पर उनका यथोचित सत्कार किया। संन्यासी के प्रति पिता का ऐसा आदर भाव नलिनीकान्त को अच्छा नहीं लगता था। फिर भी पिता के गुस्से के भय से वे स्पष्ट कुछ नहीं कह पाते थे। दैवयोग से जब नलिनीकान्त संन्यासी के शयन गृह में पहुंचे तब संन्यासी सोये हुए थे। नलिनीकान्त दवे पाँव उनके पास पहुंचे और उन्होंने कैंची से उनकी एक जटा काट ली और वहां से खिसक आए। जागने पर संन्यासी क्रोध से आगबबूला हो गए और कहने लगे "भस्म कर दूंगा, श्राप दे दूंगा" आदि। नलिनीकान्त अनजान बन कर वहां पहुंचे। उनके हाव भाव देखकर किसी को भी उन पर सन्देह नहीं हुआ

कि यह काम उनका है। इसलिए किसी ने भी उनसे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं पूछा।

स्वामी पूर्णानन्द जी से भेंट

कुमिरा में कार्य करते समय नलिनीकान्त का ध्यान सदैव इस बात की ओर रहता था कि कलकत्ता में कोई बड़े साधु आये हुए हैं या नहीं। उस दौरान कलकत्ता में धर्म की बाढ़ सी आई हुई थी। महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी, रामकृष्ण परमहंस, केशवचन्द्र सेन और थियोसोफीकल सोसाइटी के धर्म प्रचारक कलकत्ता में धर्म का प्रचार कर रहे थे। परन्तु कोई भी उनकी ज्ञान की प्यास बुझा नहीं सका। नलिनीकान्त की जिज्ञासा भिन्न प्रकार की थी। अतः सभी उनका मजाक उड़ा कर उन्हें विदा कर देते थे।

एक दिन उन्होंने सुना कि पूर्णानन्द स्वामी नामक कोई ख्यातिप्राप्त साधु कलकत्ता आए हुए हैं। वे विश्व-विद्यालय के उच्च उपाधि धारी थे और डफ महा-विद्यालय में विज्ञान के अध्यापक रह चुके थे। वे संन्यासी के रूप में विन्ध्याचल में आश्रम बना कर रह रहे हैं। सिद्ध पुरुष के रूप में उनकी ख्याति है। नलिनीकान्त की धारणा थी कि निकम्मे लोग ही संन्यासी बनते हैं। वे पाखण्डी होते हैं। उनकी यह धारणा भी थी कि पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोग चरित्रवान होते हैं। परन्तु स्वामी पूर्णानन्द शिक्षित होते हुए संन्यासी क्यों बने ?

वे कौतूहलवश उन्हें देखने के लिए कलकत्ता गए। कलकत्ता में स्वामी जी के पास पहुंच कर उन्होंने देखा कि अनेक गणमान्य लोग उनके पास बैठे हुए हैं और भगवत चर्चा कर रहे हैं। परन्तु नलिनीकान्त जिस उद्देश्य को लेकर वहाँ गए थे वह वहाँ उपस्थित सज्जनों के उद्देश्य से एकदम भिन्न था। उन्होंने देखा कि किस प्रकार ज्ञान प्राप्त होता है, किस प्रकार भगवान का साक्षात होगा, सभी लोग इन्हीं बातों में व्यस्त हैं। नलिनीकान्त जिस बात की खोज के लिए वहां गए थे उसे सबके सामने व्यक्त करना उन्हें लज्जाजनक प्रतीत हुआ, क्योंकि वह तो एक

मामूली सी व्यक्तिगत बात थी। उन्होंने मन ही मन सोचा कि यदि ये सच्चे साधु होंगे तो मेरा भाव स्वयं समझ जायेंगे, क्योंकि साधु-संन्यासियों में दूसरों का मनोभाव समझने की क्षमता होती है। यदि साधु अपने आप कुछ नहीं पूछते तो मैं भी अपनी ओर से कुछ नहीं बताऊंगा। वे इसी संकल्प के साथ यथा समय स्वामी जी के पास उपस्थित हो जाते थे और सभी के लौटने के बाद वापस आते थे। सभी स्वामी जी को साष्टांग प्रणाम करते थे, पर नलिनीकान्त उन्हें प्रणाम नहीं करते।

एक दिन स्वामी जी ने उपस्थित सभी दर्शनाभिलाषियों के प्रश्नों का समाधान करने के बाद कहा, "आज मुझे कुछ विशेष कार्य है। इसलिए मैं आज और अधिक कुछ नहीं कहूंगा।" यह सुनकर दर्शनार्थी उस दिन की चर्चा समाप्त कर उठने लगे। नलिनीकान्त भी उनके साथ चलने को उठे। यह देखकर स्वामी पूर्णानन्द ने नलिनीकान्त की ओर लक्ष्य कर कहा, "तुम थोड़ी देर बैठो। तुम्हारा घर पास ही तो है। ऐसी जल्दी भी क्या है? तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

नलिनीकान्त थोड़े विस्मित हुए। उन्होंने सोचा कि स्वामी जी को इसका पता कैसे चला? बहुत सोच विचार बाद उन्होंने निश्चय किया कि ये सचमुच ही कोई साधु-महापुरुष हैं। ये अवश्य ही मेरी बात जानते हैं। वरना सभी को जाने के लिए कह कर मुझे बैठे रहने क्यों कहते। सब के जाने के बाद स्वामी जी ने पूछा—"कुछ दिन से तुम्हें यहां आते देख रहा हूं, तुम्हें कुछ कहना हो, तो कहो।"

नलिनीकान्त—जिन बातों को जानने के लिए यहां पर और लोग आते हैं, मेरी बातें उनसे भिन्न हैं।

पूर्णानन्द—निःसंकोच अपने मन की बातें कहो।

नलिनीकान्त—भगवान कौन हैं, उनका दर्शन किस प्रकार हो सकता है, मैं यह सब नहीं जानना चाहता हूं। क्योंकि मैं इन बातों पर विश्वास करूं या न करूं, भगवान मेरा लक्ष्य नहीं हैं।

पूर्णानन्द—यह कोई जरूरी नहीं है कि भगवान ही सबका लक्ष्य हो।

नलिनीकान्त—मैंने सुना है कि आप भगवान के दर्शन करा देते हैं। भगवान तो बहुत बड़ी बात है। मैं एक मामूली चीज मांगूंगा। मुझे परलोक पर विश्वास नहीं था। परन्तु अपनी पत्नी के देहावसान के बाद मैंने उसे तीन बार देखा। उसके बाद मुझमें परलोक के प्रति विश्वास पैदा हो गया है। मैं समझता हूं मेरी पत्नी अवश्य है। इस तत्त्व की जानकारी हेतु मैं मद्रास स्थित थियासोफी संप्रदाय में गया और वहां पर परलोक के सम्बन्ध में थोड़ा ज्ञान प्राप्त किया। परंतु मीडियम के भीतर आत्मा को बुलाकर मुझे तृप्ति नहीं मिली। यह भी कोई निश्चित नहीं है कि आत्मा मीडियम के भीतर हर बार आयेगी। इन परिस्थितियों में मैं अपनी दिवंगता पत्नी से प्रत्यक्ष वार्तालाप करना चाहता हूं। यदि आपके शास्त्रों में दिवंगता पत्नी का स्थूल दर्शन करने की कोई साधना हो, तो मैं उसे जानना चाहता हूं। क्या आप मुझे वह उपाय बता सकेंगे ?

पूर्णानन्द—हाँ, बता सकूंगा। आज रात बहुत हो चुकी है। तुम कल दोपहर के समय आओ।

नलिनीकान्त—चाहते हुए भी मैं आपको प्रणाम नहीं कर सका, इसके लिए क्षमा चाहता हूं।

पूर्णानन्द—तुमने ठीक ही किया है। इससे कोई अपराध नहीं हुआ है। साधु लोग प्रणाम नहीं चाहते हैं। किसी को बिना जाने प्रणाम नहीं करना चाहिए।

नलिनीकान्त पूर्णानन्द स्वामी के साथ वार्तालाप से बहुत उत्साहित होकर लौटे। जैसे-तैसे रात बिताकर अगले दिन दोपहर के समय वे पुनः स्वामी जी के समक्ष उपस्थित हुए। स्वामी जी के साथ बहुत समय तक उनकी बातचीत हुई।

पूर्णानन्द—तुम अपनी पत्नी को देखना चाहते हो। केवल तुम्हारी पत्नी ही नहीं बल्कि नारी मात्र ही जगज्जननी अद्याशक्ति महामाया की अंशसम्भूत अर्थात छाया है। तुम्हारी पत्नी उनमें समा चुकी है। तुम अपनी पत्नी को पाने के लिए जो साधना कर रहे हो, जगज्जननी

को पाने के लिए वही साधना करनी चाहिए। तुम समष्टि आत्मा को न पाकर व्यष्टि आत्मा के प्रति इतना आसक्त क्यों हो रहे हो? जगज्जननी को पाने से तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध होगा। तुम अपनी पत्नी को पाओगे और साथ ही जगज्जननी को भी पा सकोगे। उस समय तुम समझोगे कि सब कुछ तुम्हारे अधीन है। मैं उस जगज्जननी का प्रत्यक्ष दर्शन करने का उपाय बता दूंगा।

नलिनीकान्त—जगज्जननी को पाने की मुझे कोई अभिलाषा नहीं। उस आत्मीया को पाने के लिए यदि जगज्जननी की आराधना करना आवश्यक है तो मैं उसके लिए तैयार हूं। आप यह साधना-प्रक्रिया मुझे बता दीजिए और अपने साथ हिमालय ले चलिए।

पूर्णानन्द– मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं। तुम्हारे गुरु पहले से ही निर्दिष्ट हैं। तुम उनकी खोज कर सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य की दीक्षा लो, उसके बाद संन्यास लोगे। तुम योग्य गुरु से दीक्षा लेकर महाशक्ति की साधना में प्रवृत हो जाओ। इसके बाद नलिनीकान्त पूर्णानन्द जी से विदा लेकर पुनः अपनी कर्मस्थली कुमिरा लौट आए।

गुरु की खोज

पूर्णानन्द स्वामी के सम्पर्क में आने के बाद नलिनीकान्त के मन में पत्नी को प्रत्यक्ष देखने की आशा बंधी। उन्होंने समझा कि बिना गुरु कुछ नहीं होगा। इसलिए वे गुरु पाने के लिए व्याकुल हो उठे। परन्तु कहीं गुरु का संधान नहीं मिला। पुत्र के मन में आई व्याकुलता को देख पिता भुवन मोहन ने उनसे अपने कुलगुरु से मंत्र लेने के लिए कहा। परन्तु नलिनीकान्त को कुलगुरु पर जरा भी विश्वास नहीं था। गुरु पाने के लिए वे व्याकुल होकर भगवान से अनन्य प्रार्थना करने लगे।

मंत्र की प्राप्ति

एक दिन अचानक रात्रि में नलिनीकान्त का शयनकक्ष आलोकित हो उठा। उस आलोक ज्योति से नलिनीकान्त की नींद टूट गई। उन्होंने देखा कि उनके सामने एक जटाधारी दीर्घकाय संन्यासी खड़े

हैं। उनके प्रसन्न मुखारविन्द और शरीर की आभा से समूचा कक्ष आलोकित हो उठा है। नलिनीकान्त ने तत्काल शय्या त्याग कर उनके चरणों में प्रणाम किया। संन्यासी ने स्नेहपूर्ण और गम्भीर स्वर में कहा, "वत्स, तुम मंत्र प्राप्त करने हेतु व्याकुल हो। मैं तुम्हारे लिए मंत्र लाया हूं, इसे ग्रहण करो।" यह कह कर उन्होंने नलिनीकान्त के हाथ की ओर एक बिल्व पत्र बढ़ा दिया। नलिनीकान्त ने किसी यंत्र द्वारा संचालित पुतले की तरह उस पत्ते को हाथ में लिया। उन्होंने दिया जला कर देखा कि उस बिल्वपत्र पर रक्त चन्दन से एकाक्षरी मंत्र लिखा हुआ है। वह कैसा मंत्र है, उसका जाप कैसे करना होता है, यह सब जानने के लिए उन्होंने मंत्रदाता की ओर देखा। तब तक मूर्ति गायब हो चुकी थी, घर सूना पड़ा था। वे पागलों की तरह घर बाहर चारों ओर खोजने लगे, परन्तु उन्हें संन्यासी का कहीं दर्शन नहीं हुआ। उसके बाद वे बच्चों की तरह रोने लगे– "हाय! मैंने क्या कर डाला, दिया क्यों जलाने गया? दिया जलाए बिना पूछता तो ठीक रहता।" इस प्रकार दुःख और पश्चाताप में ही रात बीत गई। नलिनीकान्त ने मन ही मन सोचा, "क्या यह स्वप्न है? नहीं, स्वप्न में बिल्वपत्र कहाँ से आएगा।" नलिनीकान्त बड़ी दुविधा में पड़ गए।

मंत्र का तथ्य जानने का प्रयास

पूर्वोक्त जिस घटना का वर्णन किया गया है, वह स्वप्न हो सकता है, नलिनीकान्त को ऐसा कतई विश्वास नहीं हुआ। उनका मन अस्थिर हो उठा। वे मंत्र के तथ्यों के बारे में जानने के लिए बंगाल के बड़े बड़े विद्वानों से मिले। सभी ने कहा, "मंत्र अशुद्ध और जप निष्फल है। कभी कभी शैतान भी ऐसे मंत्र देते हैं।" परन्तु इससे नलिनीकान्त का मन नहीं माना। वे इस दैवी घटना का सही मर्म जानने के लिए कुमिरा से कुछ दिनों की छुट्टी लेकर कलकत्ता चले आए।

अद्भुत साधु

कलकत्ता पहुंच कर वे पहले बेलूर मठ और बाद में चटग्राम स्थित जगत्सी के पूर्णानन्द स्वामी के पास गए। परन्तु कहीं पर भी उनके प्राणों

की प्यास नहीं बुझी। एक दिन उन्होंने सुना कि बैरक पुर के पास स्थित चाणक ग्राम में कोई साधु आए हुए हैं। नलिनीकान्त बिना विलंब किए उनसे भेंट करने आए। परंतु वहां जो कुछ देखा उससे उनके विस्मय की सीमा न रही। साधु एक वृक्ष के नीचे आसन जमाये बैठे हैं। उनका मुखमण्डल प्रसन्न और गम्भीर तथा शरीर बलिष्ठ व तेजपूर्ण है। शरीर का रंग शुद्ध हींग जैसा है। नलिनीकान्त ने देखा कि कुछ युवतियां साधु की सेवा में व्यस्त हैं। उनमें से कोई भिक्षाटन कर लौट रही है, कोई रसोई बना रही है तो कोई साधु के शरीर पर तेल मालिश कर रही है। साधु किसी को कोई आदेश नहीं दे रहे हैं। सब किसी यंत्र चालित की तरह अपने-अपने कार्य में लगी हुई हैं। साधु का कोई पुरुष शिष्य नहीं है। नलिनीकान्त इसका कुछ भी रहस्य नहीं समझ पाए। उन्होंने सोचा कि यदि एक ही साधु के लिए इतनी युवतियां आवश्यक हों, तो यह व्यभिचार के अलावा और क्या हो सकता है। वे नाक-भौं सिकोड़कर वहाँ से लौट आए।

केवल नलिनीकान्त ही क्यों, कोई भी साधारण गृहस्थ ऐसी परिस्थिति में उनकी तरह नाक-भौं सिकोड़ता। साधु लोग मन के जिस स्तर पर विचरण करते हैं, साधारण लोग उससे बहुत नीचे के स्तर पर रहते हैं। इसलिए साधु-संन्यासियों के दैनन्दिन कार्यकलापों को सांसारिक बुद्धि से अपने स्तर से देखने के कारण बहुधा बड़ी-बड़ी गलतियाँ कर बैठते हैं। नलिनीकान्त से भी ऐसी ही गलती हुई। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि प्रेम सिद्धि के बाद प्रभुश्री ने समझा कि वह साधु एक असाधारण शक्ति-संपन्न महापुरुष हैं। ❀

काशी यात्रा

नलिनीकान्त उक्त साधु के प्रति श्रद्धा रहित होकर लौटे। अब वे मंत्र का रहस्य जानने के लिए काशी की ओर रवाना हुए। वहां उन्होंने

❀ प्रेम साधना की प्रक्रिया और रहस्य श्रीमत स्वामी निगमानन्द सरस्वती परमहंस देव द्वारा प्रणीत "प्रेमिक गुरु" नामक पुस्तक में विस्तार से दिया गया है।

जगन्मोहन तर्कालंकार के शिष्यों के साथ विशद चर्चा की, फिर भी उन्हें अपनी आशा पूरी होने की कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ी। बल्कि अनेक लोगों से अनेक बातें सुनकर वे मंत्र की साधना-प्रक्रिया जानने के सम्बंध में पूरी तरह निराश हो गए। इस जीवन में प्रियतमा पत्नी से पुनः साक्षात्कार होने की कोई सम्भावना न देख उनका मन विषाद-ग्रस्त हो गया। उन्होंने निश्चय किया कि यदि इस जीवन में परलोक तत्त्व की जानकारी नहीं हुई तो जीवन ही व्यर्थ है।

आत्महत्या का संकल्प

नलिनीकान्त ने विचार किया कि इस ज्वाला को शांत करने का एक मात्र उपाय आत्महत्या ही हो सकती है। आत्महत्या के महापाप का फल अगले जन्म में भोगना पड़ेगा। लेकिन उन्हें इस बात का तो पता ही नहीं कि वह भोग कैसा है और उसका स्वरूप क्या है। अतः नलिनीकान्त ने निश्चय किया कि लक्ष्मण झूले से सर्वपाप-विनाशिनी गंगा में कूद जाने से ही उनके समस्त मनस्ताप का अंत होगा। इसके बाद वे सो गए।

अदृश्य सहायता

सुनसान रात में एक वृद्ध ब्राह्मण ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिए। ब्राह्मण ने नलिनीकान्त के शरीर पर हाथ फिराकर कहा, "वत्स, तुम अपने गुरु को कहाँ ढूंढ रहे हो? वे तो तुम्हारे घर के पास वीरभूम जिले में चण्डीपुर नामक गाँव में रहते हैं। वहाँ पर तारापीठ है। उस तारापीठ में **वामाक्षेपा** नामक ख्यातिप्राप्त तांत्रिक साधक तुम्हें तांत्रिक साधना की प्रक्रिया सिखाने में सक्षम हैं। तुम उनकी शरण में वहाँ जाओ। उनकी कृपा से तुम अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर सकोगे।" यह सब कहने के बाद वृद्ध ब्राह्मण ने उनके कुछ और प्रश्नों का समाधान कर दिया। वृद्ध के शीतल स्पर्श से नलिनीकान्त की भूख और प्यास दूर हो गई। अगले दिन वे वीरभूम के लिए रवाना हो गए।

●

तीसरा अध्याय

साधक जीवन

साधक नलिनीकान्त

नलिनीकान्त वीरभूम जिले के मलारपुर स्टेशन पर उतरे और वहाँ से पैदल चण्डीपुर पहुंचे। इस गाँव के अंतिम छोर पर द्वारका नदी के किनारे दो मील तक भयंकर महाश्मशान फैला हुआ है। श्मशान भूमि में केवल यत्रतत्र मानव अस्थियाँ और चिता की राख बिखरी पड़ी है। इस श्मशान को देखकर भोगी लोग काम्प उठते हैं। वैराग्य के इच्छुक लोगों का अस्थिर चित्त इस दृश्य को देखकर संयत हो जाता है। तांत्रिक साधना का अनुष्ठान करने के लिए गिद्ध, सियार, कुत्ते, नर-कपाल और मानव अस्थि-पंजर, श्मशान, शव और नदी तट तथा सिद्ध पीठ आदि जिन सब चीजों की आवश्यकता होती है, एक ही स्थान पर ये सब चीजें एकत्र होने के कारण ऐसा प्रतीत होता था मानो समूचा तंत्र शास्त्र यहाँ पर साकार उपस्थित है। इस महाश्मशान में दस महा-विद्याओं में से एक महाविद्या, देवी तारा का मंदिर है। चारों ओर नृयज्ञ के हवनकुण्ड रात-दिन अविराम जल रहे हैं। तारा देवी का यह मंदिर एक सिद्धपीठ है। सिद्धपीठ स्वयं सिद्ध है। किसी ने उसकी स्थापना नहीं की है। वह स्वयंमेव प्रतिष्ठित है। वशिष्ठ नामक एक उग्र तपस्वी ने यहाँ सिद्धि प्राप्त की थी। बंगाल के सर्वश्रेष्ठ तांत्रिक वामाक्षेपा की उग्रसाधना के बल से उस समय तारापीठ की प्रसिद्धि थी।

वामाक्षेपा

उक्त वामाक्षेपा अपनी साधना के बल पर चरम तत्त्व को महा-शक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानते थे और उन्होंने विविध तांत्रिक साधनाओं में सिद्धि प्राप्त की थी। वे प्रचण्ड जापक थे। जप में सिद्धि प्राप्त करने पर कोई भी माँ की कृपा से वंचित नहीं होता है—साधु वामाक्षेपा को ऐसी ही कृपा प्राप्त थी। वे देखने में दीर्घकाय थे और उनके शरीर का रंग काला था। वे माँ की बातों के अतिरिक्त कोई और बात नहीं करते थे और माँ तारादेवी के मन्दिर के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान में नहीं रहते थे। अतः वे माँ की कृपा के सच्चे अधिकारी थे। उस कृपा का प्रभाव भी अभूतपूर्व था।

तांत्रिक गुरु से भेंट

यहाँ पर पहुंचकर नलिनीकान्त ने अच्छी तरह समझ लिया कि यह स्थान पूरी तरह तंत्र साधना के अनुकूल है। मन्दिर के परिवेश को साधना के लिए अनुकूल पा कर उनका मन थोड़ा गंभीर हो गया। दिशाओं में व्याप्त जनमानवशून्य श्मशान के दृश्य से उनके मन में भय भी पैदा हुआ। कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद नलिनीकान्त ने तारा देवी के मन्दिर के पास वामाक्षेपा को देखा और परिचय प्राप्त किए बिना उन्हें पहचान कर उनके चरणों में प्रणाम किया। वामाक्षेपा ने नलिनीकान्त को उठकर बैठने के लिए कहा। उनकी थकावट दूर होने के बाद वामाक्षेपा ने उनसे पूछा, "तुम क्या चाहते हो ?"

इसके उत्तर में नलिनीकान्त ने पत्नी के बिछोह से उत्पन्न मानसिक पीड़ा को मन में ही दबा लिया और इस बात को भी गुप्त रखा कि वे पत्नी को पाने के लिए महाशक्ति की साधना करने आए हैं। उन्होंने उनसे केवल मंत्र की प्राप्ति, वाराणसी में आत्महत्या करने के संकल्प और स्वप्न के विवरण को क्रमानुसार बताकर उनकी कृपा की याचना की। वामाक्षेपा को जब पता चला कि नलिनीकान्त को तारादेवी का बीज-मंत्र प्राप्त हुआ, उन्हें बड़ा सुखद आश्चर्य

हुआ। उन्होंने उन्हें बड़ा भाग्यवान मानकर हर तरह से सहायता करने का वचन दिया।

नलिनीकान्त ने आवेग भरे स्वर में कहा, "गुरुदेव, मंत्र अथवा देवताओं में मुझे विश्वास नहीं है। अलौकिक शक्ति प्राप्त करने अथवा असामान्य मूर्ति देखने के लिए भी मुझमें कोई कौतूहल नहीं है। मैं कौन हूं, कहाँ से आया हूं और किस ओर जाऊंगा, आदि का तत्त्व मुझे समझा दीजिए।

वामाक्षेपा—केवल समझाऊंगा ही नहीं, बल्कि मैं तुम्हें वह सब प्रत्यक्ष दिखा भी दूंगा।

नलिनीकान्त—क्या उनके दर्शन प्राप्त होते हैं ?

वामाक्षेपा—हाँ, गुरुमंत्र में उनकी प्राण प्रतिष्ठा कर भक्ति के साथ उन्हें पुकारने से वे अन्तर से बाहर आती हैं। उस समय उनका दर्शन, स्पर्श, घ्राण और आस्वाद किया जाता है। उनके दर्शन होते ही जीव की सभी कामनायें पूरी हो जाती हैं।

नलिनीकान्त—ब्राह्मण की सन्तान होते हुए भी मैंने स्वधर्म की रक्षा करने की कोई शिक्षा नहीं ली है अथवा कभी किसी नियम का पालन नहीं किया। मैंने किसी शास्त्र का अध्ययन अथवा कभी जाप और पूजा आदि नहीं की है। मैंने भक्ति प्राप्त करने के लिए कोई अनुशीलन नहीं किया है। मैं किस प्रकार मंत्र में उनकी प्राण-प्रतिष्ठा कर सकूंगा और भक्तिहीन होकर किस प्रकार भक्ति के साथ उन्हें पुकार कर बाहर ला सकूंगा ?

वामाक्षेपा—स्वप्न में तुम्हें जो मंत्र मिला है, मैं उसमें प्राण प्रतिष्ठा कर दूंगा। तुममें भक्ति का अभाव नहीं है। सत्य की प्राप्ति के लिए प्राणों में जिस ऐकान्तिक व्याकुलता की आवश्यकता होती है उसी का नाम भक्ति है। मुझ पर विश्वास रखो, मैं जो आदेश दूंगा, बिना विचार किए उसका पालन करते जाओ। शीघ्र ही तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।

नलिनीकान्त आश्चर्य से आँखें खोले हुए उनकी ओर देखते हुए कहने लगे, "क्या मैं उनका दर्शन पाऊंगा ? वे किस मूर्ति में मुझे दर्शन देंगी ?"

वामाक्षेपा—माँ की मूर्तियों की क्या कोई सीमा है? यह अनन्त विश्व ही उनकी मूर्ति है। जो जिस नाम से और जिस मूर्ति का ध्यान कर उन्हें पुकारता है, वे उसी रूप में उसकी मनोमयी मूर्ति धारण कर प्रकट होती हैं और भक्त को कृतार्थ करती हैं। तुम्हें स्वप्न में जो मंत्र मिला, उसका प्रतिपाद्य रूप और ध्यान मैं यथा समय बता दूंगा।

नलिनीकान्त—माँ कौन हैं ?

वामाक्षेपा—मैं माँ से भेंट करने का उपाय बताने के अलावा किसी और प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकूंगा। उनसे भेंट होने पर उन्हीं से पूछ लेना कि वे कौन हैं।

विधि और निषेध

तांत्रिक साधनाएं विधि और निषेध के अधीन रह कर करनी होती हैं। अतः तंत्रोक्त किसी विशेष साधना में व्रती होने के लिए समय और काल की उपेक्षा कर किसी भी समय आरंभ करने से सिद्धि प्राप्त नहीं होती। वामाक्षेपा ने उचित समय पर शिष्य का अभिषेक करा कर उन्हें यथारीति जाप में लगाया। उसके बाद वे नित्य जप, नैमित्तिक पूजा और पुरश्चरण आदि पूरा करने के बाद शिष्य को वीरसाधना के योग्य बनाने के लिए सही अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। नलिनीकान्त को नियम, संयम और आचारपरायण बन कर रहना पड़ा। वे वामाक्षेपा से महाशक्ति की साधना संबंधी तथ्यों की जानकारी लेने लगे।

महाशक्ति

ये महाशक्ति ही जगज्जननी हैं। उन्होंने विश्व का सृजन करके उसे धारण किया है। यथा समय वे पुनः अणु-परमाणु के रूप में

आकाश में इस विश्व का लय कर देती हैं। विश्व में जो कुछ दृश्यमान है, वह सब इस महाशक्ति के विकास के विभिन्न चरण हैं। जगज्जननी सभी की जन्मदात्री हैं। ग्रहों-उपग्रहों के आकर्षण तथा विकर्षण के मूल में वही महाशक्ति हैं। मनुष्य की देखने की शक्ति, सूंघने की शक्ति और चखने की शक्ति, ये सब कुछ उस जगज्जननी की शक्तियां हैं। देवराज इन्द्र जिस शक्ति से विश्वब्रह्माण्ड के अधीश्वर हैं, जिस शक्ति से अग्नि विश्व का दहन कर सकती है, जिस शक्ति के प्रभाव से वायु विश्व का विलोड़न कर सकती है—ये सब उस महाशक्ति का ही सूक्ष्म विकास है–उस विशाल शक्ति के एक-एक अंश मात्र हैं। स्थूल रूप में भी यही महाशक्ति समूचे विश्व में व्याप्त हैं। अतः सभी दृश्यमान रूपों की अवधारणा उनके स्थूल रूपों में है। इसके बावजूद दैवी मूर्ति की आराधना करनी चाहिए, क्योंकि यह शीघ्र मुक्ति प्रदान करने में समर्थ है।

इसलिए उपासना के समय काली, तारा, अन्नपूर्णा आदि नारी रूपों; शिव, विष्णु आदि पुरुष रूपों और कृष्ण आदि अवतारी रूपों का अवलंबन करना चाहिए। इन मूर्तियों में से जिसको जो मूर्ति प्रिय लगे उसे उसी मूर्ति की उपासना करनी चाहिए।

स्थान का माहात्म्य

इस महाशक्ति का साक्षात्कार करना हो, तो सबसे पहले अपने भीतर सोई हुई शक्ति को जगाना होगा। परन्तु आत्मशक्ति का विकास प्रत्येक स्थान पर नहीं हो पाता है। जिन बाह्य उपादानों के प्रभाव और स्पर्श से सोई हुई शक्ति जाग उठती है, वह सब इस श्मशान क्षेत्र में थे। इसलिए श्मशान ही तांत्रिक साधना का विशेष अनुकूल क्षेत्र है। अतः तारापीठ की महिमा वर्णनातीत है।

सांप

ईश्वर ने सांप के शरीर में भीषण हलाहल पैदा करने के साथ-साथ उसे सम्मोहिनी शक्ति भी दी है। जो सब साधक किसी तांत्रिक गुरु के

समीप रह कर सांपों के संस्पर्श में आते हैं, सांपों के सांस लेने और छोड़ने के साथ उनके अणु-परमाणु साधकों के भीतर चले जाते हैं। सांप के शरीर का गठन जिन उपादानों से हुआ है, साधकों के शरीर में उनके परमाणु संचरित होते हैं। इसके परिणामस्वरूप कुछ दिनों के बाद सर्पदंश से उन्हें किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती है। दंशन भी क्रियाशील नहीं होता है। साधकों के मन में सम्मोहिनी शक्ति का संचार होता है।

कुत्ते और उलूक

श्मशान में कुत्ते और उल्लू विशेष उपयोगी हैं। कुत्ते और उल्लू घने अंधकार में देख सकते हैं। कुत्ते और उल्लू के साथ निरन्तर रहने से यह शक्ति साधक के शरीर में भी प्रवेश करती है। अतः साधक बिना साधना के भी अंधेरी रात में देख सकता है।

गिद्ध

गिद्ध की दृष्टि शक्ति असाधारण है। यह तीन-चार मील तक देख सकता है। यह पक्षी कई दिन तक बिना खाए रह सकता है और दूषित भोजन को भी पचा सकता है। इसके साथ रहने से साधक की देखने और निराहार रहने की शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

सियार

इस श्मशान में दिन में भी सियार घूमते रहते हैं। नलिनीकान्त एक रात जब एक सियार को दूर खदेड़ते हुए ले जा रहे थे तो वह हुंआ हुंआ करने लगा। इसके साथ ही उन्होंने उसके मुंह के भीतर जलती हुई आग को देखा। अंधेरी रात में उस आग के भीनर चौदह ब्रह्माण्डों की रचना देख नलिनीकान्त किंकर्त्तव्यविमूढ हो वहीं पर कुछ देर तक खड़े रहे। बाद में वे मंदिर में गए और वामाक्षेपा से इस तत्त्व की जानकारी प्राप्त की। वह उल्कामुखी सियार था। ऐसे सियार जिस स्थान पर रहते हैं, वहाँ साधकों की साधना शक्ति, साहस और दृढ़ता काफी बढ़ जाती है।

कुल कन्या

इस विस्तृत श्मशान में निरन्तर चाण्डालिन, धोबिन, नाइन, ग्वालिन, ब्राह्मणी आदि कुल कन्याओं का दाह संस्कार होता रहता है। कभी-कभी लोग शवों को अधजला छोड़ जाते हैं। उन शवों से निकली वस्तुएं साधकों के शरीर में प्रवेश कर उनकी साधना शक्ति बढ़ाती हैं। तारापीठ में तंत्र साधना के उपयोग में आने वाले सभी उपादान एक साथ एक ही स्थान पर उपस्थित थे। अब उन्हें इस बात का जरा भी संदेह नहीं रहा कि तारापीठ तंत्र साधना का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। उन्होंने अनुभव किया कि विभिन्न जीवों के भीतर विशेष ईश्वरीय शक्तियां समाहित हैं।

चिता-साधना

यहां पर कुछ दिन ठहरने के बाद नलिनीकान्त को अपने शरीर के भीतर नवीन शक्ति का स्फुरण महसूस हुआ। इस साधना क्षेत्र में कुछ दिन रहने के बाद उनका मन शक्ति साधना के लिए उतावला हो उठा। अंततः एक दिन कृष्ण पक्ष की वांछित चतुर्दशी की रात्रि भी आई। वामाक्षेपा ने पहले ही साधना के उपयोग में आने वाली सभी सामग्री जुटा ली थी।

वामाक्षेपा उस रात दो प्रहर बीत जाने के बाद शिष्य को सबकी दृष्टि से छिपाकर श्मशान में ले गए। उस दिन श्मशान में दो-तीन शवों का संस्कार किया गया था। अभीष्ट चिता के निकट पहुंच कर वामाक्षेपा ने शिष्य को यथा स्थान बैठने का आदेश दिया। वहां उनसे गुरु, गणेश, बटुक, योगिनी और षोडश मातृका की पूजा कराई और आत्मरक्षा करने का संस्कार संपन्न कराया। इसके साथ ही उन्होंने शास्त्रों में बताई गई विधि से दिशाओं का बंधन करने, आमिषान्न की बलि देने, चिता संस्कार आदि कार्य पूरा करने और शव पर पीत वस्त्र बिछाने के बाद वट पत्र पर पीठ मंत्र लिख दिया। इसके बाद शिष्य को व्याघ्र-चर्म पर वीरासन में बिठाकर उनके सामने दिया जलाया और कहा, "माँ विश्व रूपा हैं। कोई नहीं कह सकता कि वह

किसको किस रूप में दर्शन दें। इष्ट देवी जिस किसी मूर्ति में दर्शन क्यों न दें, वे सन्देह मिटाने के लिए सत्य ही कहेंगी कि वे तुम्हारी इष्टदेवी हैं। उसके बाद तुम उन्हें प्रणाम करोगे। देवी तुम्हारे सिर को पैर से छुयेंगी। इष्ट के अतिरिक्त साधक के ललाट को पैर से छूने का अधिकार और किसी को नहीं है।"

मंत्र का जाप

नलिनीकान्त ने संकल्प किया और वे मन में इष्ट देवता का ध्यान करते हुए जनहीन उस महाश्मशान में चिता पर बैठकर श्रीगुरु के उपदेशानुसार जाप करने लगे। कैसा भयावह था वह दृश्य ! जनहीन नीरव महाश्मशान, कभी-कभार सियार और रात में घूमने वाले प्राणियों का रूखा स्वर एवं द्वारका नदी का कल-कल निनाद सुनाई देता था। युवा साधक कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की घनी अंधेरी रात में आत्म-सत्ता में डूबकर जाप में निमग्न हुए।

विभीषिकायें देखना

नलिनीकान्त ने पहले दूर से खिट-खिट की आवाज सुनी और सियारों के आपस में लड़ने की आवाज उन्हें सुनाई दी। वह आवाज धीरे-धीरे नजदीक आ रही थी। उन्हें लगा मानो कोई ज़ोर से खिलखिलाकर हंस रहा हो और बम-बम की आवाज करते हुए कोई नाच रहा हो। नलिनीकान्त विचलित हो उठे। उन्होंने अनुभव किया कि जैसे कोई हिंस्र प्राणी उनके शरीर से रगड़ खाते हुए उनके अत्यन्त समीप से होकर चला जा रहा है। इसके साथ ही उन्होंने गुरु वामाक्षेपा का "मा भै, मा भै" का ऊंचा स्वर सुना। इससे शिष्य का विचलित चित्त संयत हो गया। उन्होंने पुनः मन को एकाग्र कर जाप करना आरम्भ कर दिया। कुछ देर बाद आकाश में मेघों के गरजने का स्वर सुनाई पड़ने लगा। यही ध्वनि चारों ओर से आकर नलिनीकान्त के कानों में पड़ने लगी। उन्होंने आंखें खोलकर देखा कि आकाश को छूता हुआ काले रंग का एक विशालकाय ऐरावत उनकी ओर तेजी से आ रहा है। सफेद दांत
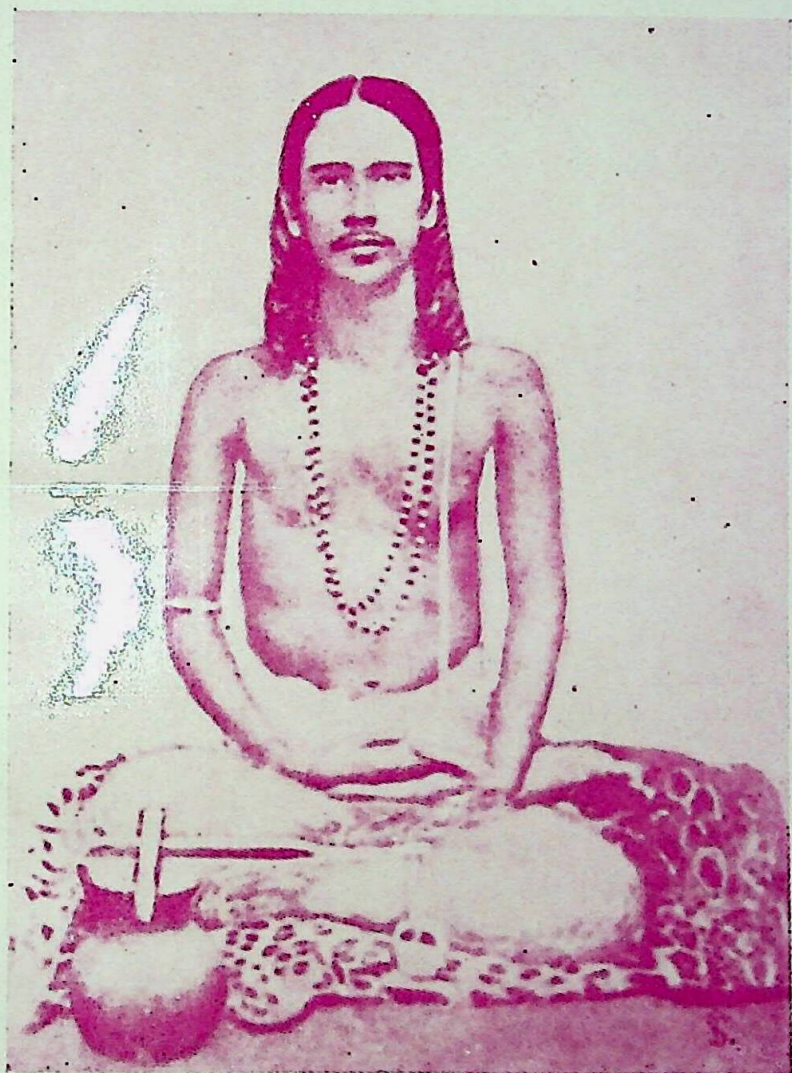
तांत्रिक गुरु
परमहंस श्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव
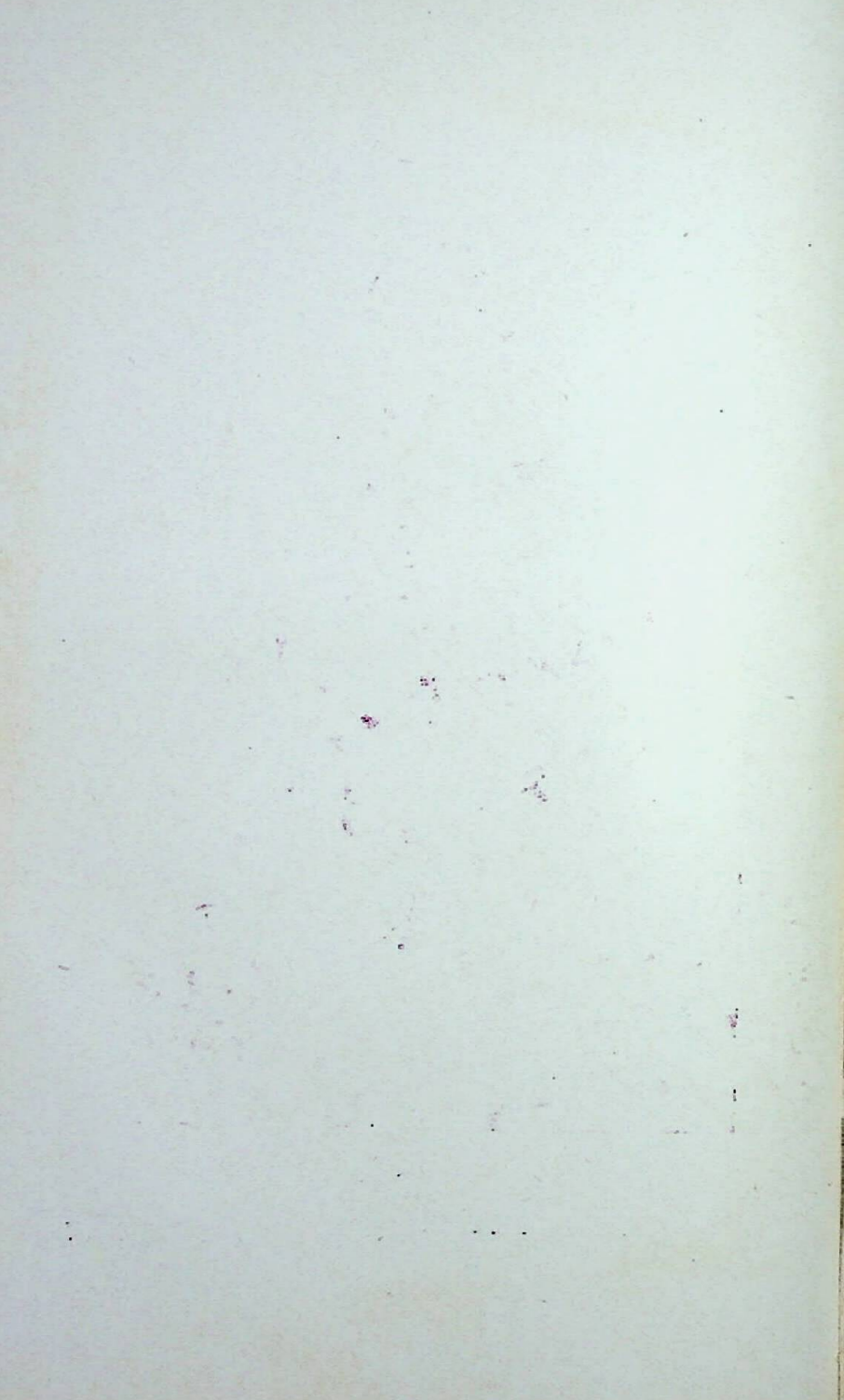
वाले और काले रंग के भूत-प्रेत हीं-हीं करके हंस रहे हैं। दूध जैसे सफेद रंग के मानव अस्थिपंजरों ने वीभत्स नृत्य करना आरम्भ कर दिया है। उन्होंने विचार किया कि इस स्थान से चले जाने का कोई रास्ता नहीं है। इस सबको मानसिक विकृति समझ कर नलिनीकान्त पुनः जाप में प्रवृत्त हुए। धीरे-धीरे बाहरी उपद्रव शान्त होते गए।

महाशक्ति का प्राकट्य

अचानक एक अलौकिक दृश्य से उनका सम्पूर्ण चैतन्य लौट आया। उन्होंने देखा कि उनके प्रत्येक लोम कूप से भाप जैसी तरल ज्योति निकल कर चारों ओर फैल गई है। नलिनीकान्त ने उसके तेज से प्रभावित होकर आंखें खोलीं। वह तेजपुंज तत्काल दिव्य नारी मूर्ति में बदल गया। उस मूर्ति के दर्शन से नलिनीकान्त के विस्मय की सीमा नहीं रही। यह तो उनकी वही दिवंगता पत्नी सुधांशुबाला है!! परन्तु यह पहले की सुधांशुबाला से अधिक गरिमामयी, महिमामयी और लावण्यमयी है। ये देवी नलिनीकान्त को देखकर हंसने लगीं। इससे नलिनीकान्त के मन में भारी द्वन्द्व और सन्देह पैदा हो गया। वे तो अपनी पत्नी को पाने के लिए तारादेवी की साधना कर रहे हैं। तो यह जो मूर्ति उनके सामने है, वह उनकी पत्नी है या इष्टदेवी तारा है? नलिनीकान्त ने प्रश्न किया, "सत्य कहो, तुम कौन हो?"

देवी—मैं तारा, तुम्हारी इष्ट देवी हूं।

नलिनीकान्त—तुम्हारी यह जो मूर्ति है, यह तो मेरे गुरु द्वारा उपदिष्ट मूर्ति नहीं है। सच बताओ, तुम कौन हो?

देवी – सच कहती हूं, मैं तारा हूं। तुमने अपनी पत्नी को पाने के लिए मेरी साधना की है। तुम्हारी साधना फलवती हुई है। इसलिए मैंने तुम्हारी मनोमयी रूप में, जो रूप तुम्हें पसन्द है, जिसे देखने से तुम्हें आनन्द होगा, उसी रूप में आई हूं। मेरा वेदमय रूप तुम्हें सहन नहीं होगा। मैं विश्वरूपा हूं। मुझमें सब कुछ है और मैं सबमें हूं। मैं किसी भी रूप में दर्शन दे सकती हूं। नलिनीकान्त ने परीक्षा

लेने के उद्देश्य से देबी को प्रणाम किया। देवी ने उनके ललाट को बाएं पैर से छूकर कहा, "साधना के फल के रूप में वर मांगो। तुम जो चाहो, तीनों लोकों में तुम जो कुछ चाहोगे, मैं तुम्हें उस का अधिकारी बना दूंगी।"

नलिनीकान्त—तीनों लोकों के ऐश्वर्य से मेरा कोई प्रयोजन नहीं। मैं तुम्हें चाहता हूं।

देवी—मैं सदैव भक्त वांच्छा-कल्पतरु और वरदात्री हूं। तुम्हारी अभिलाषा अवश्य पूरी होगी। मैं सदैव तुममें विद्यमान रहूंगी। अब वर मांगो।

नलिनीकान्त— मुझे कुछ नहीं मांगना है। मैं भीख का झोला लेकर तुम्हारे पास नहीं आया हूं। मैं केवल तुम्हें चाहता हूं। मैं जब तुम्हारा स्मरण करूंगा, तुम तब तब इस मूर्ति में मेरे समक्ष प्रकट होगी। यदि हो सके तो यही वर दो।

देवी— तुमने श्रीगुरू की कृपा से मेरे साक्षात दर्शन प्राप्त किए। तुम्हारे लिए और बंधन संभव नहीं है। मैं तुम्हारे साथ अभिन्न रूप में विराजित रहूंगी। तुम निश्चित मन से और निडर होकर जहां चाहे वहां जाओ। सभी फलाफल मुझे अर्पित कर मेरे भक्तों में ब्रह्मज्ञान का वितरण करो। वत्स, अब मैं अपने स्वरूप में जा रही हूं। तुम्हारे चाहने मात्र से मैं तुम्हारी मनोमयी मूर्ति में तुम्हारे समक्ष प्रकट होऊंगी।

नलिनीकान्त—मुझे एक बार अपने गुरु द्वारा उपदिष्ट मूर्ति दिखाओ।

इसके बाद मनोमयी मूर्ति धीरे-धीरे विलीन होकर ज्योतिपुंज में बदल गई। महाशून्य में वृहद् ज्योतिर्मण्डल के भीतर सद्य छिन्न, रक्ताक्त नृमुण्डमालिनी, रक्तनेत्रा, उर्ध्वकेशा, खड़गधारिणी, रुद्र नृत्यपरायणा तारा ने नलिनीकान्त को अपना स्वरूप दिखाया। नलिनीकान्त महाशक्ति की स्वरूप मूर्ति देख कर भाव विभोर होने के साथ मूर्छित हो गए।

गुरु वामाक्षेपा तारा मन्दिर से सब कुछ देख रहे थे। शिष्य को चेतनाशून्य होते देख वे धीरे-धीरे उनके पास गए और स्नेह से उनके

निष्पन्द शरीर को गोदी में लेकर बैठे रहे। कुछ समय पश्चात नलिनीकान्त ने आंखें खोलीं और वामाक्षेपा को देखा। तब तक रात समाप्त हो चुकी थी। वामाक्षेपा ने कहा, "वत्स, तू धन्य है, तेरे जैसे शिष्य का गुरु बनकर मैं भी धन्य हो गया।" नलिनीकान्त ने धीरज के साथ श्रीगुरु के चरणयुगल को छाती से लगा कर श्रद्धापूरित नेत्रों से कहा —

"नमस्ते नाथ भगवन् शिवाय गुरुरूपिणे,
विद्यावतार संसिद्धौ स्वीकृतानेक विग्रह ॥१॥
नारायणस्वरूपाय परमात्मैक मूर्त्तये,
सर्वज्ञान तमोभेदभानवे चिद्घनायते ॥२॥
स्वतंत्राय दयाक्लुप्त विग्रहाय शिवात्मने,
परतंत्रीय भक्तानां भवानां भवरूपिणे ॥३॥
विवेकिनां विवेकाय विमर्षाय विमर्षिणाम्,
प्रकाशानां प्रकाशाय ज्ञानीनां ज्ञानरूपिणे ॥४॥
त्वत् प्रसादादहं देव कृतकृत्यास्मि सर्वतः,
मायामृत्यु महापाशात विमुक्तोस्मि शिवोऽस्मिच ॥५॥"

पत्नीरूपी महाशक्ति के साथ प्रेमालाप

सिद्धि प्राप्ति के बाद नलिनीकान्त एक-दो दिन वामाक्षेपा के पास ठहरे और उसके बाद उनसे विदा लेकर कर्मस्थली कुमिरा लौट आए। बाहर कर्म का बाह्य आवरण रहने पर भी अन्तःसलिला फलगु नदी की तरह उनके अन्तर में अनिर्वचनीय आनन्द की धारा बहने लगी। दैनिक कार्यों के बाद अवसर मिलते ही नलिनीकान्त अपने बन्द कक्ष में मनोमयी मूर्ति का स्मरण करते थे और मां उनके सामने प्रकट होती थीं। पहले तो वे परीक्षा लेने के उद्देश्य से बन्द कक्ष में दिन में दो-तीन बार स्मरण करते थे। इस प्रकार नलिनीकान्त सानन्द समय बिताने लगे।

युवा होने के साथ-साथ नलिनीकान्त के मन में नूतन उत्साह था। साथ ही उन्होंने तांत्रिक सिद्धि प्राप्त कर ली थी। जगन्माता ने उन्हें पति के रूप में वरण कर उन्हें तांत्रिकों में अभिनव और वरेण्य स्थान प्रदान किया। अतः नए भाव का संचरण होने के परिणामस्वरूप नलिनीकान्त के शरीर की बाह्य आकृति में क्रमशः परिवर्तन दिखाई देने लगे।

देवी द्वारा पत्नी के रूप में दर्शन दिए जाने से नलिनीकान्त के मन में स्वामीभाव जाग उठा। बिल्कुल सुधांशुबाला का रूप था वह। वही प्रकृति, वही आयु, वही चितवन, वही हंसी, वही चाल और वही मुद्रा। दोनों एक शय्या पर बैठकर देर तक अर्थहीन बातचीत में समय बिताने लगे। नलिनीकान्त महामाया को पत्नी के रूप में देखने लगे। परन्तु पत्नी की मूर्ति के समक्ष तत्त्व की चर्चा करने में उन्हें लज्जा बोध हुआ। इसलिए वे तत्त्व सम्बन्धी बातें नहीं पूछ सके। धीरे-धीरे ऐसी स्थिति हुई कि मूर्ति का सामान्य चिंतन करते ही देवी प्रकट होकर प्रेमालाप करने लगीं। आखिर नलिनीकान्त को इस मूर्ति को पकड़कर आलिंगन करने की इच्छा हुई। एक दिन नलिनीकान्त ने उस मूर्ति को गोदी में उठाने की चेष्टा की। परन्तु आश्चर्य की बात है कि पकड़ने आते ही वह मूर्ति पास आकर नलिनीकान्त के शरीर में समा गई। वे उसी क्षण चेतना खो बैठे। इसके बाद नलिनीकान्त जब-जब चाहते मूर्ति उनके पास आती, परन्तु उनकी यह इच्छा पूरी नहीं होती। अपनी प्रिय वस्तु पास आ रही है, परन्तु पकड़ने पर पकड़ में नहीं आती— इस प्रकार की विचित्र स्थिति से नलिनीकान्त के मन को जो कष्ट होता था, वह वर्णनातीत है।

स्वरूप की स्मृति

महाशक्ति का पत्नी के रूप में साक्षात्कार करने के बाद नलिनीकान्त के मन में आनन्द के स्थान पर निरानन्द दिखाई देने लगा। वे सोचने लगे कि महाशक्ति के उनकी पत्नी के रूप में आने पर भी स्वरूप में वे उनकी पत्नी नहीं हैं। कहाँ, वे तो उन्हें सहज रूप में

नहीं पा सके। जिस प्रकार हम लोग आमतौर पर माँ के साथ वातचीत करते हैं, उनके पास जाते हैं, उनका जगज्जननी की इस मूर्ति के साथ वैसा सम्बन्ध नहीं रह पाया।

नलिनीकान्त ने इसके बाद देवी का स्मरण नहीं किया। परन्तु उनके मन में सामान्य चिंता का उद्रेक होने पर महाशक्ति का वही रूप तत्काल सामने दिखाई देता था। वे जब विरक्त होकर उन्हें जाओ कहते थे, देवी उसी क्षण चली जातीं। इस प्रकार कुछ दिन बीते। उनके मन में भारी परिवर्तन दिखाई दिया। नलिनीकान्त सोचने लगे कि जो महाशक्ति पत्नी के रूप में दर्शन देकर मुझे लुभा रही हैं, वे कौन हैं ? मैं किस कारण उनके रूप के मोह में आकृष्ट होकर उनकी दासता की जंजीर में बंधा जा रहा हूं ? ये तारादेवी कौन हैं ? मैं देखता हूं कि मेरे ही शरीर से तरल ज्योति निकल कर तारा की मूर्ति में बदल जाती है। अतः तारादेवी का जन्म मेरे शरीर से होता है। तब मैं कौन हूं, मेरा स्वरूप क्या है ? महाशक्ति का दर्शन करने पर भी मेरे अहंभाव में कोई बदलाव नहीं आया। इससे पहले मैं जैसा नलिनीकान्त था अब भी वैसा हूं। मुझ में तो कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। फिर ये तारादेवी कौन हैं। उनके द्वारा दर्शन दिए जाने के बावजूद मुझ में बदलाव नहीं आया। मैं नाथ लगे बैल की तरह इनके इशारे पर चलता हूं और चीनी का भार ढोने वाले बैल की तरह सदैव इनके आज्ञाधीन होकर भी क्या इनके स्वरूप के आस्वादन से वंचित रहूंगा ? जब तक मैं यह न जान सकूं कि तारादेवी के साथ मेरा कोई नित्य सम्बन्ध है अथवा नहीं, मुझे लेशमात्र भी शांति नहीं मिलेगी। उनका यह भाव धीरे-धीरे बढ़ता गया। इस सम्बन्ध में किसी निश्चय पर न पहुंच पाने के कारण वे पुनः वामाक्षेपा के पास गए।

तांत्रिक गुरु का निर्देश

नलिनीकान्त ने वामाक्षेपा को अपने मन की व्याकुलता से अवगत करा दिया। उन्होंने उनसे प्रश्न किया, "गुरुदेव, मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि

तारादेवी का जन्म मेरे शरीर से होता है। तब मैं कौन हूं और मेरा स्वरूप क्या है ?"

नलिनीकान्त के मुंह से ऐसी बातें सुनकर वामाक्षेपा क्रोध से जल उठे। उनकी आँखें जवा कुसुम की तरह लाल हो उठीं। उनका मुख-मण्डल प्रलयकारी मेघ की तरह रौद्र हो उठा। उन्होंने अत्यन्त तिरस्कार के साथ रूखे स्वर से अकथ्य शब्दों में कहा, "हतभागे, महा-शक्ति का जन्म तेरे से हुआ है ?" वामाक्षेपा की इस गर्जना से तारा मंदिर कांपने लगा। वामाक्षेपा बहुत ही क्रुद्ध होकर वह स्थान छोड़ कर तारा मंदिर में चले गए। इससे नलिनीकान्त तनिक भी भयभीत अथवा विचलित नहीं हुए। वे इस बात पर दृढ़ रहे कि उनके मन में जो प्रश्न जागा है उसका समाधान करने के लिए वे हर विपदा का सामना करने को तैयार हैं।

अगले दिन सवेरे वामाक्षेपा ने नलिनीकान्त के पास आकर कहा, "तुम्हारे बारे में मैंने माँ तारा से पूछा है। उनसे जो उत्तर मिला उसके अनुसार तुम्हें तत्त्व ज्ञान प्राप्त करने के लिए संन्यास लेना होगा। इस पथ में तत्त्व ज्ञान प्राप्त नहीं होगा।"

नलिनीकान्त ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "तब आप मुझे संन्यास दीजिए"।

वामाक्षेपा ने उत्तर दिया, "वत्स ! तुझे शंकर सम्प्रदाय में सम्मिलित होकर संन्यास लेना होगा। मैं अवधूत संन्यासी हूं। इसलिए यह कार्य मुझसे नहीं हो सकेगा। तू ज्ञानी गुरु की खोज कर। शीघ्र ही तेरी मनोकामना पूरी होगी। माँ तुझ से अनेक कार्य कराएंगी।"

इसके बाद वामाक्षेपा ने शिष्य को लेकर उनके भविष्य जीवन में घटने वाली अनेक गुप्त बातें बताईं और यह भी बताया कि गुरु किस प्रकार मिलेंगे। साथ ही माँ उनके द्वारा क्या कार्य कराना चाहती हैं, उसकी थोड़ी बहुत जानकारी भी दी। गुरु की भविष्यवाणी नलिनीकान्त के जीवन में सत्य हुई।

संसार का त्याग

वामाक्षेपा से विदा लेकर नलिनीकान्त कुमिरा लौटे। इसके बाद उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया तथा पिता, भाइयों और अन्य सगे-सम्बन्धियों को कुछ बताए बिना काशीधाम के लिए प्रस्थान किया। "मैं कौन हूं" - इस तत्त्व का रहस्य जानने के लिए वे पागल जैसे हो गए। अतः संसार का कोई बन्धन उन्हें अपने संकल्प से डिगा नहीं सका।

उनके सगे-सम्बन्धी यह समाचार पाकर अधीर हो गए। पिता भुवन मोहन के सिर पर मानो वज्रपात हो गया। उनकी आँखों के सामने पुत्र के शांत स्वभाव, मधुर व्यवहार, पिता के प्रति उनकी अटूट भक्ति जैसे गुण एक के बाद एक नाच उठे। पिता को इस बात की बहुत ही चिन्ता थी कि उनका पुत्र संन्यास जीवन की कठोरता किस प्रकार सहन करेगा। वृद्ध पिता यह सब सोचते हुए बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगे। उनके सगे-सम्बन्धियों ने वृद्ध को तरह तरह से सांत्वना दी और नलिनीकान्त का पता लगाने के लिए चारों ओर आदमी भेजे।

पुनः काशी यात्रा

काशी पहुंचने के बाद नलिनीकान्त ने शंकर सम्प्रदाय के संन्यासियों के साथ संन्यास की सार्थकता के सम्बन्ध में चर्चा की। उस समय काशी में कृष्णानन्द स्वामी का काफी प्रभाव और आदर था। नलिनीकान्त ने उनके दर्शन कर उनके साथ संन्यास के बारे में चर्चा की। कृष्णानन्द स्वामी ने नलिनीकान्त को विशेष स्नेह दिया और यह भी बताया कि उनमें असाधारण प्रतिभा है। ठीक इसी समय नलिनीकान्त को पता चला कि उनके सगे-सम्बन्धी काशी में उन्हें खोज रहे हैं। इसलिए वे काशी में रहना उचित न समझते हुए वहाँ से वृन्दावन के लिए चल दिए।

ऐन्द्रजालिक विद्या की शिक्षा

वृन्दावन में पहुंचकर नलिनीकान्त किसी वैष्णव बाबा के घर पर ठहरे और गुरु की खोज करने लगे। साधु लोग उनकी युवावस्था और सुन्दर मनोहारी शरीर की ओर आकृष्ट हो जाते थे। वृन्दावन में भी सच्चे ज्ञानी गुरु का संधान नहीं मिला। तथाकथित साधु नलिनीकान्त को उनके बिना कहे ही तरह-तरह की भोज विद्या, ऐन्द्रजालिक विद्या, रोग निवारक मंत्र, खौलते तेल में हाथ पैर डुबाने, राख को चीनी में और लोहे को सोने में बदलने, आग बुझाने और सांप के काटे का जहर उतार देने, वृक्ष के ऊपरी भाग को नीचे झुका देने आदि जैसे कौशल सिखाने लगे। नलिनीकान्त ने भी कौतूहलवश यह सब विद्याएं सीखीं। परन्तु बाद में वे इसके लिए स्वयं को धिक्कारने लगे। उन्होंने मन ही मन सोचा कि आखिर यह सब सीखने का मेरा उद्देश्य क्या है ? इन चीजों का अध्यात्मतत्त्व के साथ क्या सम्बन्ध है ?"

इस बीच उनके आश्रयदाता बाबा ने नलिनीकान्त को पास बुलाया और उनसे अपनी अविवाहिता पुत्री के विवाह का प्रस्ताव रखा। नलिनीकान्त ने बिना मांगे बाबा द्वारा दिए जाने वाले उस दान को ठुकरा दिया और वे वहाँ से चले आए।

अनाहारी साधु

विभिन्न स्थानों का भ्रमण कर और अनेक साधुओं के सम्पर्क में आकर नलिनीकान्त को जो अनुभव प्राप्त हुआ, उससे वे निराश हो गए। एक बार वे एक ऐसे साधु के सम्पर्क में आए जिनके बारे में उन्हें बताया गया कि वे निराहार रहते हैं। उनकी बात सुनकर और उनके बाह्य आचरणों को देख नलिनीकान्त उनके प्रति आकृष्ट हो गए। वे उनके पास ठहर कर भृत्य की तरह उनकी सेवा करने लगे। उन्होंने ध्यान से देखा कि साधु दिन भर कुछ नहीं खाते हैं। परन्तु एक रात को अचानक नलिनीकान्त की नींद टूट गई। उन्होंने साधु को पास के कमरे में खाते देख लिया। इससे उन के मन को बहुत ही दुःख हुआ। उन्होंने सोचा, "क्या मेरे भाग्य में ऐसी भी विडम्बना थी।" इस घटना के बाद नलिनी-

कान्त अपने कपड़े लत्ते लेकर वहां से निकल पड़े। उन्हें जाते देख साधु ने पूछा, "अहो, क्या साधु बनना इतने में हो गया।" उनकी बात सुनकर नलिनीकान्त बहुत ही क्रोधित हो उठे और उन्होंने कहा, "तुम जैसे पाखण्डी के पास रहने से क्या लाभ ?"

नलिनीकान्त के इस आक्षेप से साधु के चेले उत्तेजित हो उठे। नलिनीकान्त ने जब उन्हें बताया कि किस प्रकार साधु रात को खा रहे थे, तो चेले बहुत ही लज्जित हुए और चुप रहे।

इस प्रकार विभिन्न स्थानों से निराश होकर उन्होंने हरिद्वार, कनखल, ऋषिकेश आदि स्थानों का भ्रमण किया और गुरु की खोज करते हुए वे अनेक साधुओं के सम्पर्क में आए। उन्होंने देखा कि कोई साधु काफी मात्रा में खाता है, तो कोई बिल्कुल नहीं खाता है, कोई सात दिन के बाद खाता है, तो कोई तमाम दिन कड़ी धूप में खड़ा रह सकता है, कोई कड़ाके की सर्दी सहन कर सकता है तो कोई एक ही पैर पर खड़ा रह सकता है। इस प्रकार तांत्रिक साधुओं के डरावने और वीभत्स आचरणों को देख-देख अन्त में सच्चे साधु जीवन के प्रति उनके मन में वितृष्णा पैदा हो गई।

ज्योतिर्मय जगत

इस प्रकार से कुछ दिन बीत जाने के बाद एक दिन अचानक नलिनीकान्त को समूचा जगत ज्योतिर्मय दिखाई दिया। उन्होंने जिस ओर भी देखा सोने का रंग जैसा दिखाई दिया। रात में सोते समय चारों ओर दिन की तरह स्वर्णमय दिखाई दिया। आंखें बन्द करने और खोलने, दोनों ही अवस्थाओं में उन्हें जगत एक जैसा दिखाई दिया। अतः रात और दिन कब और कैसे आते-जाते हैं, उन्हें पता ही नहीं चलता। उन्हें यह जगत एक प्रकार से अति सौन्दर्यमय लगा। ऐसी अवस्था में उन्होंने पुनः एक बार काशी की यात्रा की। काशी पहुंच कर उन्होंने देखा सब कुछ स्वर्णमय है। काशी सचमुच सोने जैसी है। इस प्रकार कुछ दिन बीत जाने के बाद उन्हें अपनी यह अवस्था बुरी लगने

लगी। भरसक चेष्टा करने पर भी वह अवस्था दूर नहीं हुई। एक दिन मणिकर्णिका घाट पर किसी साधु के पैरों को छूकर प्रणाम करने के साथ-साथ वह अवस्था अचानक दूर हो गई। नलिनीकान्त ने इसे साधु का माहात्म्य समझा और उनसे इस अवस्था का कारण पूछा। जब साधु से इसका कोई उत्तर नहीं मिला, तो उनका मन खराब हो गया। बाद में उन्हें पता चला कि अपने गुरु के अतिरिक्त दूसरे संन्यासियों को दूर से ही प्रणाम करना चाहिए। पैर छूकर प्रणाम करने से अच्छा या बुरा दोनों में से कुछ भी हो सकता है। उसके बाद वे विभिन्न स्थानों पर गुरु की खोज करने लगे। बीच-बीच में दो-तीन दिन तक उन्हें खाने को कुछ भी नहीं मिलता। कभी-कभी भूख से व्याकुल होकर वे कीचड़ खाकर ही पानी पी लेते। उस दौरान उन्हें शरीर का ध्यान कतई नहीं रहता। उनके सिर के बालों में जटाएं बंध गई थीं। धूल और मिट्टी से सिर के बाल ऐसे हो गए कि लोग उन्हें देखकर सोचते कि यह पागल है।

ज्ञानी गुरु की प्राप्ति

काशी से चलकर विभिन्न स्थानों का भ्रमण करने के बाद नलिनीकान्त अन्त में अजमेर में रहने लगे। उन्हें देखकर वहां पर रहने वाले बंगालियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। नलिनीकान्त ने भी उनसे मित्रता की। इस दौरान एक दिन उन्होंने सुना कि कोई साधु पास के किसी स्थान पर प्रवचन देंगे। उन्होंने मित्रों से अनुरोध किया कि वे वहां पर जाकर साधु का प्रवचन सुनें। प्रवासी बंगाली वहां पर सरकार में ऊंचे-ऊंचे पदों पर असीन थे। इसलिए वे किसी हिन्दुस्तानी साधु का प्रवचन सुनने के लिए राजी नहीं हुए। यहां तक कि उन्होंने नलिनीकान्त को भी वहां पर जाने से रोका। परन्तु नलिनीकान्त उनकी बात पर ध्यान न देकर वहां पहुंच गए। उन्होंने दूर से देखा कि कोई जटाधारी साधु प्रवचन कर रहे हैं। वे थोड़ा आगे बढ़कर चौंक उठे। उन्होंने देखा कि जो साधु उन्हें बिल्वपत्र में एकाक्षरी मंत्र देकर अदृश्य हो गए थे वही साधु वहां पर प्रवचन कर रहे हैं और हजारों

लोग उनकी बात सुन रहे हैं। नलिनीकान्त ऊंचे स्वर में "पहचान लिया, गुरु को पा लिया" आदि कहते हुए दौड़ते गए और सबसे आगे जाकर साधु के चरणों में मूर्छित होकर गिर पड़े। साधु का प्रवचन बन्द हो गया। बाह्य ज्ञान लौटने पर नलिनीकान्त ने देखा कि उनके सामने दो चेले और वे साधु खड़े हैं। साधु ने कहा, "क्या चाहता है?" नलिनीकान्त ने उत्तर दिया, "आपके साथ रहकर साधुओं का सा जीवन-यापन करना चाहता हूं।" साधु ने रूखे स्वर में कहा, "नहीं, बंगाली लोग भोगी हैं, साधु नहीं बन सकते।" उस समय नलिनीकान्त ने कुमिरा में बन्द कमरे में साधु का दर्शन पाने और उनके द्वारा मंत्र प्रदान किए जाने की घटना का यथावत वर्णन किया और उनकी कृपा की याचना की। "सब झूठी बात है, भागो, साला मछलीखोर" कह कर साधु लम्बे लम्बे पग उठाते हुए वहाँ से लौट चले। दोनों चेले लोटा और कम्बल लेकर उनके पीछे-पीछे चल पड़े। नलिनीकान्त साधु के मना करने के बावजूद उनका अनुसरण करने लगे।

आश्रम जीवन

उन साधु का नाम **स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती** था। पुष्कर तीर्थ में उनका आश्रम था। नलिनीकान्त के वहां पर पहुंचते ही सच्चिदानन्द ने उन्हें पुनः अनेक भद्दी गालियां दीं और उन्हें वहां से भगाने की चेष्टा की। परन्तु नलिनीकान्त इससे विचलित नहीं हुए और वहां पर रहने लगे। वे वहां पर स्वयं को आश्रम के कठोर जीवन में ढालने लगे। उन्होंने वहां पर लकड़ी चीरने, बर्तन मांजने, घास काटने, रसोई बनाने आदि सभी कार्य करने के साथ-साथ साधु की गालियां सहते हुए उनकी कृपा प्राप्त करने की चेष्टा की। आश्रम में खाने में खट्टी छाछ और गाय-बैलों को दी जाने वाली भूसी में गुड़ मिला कर बनाई जाने वाली मोटी रोटियां दी जाती थीं। छाछ में मिर्च का चूरन मिलाया जाता था जिससे वह और तेज हो जाती थी। इस सबको छोड़कर वहां पर और किसी प्रकार के खाने की व्यवस्था नहीं थी। किसी विलासी बंगाली युवक के लिए ऐसे कठोर जीवन में स्वयं को

ढालना कितना कष्टसाध्य है, आधुनिक संन्यासियों, ब्रह्मचारियों और गृहस्थों के लिए सोचने की बात है।

रसोई बनाना

सच्चिदानन्द के शिष्यों में एक मात्र नलिनीकान्त ही ब्रह्मचारी सेवक थे। इसलिए सामान्यतः उन्हें ही रसोई बनानी पड़ती। एक दिन नलिनीकान्त चूल्हे पर भात रख दूर से ब्रह्मज्योति से उद्भासित सच्चिदानन्द के मुखारविन्द की ओर एकटक देखते-देखते रसोई की बात भूल गए। इस बीच भात जलने लगा और बर्तन से भात के जलने की गंध आने लगी। यह देख सच्चिदानन्द ने उन्हें अकथ्य शब्दों में गालियां दीं। इस पर नलिनीकान्त ने कोई उत्तर दिए बिना मन ही मन कहा, "आप थोड़ा समझते तो सही कि ऐसा क्यों हुआ।"

घास काटना, लकड़ी काटना और चीरना

कुछ दिन बाद उन्हें आश्रम की गायों के लिए घास काटने का आदेश मिला। पहाड़ी क्षेत्र की घास में बड़ी-बड़ी जोंक रहती थीं। नलिनीकान्त को जोंक से बड़ा डर लगता था। एक दिन उन्होंने सोचा कि जोंक से मुझे इतना डर क्यों लगता है? वे मुझे खा तो नहीं जाएंगी। यह सोचकर वे कुछ जोंक लाकर अपने शरीर पर रख कर बैठे रहे। इस प्रकार धीरे-धीरे जोंक से उनका भय दूर हो गया। जिस दिन जोंक से उनका भय दूर हुआ, उस दिन से उन्हें घास काटने के स्थान पर लकड़ी चीरने का काम दिया गया। नलिनीकान्त ने उस काम में भी मन लगाया। एक दिन कुल्हाड़ी से उनके पैर में चोट लग गई और खून की धार बह निकली। उस दिन से श्रीगुरु ने लकड़ी चीरने का काम भी बन्द कर दिया।

देवमूर्ति साफ करना

इसके बाद उन्हें देवमूर्तियों की सफाई का काम सौंपा गया। वेदान्ती साधु होते हुए भी सच्चिदानन्द मूर्ति-पूजा करते थे। वेदान्ती होने

के कारण नलिनीकान्त मूर्ति-पूजा को नहीं मानते थे। वे सच्चिदानन्द द्वारा की जाने वाली मूर्ति-पूजा को घृणा की नजरों से देखते और बेमन से पूजा करते। सच्चिदानन्द ने पूजा के समय नलिनीकान्त का ऐसा भाव देख उन्हें सावधान कर दिया और कहा कि देवताओं की पूजा अश्रद्धा भाव से नहीं की जाती। इस पर नलिनीकान्त बोले, "ये मूर्तियां तो धातु की बनी हैं, इन्हें देवता कैसे कहा जा सकता है? धातु की मूर्तियों में तो प्राण नहीं होते हैं।" यह सुनकर सच्चिदानन्द क्रोधित होकर उन्हें अकथ्य शब्दों में गालियां देने लगे। सच्चिदानन्द स्वामी के चले जाने के बाद नलिनीकान्त एक मूर्ति को आसन से खींच लाए और उन्होंने उसके दोनो गालों पर दो थप्पड़ मारे और कहा, "तेरे कारण ही मुझे इतनी गालियां सुननी पड़ी।" पता नहीं उस समय सच्चिदानन्द जी कहां थे, वे अचानक आकर कहने लगे, "अरे, तू तो कह रहा था कि मूर्तियों में प्राण नहीं होते, लेकिन तू तो बातचीत कर रहा था, पर किसके साथ?" इस पर दोनों हंसते-हंसते चले गए।

धूनी सजाना

सच्चिदानन्द स्वामी सदैव धूनी जलाया करते थे। भारत के पश्चिमी क्षेत्र के साधु धूनी को बहुत ही पवित्र मानते हैं। वे धूनी पर दूध गरम करते हैं, गांजा पीते हैं और रोटियाँ सेकते हैं। फिर भी उनका ऐसा संस्कार है कि वे धूनी को बहुत ही पवित्र मान कर उसकी पूजा करते हैं। सच्चिदानन्द के निर्देश के अनुसार कोई भी धूनी की लकड़ी को लांघ नहीं सकता। परन्तु नलिनीकान्त बंगाली युवक थे और अपने प्राथमिक जीवन में नास्तिक थे। इस समय वे वेदान्ती थे। इसलिए वे इन बातों को नहीं मानते थे। एक दिन अचानक उनका पैर धूनी की लकड़ी से लग गया। उस दिन श्रीगुरु ने उनका बहुत अपमान किया। दूसरे दिन फिर उनका पैर लग गया। उस दिन भी सच्चिदानन्द ने उनका बहुत अधिक अपमान किए बिना नहीं छोड़ा। तीसरी बार पैर लगते ही सच्चिदानन्द आग बबूला हो उठे और उन्होंने चिमटा उठाकर कहा, "पुनः ऐसा करेगा तो तेरी टाँगें तोड़ दूंगा।" इससे नलिनीकान्त सावधान हो गए।

सच्चिदानन्द का व्यवहार

नलिनीकान्त को अकातर भाव से समस्त कठोर व्यवहारों को सहन करते देख कर धीरे-धीरे सच्चिदानन्द का मन उनके प्रति स्नेह-शील होता गया। सच्चिदानन्द जिस समय अश्लील गालियां देते थे, नलिनीकान्त को बहुत कष्ट होता था। वे सोचते थे कि जो साधु या महापुरुष हैं उनकी भाषा इतनी अशिष्ट कैसे हो सकती है? ऐसा सोचते-सोचते उन्होंने आश्रम जीवन-यापन करने की इच्छा त्याग दी। केवल इस अश्लील भाषा के कारण आश्रम का त्याग कर अन्यत्र चले जाने की उनकी इच्छा को देखकर सच्चिदानन्द के एक दूसरे शिष्य ब्रह्मानन्द ने उन्हें तरह-तरह से आश्वासन दिया और कहा, "देखो भैया, संन्यासी बनना हो तो जीवत्व की बली चढ़ानी होगी। दूसरे शब्दों में संन्यासी आश्रम जीवन-यापन करके जीवित तो रहेगा, पर उसका जीवत्व बिल्कुल नहीं रहेगा। इसी कारण संन्यासियों के लिए ऐसी कठोर व्यवस्था है।" यही ब्रह्मानन्द स्वामी अपने परवर्ती जीवन में ब्रह्मानन्द परमहंस के नाम से विख्यात हुए और भारत में प्रायः सभी लोग उन्हें उनकी "ब्रह्मानन्दी भजन" और अनेक दूसरी धार्मिक पुस्तकों के लिए जानते हैं। उनके उपदेश से नलिनीकान्त थोड़ा शांत हुए। परन्तु उनका मन इससे पूरी तरह संतुष्ट नहीं हुआ। नलिनीकान्त ने सोचा कि यह भी कैसी बात है कि जीव के जीवत्व को नष्ट करने के लिए अकथ्य शब्दों में गालियां सहनी होंगी? इसी दौरान उन्होंने सच्चिदानन्द के पूर्वाश्रम के बारे में जाना।

सच्चिदानन्द का पूर्वाश्रम

उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग में काबुल के दोस्त मुहम्मद खां ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध घोषणा की। उस समय लार्ड आकलैण्ड अंग्रेजों के सेनापति थे और सच्चिदानन्द उनके अधीन एक हवलदार थे। अंग्रेज पेशावर के पास छावनी डालकर रहते थे। उसी समय एक रात सच्चिदानन्द ने पास के पहाड़ पर आलोक देखा और इस सम्बंध में अपने ऊपर के अंग्रेज अधिकारियों को बताया। उन्हें संदेह हुआ कि शत्रु उस पहाड़ के पीछे छिप कर आक्रमण करने की ताक में है। इस

लिए वे सुनसान रात में अपने कप्तान को साथ लेकर पहाड़ की ओर अग्रसर हुए। कुछ दूर जाने के बाद उन्हें वह आलोक दिखाई नहीं दिया, इसलिए वे लौट आए। लगातार दो-तीन रात ऐसा ही हुआ। वे दोनों पहाड़ पर जाते और जब आलोक दिखाई नहीं देता था, लौट आते थे। एक दिन सच्चिदानन्द हाथ में बन्दूक लेकर अकेले पहाड़ पर चढ़ने लगे। कुछ समय बाद वे उस आलोक के पास गए। उन्होंने देखा कि वह आलोक एक गुफा के द्वार पर बैठे हुए कोई अस्थिचर्मसार और क्षीणकाय वृद्ध दिखा रहे हैं। सच्चिदानन्द को अपने पास बुला कर उस वृद्ध ने उनसे कहा, "मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में हूं। मेरा देह त्याग करने का समय आ गया है। अब तुम्हें इस सैनिक वृत्ति को छोड़कर मेरे इस आसन का भार लेना और साधु का जीवन-यापन करना होगा। तुम्हें वेदान्त के साधन-चतुष्टय करने होंगे।" इसके बाद सच्चिदानन्द सैनिक वृत्ति त्यागकर साधु बन गए और उन्होंने लंबे समय तक कठोर साधना करने के बाद निर्विकल्प समाधि-अवस्था प्राप्त की।

स्वामी सच्चिदानन्द से यह अभूतपूर्व कहानी सुनकर नलिनीकान्त ने समझा कि प्रत्यक्ष ज्ञान का अधिकारी बनने के बाद भी सहजात संस्कार और वृत्ति का संस्कार किसी प्रकार दूर नहीं होता। इसी कारण सच्चिदानन्द की भाषा ऐसी असंस्कृत है। भाव में परिवर्तन आने पर भी हवलदार की भाषा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। ये सब बातें सुनकर नलिनीकान्त ने सोचा कि भगवान को न चाहने पर भी वे मिल जाते हैं। उन्होंने श्रुति में पढ़ा था, "**यम एवः वृणुते**", ईश्वर जिसको अपने मन में स्थान देते हैं, केवल वही ईश्वर को पा सकता है। उन्होंने यह वाक्य पढ़ा था, पर उन्हें इसका प्रत्यक्षबोध नहीं हुआ था। नलिनीकान्त ने सोचा था कि स्वामी सच्चिदानन्द ने साधना करके सिद्धि प्राप्त की है। अब वे समझ पाए कि भगवान सुकृतिशील लोगों पर इस प्रकार गुरु के माध्यम से कृपा करते हैं।

यह सब सोचते-सोचते नलिनीकान्त ने अपने छोटे जीवन की सभी घटनाओं का मनन किया। किस प्रकार उन्होंने अपनी पत्नी को पाने के लिए जगज्जननी का साक्षात् किया; किस प्रकार अहेतुक भाव से गुरु

की कृपा प्राप्त की और जगज्जननी से साक्षात् करने के बाद जिस प्रकार वे स्वयं को जानने के लिए ज्ञान की साधना में प्रवृत्त हुए, वे सारी बातें पल भर में ही उनके मन में प्रत्यक्ष हो उठीं। उनकी इच्छा हुई कि वामाक्षेपा के पास उन्होंने जो साधना की थी और देवी से उन्हें जो वर मिला था उस सबके बारे में सच्चिदानन्द को बता दें। परन्तु थोड़ी ही देर बाद उनके मन में विचार आया कि कहीं वे कुछ और न सोचें और पता नहीं क्या कहें। यह सोच वे भय के मारे उन्हें कुछ नहीं बता सके।

जाति–विचार

स्वामी सच्चिदानन्द नलिनीकान्त को अकथ्य शब्दों में अनेक गालियां देते हुए भी उन्हें बहुत स्नेह करते थे। सच्चिदानन्द स्वयं ज्ञान-साधना से सिद्ध अद्वितीय विद्वान थे। उन्हें संस्कृत भाषा का गहन ज्ञान था। वे संस्कृत में पांच-छह घण्टे तक धारा-प्रवाह बोल सकते थे। सच्चिदानन्द ने स्वयं नलिनीकान्त को दर्शन शास्त्रों आदि का अध्ययन कराया था। अनेक दिनों तक सच्चिदानन्द स्वामी के पास रहने के बाद नलिनीकान्त को थोड़ा साहस हुआ और उन्होंने उनसे प्रश्न करना आरम्भ कर दिया। रसोई बनाने में नलिनीकान्त को बहुत कष्ट होता था, क्योंकि पहाड़ की तलहटी में बहने वाले झरने से पानी लाकर रसोई बनानी पड़ती थी। एक दिन नलिनीकान्त ने पूछा, "प्रभो, आप तो परमहंस संन्यासी हैं, आप को वर्णाश्रम का विचार किस लिए? आप तो किसी के भी हाथ का बना भोजन कर सकते हैं। बिना कारण मुझ पर ही सारा भार क्यों डाल रहे हैं?"

सच्चिदानन्द ने पूछा, "गीता पढ़ी है?" नलिनीकान्त ने कहा, "हां, खूब पढ़ी है।" "खाक पढ़ी है।" सच्चिदानन्द ने रूखे स्वर में जवाब दिया—

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः,
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते॥

"इसका अर्थ क्या है, बताओ ? मेरे लिए जाति-विचार न रहने पर भी समाज और संस्कृति के लिए यह सब मानना पड़ता है। अब समझा ?"

नलिनीकान्त द्वारा शास्त्र आलोचना

बचपन में पढ़ाई करते समय नलिनीकान्त ने प्राकृतिक भूगोल में भूविद्या-पाठ के अन्तर्गत ग्रहण और भूकम्प के बारे में जो कुछ जाना था, उससे उनके मन को बहुत कष्ट हुआ था। उन्होंने अपने मन का दुःख किसी को नहीं बताया। और न ही कोई इसके बारे में जानता था। कभी-कभी वे सोचा करते थे कि ग्रहण और भूकम्प की तरह हिन्दुओं की सब बातें झूठ हैं। उन्हें स्वधर्म पर विश्वास नहीं था, पर उन्हें यह सोच कर दुःख होता था कि हिन्दू शास्त्रों में झूठी कहानियां हैं और धर्म बच्चों का खेल है। जब वे सोचते थे कि उन्होंने कुसंस्कारों से ग्रस्त असभ्य हिन्दू वंश में जन्म लिया है तो उनके मन को बहुत कष्ट होता था। उन्होंने सच्चिदानन्द स्वामी के इस आश्रम में रहकर आर्य शास्त्रों के जटिल रहस्य को उद्‌घाटित करने की चेष्टा की। उनके मन में बचपन की जिज्ञासा-वृत्ति जाग उठी। इसके परिणामस्वरूप उन्हें पता चला कि अशिक्षित लोग पृथ्वी को त्रिकोण, चतुष्कोण या समतल कह कर जो विचार व्यक्त करते हैं, वह सब हिन्दू-शास्त्र की बात नहीं है। क्योंकि हिन्दू-शास्त्र में बताया गया है—

"कपित्थ फलवत् विश्वं दक्षिणोत्तरयोः समम्"

(गोलाध्याय)

जो हिन्दू लोग सूरज देवता को रथ पर बिठाकर उदयाचल से अस्ताचल तक ले जाते हैं उन्हें भी हिन्दू-शास्त्र की सही जानकारी नहीं है। शास्त्र में उल्लिखित है—

"चला पृथ्वी स्थिराभाति भूगोलो व्योम्नितिष्ठति"

(गोलाध्याय)

भास्कराचार्य की गोलाध्याय नामक पुस्तक में से एक और श्लोक का पाठ कर नलिनीकान्त का मन खुशी से झूम उठा। न्यूटन के जिस गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत की खोज ने पाश्चात्य जगत में तहलका मचा दिया था, जिसे लेकर भारत में अंग्रेजों के अनेक अनुयायी गौरव से अंग्रेजों की बड़ाई करते हुए अपने पूर्वजों पर असभ्य होने का लांछन लगाते हैं, हिन्दू ऋषियों को उस तत्त्व के बारे में बहुत पहले से जानकारी थी—

"आकृष्ट शक्तिश्चित महीतया यत् खस्थं
गुरू स्वाभिमुखं स्वभक्त्या।
आकृष्येत तत् पतितीति भाति,
समे समस्तात क्वपतत्वियं खे॥"

(गोलाध्याय)

उस दिन से वे हिन्दू ऋषियों की गुरु की तरह पूजा करने लगे। इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। धीरे-धीरे वे सच्चिदानन्द के कठोर व्यवहार के अभ्यस्त हो गए। एक दिन नलिनीकान्त ने सच्चिदानन्द से संन्यास लेने की इच्छा व्यक्त की। परन्तु सच्चिदानन्द ने पिता की बिना अनुमति के शास्त्रानुसार संन्यास देने से इंकार कर दिया। उनके तर्क का खंडन करते हुए नलिनीकान्त ने कहा, "कोई भी माता-पिता अपने पुत्र को संन्यास लेने की अनुमति नहीं देंगे। जगद्गुरु होते हुए भी महर्षि व्यास ने अपने पुत्र शुकदेव को संन्यास लेने की अनुमति नहीं दी थी। शंकराचार्य की माता ने भी अपनी इच्छा से उन्हें संन्यास लेने की अनुमति नहीं दी थी। कानून से नजीर बड़ी होती है।"

यह सुनकर सच्चिदानन्द जी ने हंसते हुए कहा, "अरे, तर्क में कोई भी साधु तुझसे जीत नहीं सकता।"

संन्यास की कठोरता

ब्रह्मचारियों को संन्यास की ओर ले जाना हो, तो ज्ञानीगुरु जीव के जीवत्व को आश्रम जीवन की कठोरता के भीतर ही निःशेष कर
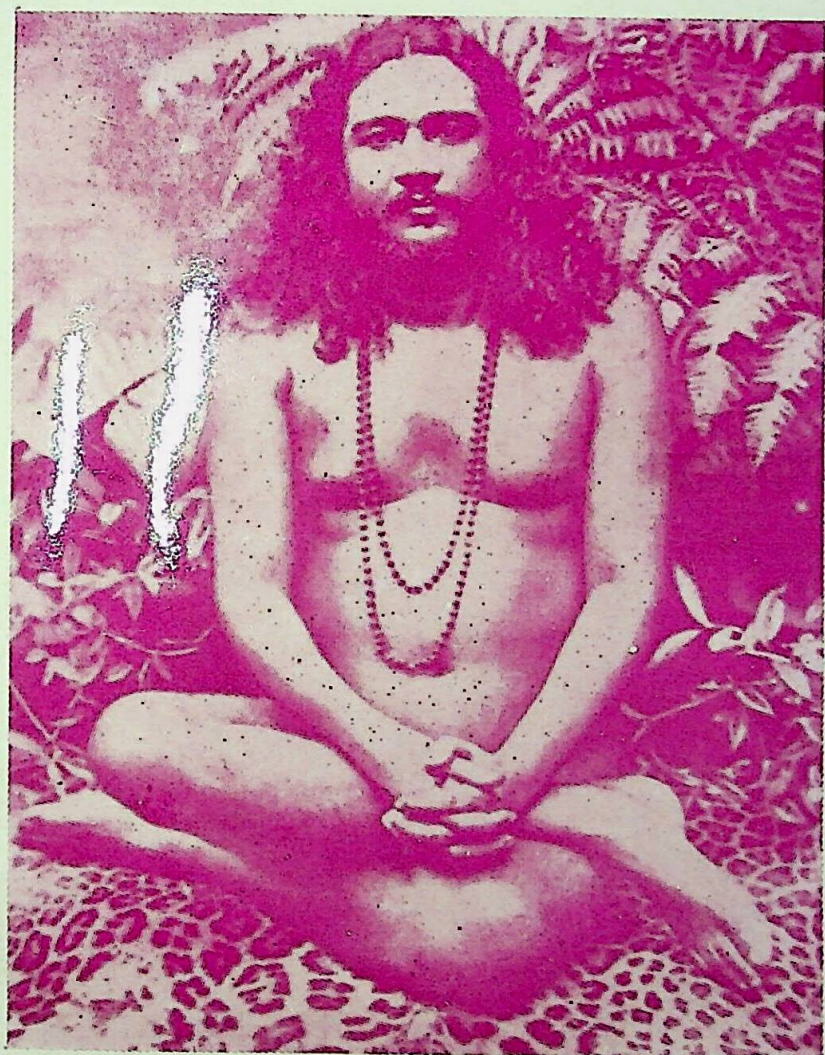
ज्ञानी गुरु
परमहंस श्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव

उनके भीतर आत्मशक्ति का स्फुरण करने की चेष्टा करते हैं। जो ब्रह्मचारी प्रसन्नतापूर्वक और हंसते हुए गुरुदेव के इस कठोर आदेश का पालन करते हैं, वे इतने सहनशील बन जाते हैं कि हाथ कट जाने पर भी आंसू नहीं बहाते। ऐसे साधक ही ज्ञानपंथी संन्यासी बनने के योग्य होते हैं। सच्चिदानन्द स्वामी के विचार से बारह गांवों को जलाकर भस्म कर देने से जितना पाप होता है, किसी को संन्यास देने के बाद यदि उसका पतन हो जाता है, तो गुरु को भी उतना ही पाप लगता है। आश्रम की कठोरता विशेषकर पश्चिमी भारत के इस साधु के शासन में नलिनीकान्त का जीवत्व इस सीमा तक नष्ट हो गया था कि उनकी आत्मशक्ति संन्यास लेने के बाद पूरी तरह स्फुरित हो गई। इसका विस्तृत विवरण अगले परिच्छेद में दिया गया है।

संन्यास ग्रहण

नलिनीकान्त की सहनशक्ति को देखकर और उनकी सेवा से संतुष्ट होकर एक रात सच्चिदानन्द ने स्वयंमेव उन्हें संन्यास देने की बात कही। बंगाब्द १३०९ के भाद्रपद का ११वां दिन इसके लिए निश्चित किया गया। "मैं संन्यास लूंगा" इस खुशी से नलिनीकान्त का मन झूम उठा। वे निर्जन में जाकर कुछ देर तक खुशी से नाचने लगे। उन्हें रात को नींद नहीं आई। वे जैसे-तैसे बेचैनी से रात बिताकर सुबह जागे। नलिनीकान्त सोचने लगे कि सच्चिदानन्द मुझे कब संन्यास देंगे। बाद में सच्चिदानन्द के आदेश से उन्होंने सिर मुंडवाया और वे भाद्रपद की कड़ी धूप की परवाह किए बिना एक मील दूर स्थित पहाड़ी झरने में स्नान करके आश्रम लौटे। उसके बाद उन्होंने याज्ञिक अनुष्ठान यथारीति पूरा किया। तब संन्यास लिया। निगम के निगूढ रहस्य को शीघ्र ही पूरी तरह हृदयंगम कर लेने के कारण सच्चिदानन्द ने उन्हें **निगमानन्द** नाम दिया।

संन्यास की अनुभूति

सच्चिदानन्द ने नलिनीकान्त को जैसे ही **'अहं ब्रह्मास्मि'** – तुम ब्रह्म हो, तुम मुक्त हो, का महावाक्य सुनाया, तो उनकी मनःस्थिति में

आमूलचूल परिवर्तन हो गया। वे पहले की सारी बातें एकदम भूल गए। उनके मन में अभूतपूर्व आनन्द का स्रोत बह चला। उन्हें लगा मानो वे स्वर्ग से नूतन भाव लेकर लौटे हैं। घर-बार, माता-पिता, भाई बहन सारे सांसारिक संबंध उनके मानसपटल से गायब हो गए। उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि जिस प्रकार अनन्त द्वीपसमूह समुद्र में तैरते हैं, ठीक वैसे ही जगत भी उनके सामने विराट-सत्ता के भीतर तैर रहा है। उनके आलोक से चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि समस्त ज्योतिष्कमण्डल प्रकाशमान हो रहा है। उनका ससीम अस्तित्व-बोध लोप हो गया।

भिक्षाटन का आदेश

संन्यास की दीक्षा लेने के बाद निगमानन्द को भिक्षाटन के लिए जाने का आदेश हुआ। उनसे कहा गया कि वे उसी से पेट भरेंगे। जिस दिन जितनी चाहिए वे उससे अधिक भिक्षा नहीं मांग सकते। संन्यासियों को एक ही दिन में दो दिन की भिक्षा नहीं मांगनी चाहिए। सच्चिदानन्द के शिष्यों में राजा, जमींदार आदि बहुत बड़े-बड़े लोग थे, परंतु उनके घर पर खाने का निषेध था। निगमानन्द में भिक्षा मांगने की प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं थी। उन्हें भिक्षा-वृत्ति से घृणा थी। अतः जिस दिन भिक्षा नहीं मिलती, उन्हें मजबूरन भूखा रहना पड़ता। निगमानन्द को भूखे रहते देखकर सच्चिदानन्द तरह-तरह की व्यंगोक्ति से उनका अपमान करते। एक दिन निगमानन्द झोली लेकर राहगीरों से भिक्षा मांगने के उद्देश्य से रास्ते के किनारे खड़े रहे। दूर से एक राहगीर को आते देख उन्होंने सोचा कि इस आदमी से निश्चय ही भिक्षा मागूंगा। परंतु जब वह आदमी पास आया तो निगमानन्द का हृदय कांप उठा। वे लाज के मारे कुछ कह नहीं पाए और चुप रहे। फिर किसी दूसरे व्यक्ति को आते देखकर मन ही मन निश्चय किया कि इस व्यक्ति से अवश्य भिक्षा मागूंगा और कहूंगा, "महोदय, मैं गृहत्यागी संन्यासी हूं, गुरुदेव के आदेश से भिक्षा मांगने आया हूं। कृपा करके कुछ देते जाइए।" परंतु जब वह व्यक्ति पास आया, तो फिर उनका साहस जवाब दे गया और वे

संकोच के कारण कुछ नहीं बोल सके। गृहस्थों के द्वार पर भिक्षा मांगने जाते समय यदि कोई बिना मांगे ही देता तो लाते, वरना खाली झोली लौटते। एक दिन वे खाली झोली लेकर लौटे। उस दिन उन्हें कुछ भी खाने को नहीं मिला। रात को सच्चिदानन्द ने उनसे पूछा, अरे, "आज कुछ नहीं मिला क्या ? खाना-पोना हो चुका है ?" निगमानन्द ने रूखे स्वर में कहा, "मेरा खाना-पीना हो या न हो, इससे आपको क्या ?" उनके मन की पीड़ा को समझकर सच्चिदानन्द ने कहा -"अब तुम्हें और भिक्षा नहीं मांगनी पड़ेगी।" गुरु सच्चिदानन्द में पता नहीं ऐसी वह कौन सी अद्‌भुत शक्ति थी कि उस दिन के बाद निगमानन्द को कभी भिक्षा नहीं मांगनी पड़ी। लोग बिना मांगे ही अपने आप दाल, चावल और आटा आदि दे दिया करते। गुरु भक्ति क्या है, वह वे नहीं जानते थे। फिर भी वे सच्चिदानन्द के प्रति एक स्वाभाविक आकर्षण महसूस करते थे। प्रत्युत्तर देने के बावजूद उनके अन्तर में गुरु के प्रति अपार श्रद्धा थी। वे ऊपरी तौर पर भक्ति-भाव नहीं दिखाते। परन्तु छिप-छिप कर उन्हें देखते रहते। जब सच्चिदानन्द नहा-धोकर आश्रम की ओर जाते तो नलिनीकान्त उनके गीले कपड़ों से बूंद-बूंद टपके पानी से भीगी मिट्‌टी को दूसरों की दृष्टि से बचकर खा लेते थे।

चारों धाम का भ्रमण

इसके बाद सच्चिदानन्द के आदेशानुसार नलिनीकान्त चारों धाम के भ्रमण पर निकले। चारों धाम का भ्रमण कर प्रत्येक धाम के प्रति-पाद्य महावाक्य को आत्मा के भीतर जागृत करना होता है। भारत के तीर्थों में ये चार धाम सर्वश्रेष्ठ हैं। बद्रिकाश्रम त्याग का क्षेत्र हैं। इसलिए संन्यासियों को पहले बद्रिकाश्रम जाना होता है और वहाँ पर त्याग की साधना कर भौतिक जगत की प्रलोभनीय वस्तुओं के प्रति हेय-भाव जागृत करना होता है। हिमाच्छादित हिमालय के शिखर पर जाने से मन में त्याग का भाव स्वतः जागृत हो जाता है। अतः निगमानन्द मसूरी के रास्ते बद्रीनारायण जाने के लिए तैयार हुए और उन्होंने

अश्रुपूरित नयनों से स्वामी सच्चिदानन्दजी से विदा ली और आशीर्वाद की याचना की। इस पर दया-माया रहित, निर्विकार तथा चैतन्य रूपी गुरु सच्चिदानन्दका हृदय भी द्रवित हो उठा। कुछ देर तक निर्वाक और निष्पन्द रहने के बाद सच्चिदानन्द ने कहा, "ठहर जा, अभी।" अतः निगमानन्द को अपनी यात्रा स्थगित करनी पड़ी।

इसके बाद कुछ दिन बीत गए। निगमानन्द के पुनः विदा मांगने पर सच्चिदानन्द ने स्वयं उनके साथ तीर्थ भ्रमण पर जाने का निश्चय किया। आश्रम का समस्त प्रवन्ध करने के बाद दोनों पुष्कर से मसूरी के रास्ते बद्रीनारायण की ओर अग्रसर हुए। रास्ते में चलते समय निगमानन्द को पोथी-पत्रों का बोझा लेकर चलना पड़ा। पुस्तकों में "वेदान्त ज्ञान सागर", "प्रेम सागर", "पंचदशी" आदि हिन्दी की कई हस्तलिखित पुस्तकें थीं।

मसूरी और बद्री नारायण के रास्ते में

मसूरी पार करने के बाद गुरु और शिष्य दोनों पहाड़ों और जंगलों में खिले फूलों की गंध और सौन्दर्य का उपभोग करते हुए और विभिन्न प्रजातियों के वन-पक्षियों के कल-कूजन से मुग्ध होते हुए तथा पहाड़ों पर बसने वाले छोटे-छोटे गाँवों और कस्बों के रमणीक दृश्यों को देखते हुए एक के बाद दूसरे पहाड़ पार करते गए। सच्चिदानन्द जी को पैदल चलने का अभ्यास था परन्तु निगमानन्द को इसका अभ्यास नहीं था। फिर भी ज्ञान प्राप्त करने की लालसा से उन्होंने इन कष्टों की परवाह नहीं की। खून के जमने से उनके पैरों के नाखून काले पड़ गए। मात्र एक ही कम्बल से सर्दी और गर्मी का प्रकोप सहन कर तथा निराहार रहते हुए निगमानन्द कृशकाय हो गए। इस डर से कि कहीं संन्यासी का पतन न हो जाए, सच्चिदानन्द सतर्क प्रहरी की तरह सदैव उनके साथ-साथ रहते थे। अतः उन्हें सत्तू के अतिरिक्त अन्य कोई खाद्य पदार्थ खाने की सुविधा नहीं मिलती। इससे निगमानन्द का जीभ का स्वाद एकदम विलुप्त हो गया।

गौरी माँ का आश्रम

इसी भावस्थिति में चलते-चलते एक दिन शाम हो गई। रात अंधेरी थी। रात बिताने के लिए सुविधाजनक स्थान कहीं नहीं। निगमानन्द काफी थक चुके थे। उनकी हालत देख सच्चिदानन्द ने कहा, "अभी और चार मील के बाद एक नारी साधु का आश्रम आएगा। हम वहीं रात बिताएंगे।" निगमानन्द नारी साधु की बात सुनकर कौतूहलवश चलने लगे। अंधेरी रात में जैसे-तैसे रास्ता तय कर अंत में वे नारी साधु **गौरी माँ** के आश्रम पहुंचे। यह आश्रम एक सुनसान पहाड़ पर है। गौरी माँ जिस स्थान पर रहती हैं वहां से थोड़ी दूर पर उनकी सेविकाओं के लिए रहने का स्थान था। गौरी माँ लता-कुंजों से आच्छादित चार कमरों वाले एक छोटे से मकान में रहती थीं। वे सदैव निर्वस्त्र रहती थीं, पर किसी से भेंट करनी हो तो उस समय वस्त्र पहन लेतीं। कोई कह नहीं सकता कि उस समय उनकी आयु कितनी रही होगी। अनुमान से वे २७-२८ वर्ष की लगती थीं, परन्तु गौरी माँ की आयु जितनी बताई जाती थी उस पर किसी को विश्वास नहीं होगा। उस आश्रम में बिना अनुमति किसी पुरुष को प्रवेश करने का अधिकार नहीं था। सच्चिदानन्द से गौरी मां की पहले से ही जान-पहचान थी। इसलिए उन्हें उनसे भेंट करने की अनुमति मिल गई। निगमानन्द भी उनके साथ हो लिए। गौरी माँ से सच्चिदानन्द की क्या बातचीत हुई उसका पता नहीं चला। गौरी माँ ने तरुण संन्यासी निगमानन्द की ओर केवल एक बार ही देखा, पर बोली कुछ नहीं।

बद्रिकाश्रम

गौरी माँ के आश्रम से निकलने के बाद निगमानन्द बद्रिकाश्रम पहुंचे। महर्षि व्यास देव ने इस त्याग क्षेत्र बद्रिकाश्रम में तपस्या की थी और अपने तप के प्रभाव से उन्होंने समूचे भारत को पावन धाम में परिवर्तित कर दिया था। स्वयं आदि शंकर ने प्रत्येक संन्यासी को यहीं पर "**अयमात्मा ब्रह्म**", इस महावाक्य की उपलब्धि करने का निर्देश दिया

था । यहां पर पहुंच कर निगमानन्द को असीम शांति की अनुभूति हुई और वहां कुछ दिन ठहरने के बाद वे मानसरोवर के दर्शन के लिए निकल पड़े ।

मानसरोवर

मानसरोवर पहुंच कर निगमानन्द ने देखा कि कितना अभूतपूर्व सुन्दर स्थान था वह ! इससे पहले उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी कि मर्त्यलोक में हिमालय के इस विजन क्षेत्र में तन और मन को लुभाने वाले इतने रमणीक स्थान भी है। उन्होंने देखा विस्तृत विमल जलराशि, कमल के बड़े-बड़े पत्ते, उनके बीच में तदनुरूप ही खिले हुए कमल के बड़े-बड़े फूलों की शोभा, दूध जैसे धवलवर्ण के राजहंसों का श्रुति-मधुर कूजन, ये सब मिलकर सरोवर के सौन्दर्य को चार चान्द लगा रहे हैं। इस अलौकिक दृश्य को देखकर आनन्दातिरेक से निगमानन्द के दिव्य नेत्र खुल गए । उन्होंने देखा कि सरोवर के दूसरे किनारे असंख्य सुन्दरी युवतियाँ नग्न होकर स्नान कर रही हैं। निगमानन्द ने कौतूहलवश गुरु सच्चिदानन्द से इस बारे में पूछा तो सच्चिदानन्द ने बताया, "अरे, ये तो तेरे दिव्य नेत्र खुल जाने के कारण दिखाई दे रही हैं, ये सब अप्सराएं हैं।"

सूक्ष्म दृष्टि

इस सन्दर्भ में प्रभुश्री अनेक बार कहा करते थे कि सप्त लोक के प्रत्येक लोक में वायु के सात सात स्तर हैं। इस प्रकार उनचास स्तरों में उनचास वायु हैं। लोक समूह के उत्कर्ष और अपकर्ष के अनुसार वायु में भी अन्तर है। पृथ्वी में जो सात स्तर हैं, इनमें निम्न स्तर के जीव ऊपर स्तर के जीवों को नहीं देख पाते । जिनकी दृष्टि दिव्य है केवल वे ही इन सूक्ष्म जीवों को देख सकते हैं। ये सब योगिओं की दृष्टि में ही दिखाई देते हैं। जिनको दृष्टि दिव्य नहीं है, उनको हिमालय आदि स्थानों में अधिक कुछ नहीं दिखाई देता ।

विराट सर्प

गुरु-शिष्य दोनों वहाँ से और आगे बढ़ने लगे। कुछ दूर जाने के बाद उन्होंने देखा कि एक विराट सर्प एक स्थान पर कुण्डली मार कर टकटकी लगाए देख रहा है। वहाँ के रहने वाले साधुओं ने बताया कि यह सांप आटा और मैदा के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाता है। स्थान के माहात्म्य से बहुत ही हिंस्र जीव होते हुए भी उसमें अहिंसाभाव आ गया है। यह सुनकर निगमानन्द को विस्मय हुआ और उन्होंने हिमालय के अन्य रमणीक स्थानों को देखने के बाद पुष्कर लौटने का निश्चय किया। हिमालय-क्षेत्र का भ्रमण करने के दौरान निगमानन्द ने जो मनोरम दृश्य देखे और वहाँ उन्हें जो अतीन्द्रिय दर्शन हुए, वे अवर्णनीय हैं।

गौरी माँ का आदेश

पुष्कर लौटते समय सच्चिदानन्द स्वामी पुनः गौरी माँ के आश्रम में पहुंचे। उन्होंने गौरी माँ से भेंट कर विदा मांगी। गौरी माँ ने हंसते हुए निगमानन्द की ओर इशारा कर सच्चिदानन्द से कहा, "तुम्हारे साथ जो संन्यासी आए हैं, यदि वे कभी निर्विकल्प समाधि प्राप्त करते हैं तो उन्हें मेरे पास भिजवा देना।" गौरी माँ ने अपनी बात ऐसे ढंग से कही कि निगमानन्द उसे स्पष्ट सुन सकें। उसके बाद इस प्रसंग पर चर्चा करते हुए गुरु-शिष्य दोनों वहां से चल दिए। सच्चिदानन्द स्वामी अपने शिष्य निगमानन्द को अकेले ही शेष तीन धामों का भ्रमण करने का निर्देश देकर वहीं से आश्रम लौट आए। उसके बाद निगमानन्द ने द्वारका धाम की यात्रा की।

द्वारका धाम

द्वारका धाम ऐश्वर्य का क्षेत्र है। यहां पर भगवान श्रीकृष्ण ऐश्वर्य लीला दिखा गए हैं। भारत के किसी अन्य स्थान पर ऐसा ऐश्वर्य नहीं दीखता। यहीं पर आदि शंकर द्वारा स्थापित शारदापीठ है। यहां पर सामवेद के महावाक्य "तत्वमसि" अर्थात् "वे

और मैं एक हैं" को अपने हृदय के भीतर जागृत करना होता है। प्रत्येक जीव के भीतर भगवान का प्रकाश है। केवल पुस्तक का पाठ न कर इस क्षेत्र में इस भाव पर विचार करने से प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना अनुकूल होता है, क्योंकि वेदान्ती संन्यासी ज्ञान पंथी होते हैं।

कामिनी-कांचन का आकर्षण

द्वारका मठ में पहुंच कर निगमानन्द ने देखा कि यहां पर कोई महन्त नहीं है। एक वृद्धा ही मठ का सारा प्रबन्ध करती हैं। वहां पर रहने के परिणामस्वरूप वृद्धा की दृष्टि निगमानन्द के प्रति आकर्षित हुई। निगमानन्द भी उन्हें माँ कहकर पुकारने लगे। वृद्धा का निगमानन्द के प्रति स्नेह का मुख्य कारण यह था कि द्वारका मठ में उस समय कोई महन्त नहीं था। इसलिए उन्होंने मन ही मन निगमानन्द को मठ का महन्त बनाने का निश्चय कर लिया। जिस समय निगमानन्द इस मठ में खुशी से समय बिता रहे थे, वहां पर एक भैरवी आ पहुंचीं। भैरवी अपनी पूर्ण यौवनावस्था में थीं। उनके हाथ में त्रिशूल था। निगमानन्द के साथ भेंट होने के दिन से वे वहां पर आने-जाने लगीं। कुछ दिन बाद पता चला कि भैरवी यशोहर जिले की ब्राह्मण कन्या हैं। वह भैरवी निगमानन्द को समझाने लगीं कि उनके द्वारा अपनाया गया संन्यास-पथ गलत है और इस कलियुग में भैरवी द्वारा अवलंबित तंत्र-पथ ठीक है। भैरवी ने इसके समर्थन में तंत्रोक्त विधि बताई और विभिन्न तर्क दिए।एक तो भैरवी सुन्दरी थीं और दूसरे असाधारण विदुषी भी। यह देखकर निगमानन्द धीरे-धीरे भैरवी के प्रति आकृष्ट हो गए। भैरवी ने तर्क दिए कि तंत्रोक्त विधि के अनुसार दोनों का विवाह भी हो सकता है। निगमानन्द ने भैरवी के स्त्रीत्व से प्रभावित हो विवाह के लिए अपनी सहमति दे दी। उन्होंने सोचा कि इसमें बुराई क्या है? इस मठ का महन्त बनना होगा। फिर तांत्रिक-विधान से विवाह कर धार्मिक जीवन बिताना होगा। इसके बाद शैव-विधान से विवाह का दिन निश्चित हो गया।

सदगुरु का प्रभाव

विवाह की पूर्व रात को निगमानन्द अपने मन को दृढ़ कर सो गए। उन्होंने स्वप्न में देखा कि भैरवी के साथ उनका विवाह हो चुका है। भैरवी उनके पास बैठी हैं। स्वप्न में निगमानन्द के मन में आनन्द के स्थान पर निरानन्द दिखाई दिया। उन्हें अपने गुरु स्वामी सच्चिदानन्द जी के हाथ के साढ़े चार सेर वजन वाले चिमटे का झनझन शब्द सुनाई दिया। इससे निगमानन्द के भाव में व्यवधान आने के साथ-साथ भैरवी का सुन्दर शरीर मक्खन की तरह पिघल गया और मांसपेशियाँ नीचे गिर पड़ीं। जब शेष अस्थि-पंजर निगमानन्द को आलिंगन करने के लिए आगे बढ़ा तो वे चीत्कार कर उठे और इसके साथ ही उनकी नींद टूट गई। वे तत्काल लोटा-कम्बल लेकर वहां से भाग खड़े हुए। उनके चीत्कार से मठ की वृद्धा जाग गईं और उन्होंने निगमानन्द को भागने से रोका। निगमानन्द वृद्धा को धकेल कर दौड़ने लगे। उनका दौड़ना कहां बंद हुआ उन्हें होश ही नहीं रहा।

हिमलाज की यात्रा

इसके बाद निगमानन्द कराची के रास्ते से कुछ साधु-संन्यासियों के साथ ऊंट की पीठ पर सवार होकर दूसरे पीठस्थल हिमलाज पहुंचे। बताया जाता है कि यहां पर देवी का ब्रह्मरन्ध्र गिरा था। समाधि की अवस्था में जो ज्योति दिखाई देती है यहां पर स्थित कुएं से वैसी ही स्निग्ध ज्योति दिखाई देती है। यहां पर उन्होंने अनेक हिन्दू-साधुओं और मुसलमान फकीरों को देखा। यहाँ पर धर्म के सम्बंध में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच किसी प्रकार का भेदभाव न देख कर निगमानन्द को बड़ी प्रसन्नता हुई। यहां पर कुछ दिन ठहरने के बाद वे पुनः कराची लौट आए।

दक्षिण क्षेत्र का भ्रमण

इसके बाद निगमानन्द बड़ौदा होते हुए दक्षिण की ओर चल पड़े। इस क्षेत्र के लोग मठों और मंदिरों को बहुत पवित्र मानकर

उनका आदर करते हैं। यहां पर धर्म की ध्वजा फहराने वाले महन्तों के आध्यात्मिक दैन्य को देखकर निगमानन्द के मन को बड़ा कष्ट हुआ। बड़ौदा के दक्षिण में जाने के साथ-साथ उन्हें दाक्षिणात्यों की तमिल भाषा समझने में कठिनाई हुई। यहां के लोग साधुओं का आदर करते हैं और बिना मांगे ही भिक्षा देते हैं। अतः यहां पर उन्हें कोई बिशेष असुविधा नहीं हुई। दाक्षिणात्य क्षेत्र का भ्रमण करते समय उन्हें भिक्षा के रूप में चावल, दाल, नमक, सब्जियां आदि जो कुछ मिलता था, वे उस सबको एक साथ पकाकर खा लेते थे। इससे उनके शरीर की स्थूल आवश्यकताएं निष्प्रभावी हो गईं। इस प्रकार से कुछ दिन बीत जाने के बाद वे रामेश्वरम पहुंचे।

रामेश्वरम

रामेश्वरम कर्म क्षेत्र है। भगवान ने त्रेता युग में नरलीला करते समय इस स्थान को कर्मक्षेत्र के रूप में चुना था। इसलिए जगदगुरु आदि शंकर ने रामेश्वरम में शृंगेरी मठ की स्थापना की थी। इस मठ में आकर संन्यासी लोग यजुर्वेद के महावाक्य "**अहं ब्रह्मास्मि**" अर्थात् "यह आत्मा ही अनन्त असीम ब्रह्म है" का ध्यान कर ब्रह्मसत्ता में लीन होते हैं। निगमानन्द इस भाव में कुछ दिन बिताकर मद्रास के रास्ते दिन में तेईस-चौबीस कोस पैदल चलते-चलते श्रीक्षेत्र पुरुषोत्तम-धाम पहुंचे।

श्रीक्षेत्र

यह क्षेत्र भोग क्षेत्र है। पुरुषोत्तम क्षेत्र में जगन्नाथ देव के लिए बाह्य भोग की जो व्यवस्था अतीत काल से चली आ रही है वह किसी अन्य स्थान पर नहीं है। इस क्षेत्र में आदि शंकर द्वारा स्थापित गोवर्धन मठ है। यहां पर ऋगवेद के महावाक्य "**प्रज्ञानं आनन्दं ब्रह्म**" पर विचार किया जाता है। पहले बताए गए तीन धामों में आत्मा के साथ ब्रह्म का ऐक्य विचारणीय था। अब ब्रह्म के स्वरूप पर विचार करने की विधि है। ब्रह्म कैसे हैं? वे आनन्दमय हैं। निगमानन्द वैदिक

संन्यासी थे। वे आदि शंकर द्वारा स्थापित चारों मठों के प्राकृतिक सौंदर्य और गांभिर्य को देखकर मुग्ध हुए। वे पुरी में लगभग एक मास ठहरे। यहां पर उन्हें समुद्र के तट पर स्थित तीन मठों की महत्ता का आभास हुआ। इसके बाद वे पुनः सच्चिदानन्द स्वामी के आश्रम में लौटे। परिव्राजक अवस्था में पुरी धाम का भ्रमण करते समय वे बगला धर्मशाला (वर्तमान में उसका नाम बगला हाउस) में ठहरे थे। वे जिस कमरे में ठहरे थे वह कमरा बाद में उन्होंने अपने सेवकों को दिखाया था।

योग साधना करने का आदेश

भारत के चारों धाम और सात खण्डों का भ्रमण करने के बाद स्वामी निगमानन्द अपने गुरु के आश्रम में कुछ दिन ठहरे। एक दिन सच्चिदानन्द ने उन्हें बुलाकर कहा, "अरे, मेरे पास तेरा जो सीखना था वह पूरा हो चुका है। योग के बिना आत्मज्ञान की पूर्णता नहीं होती। शास्त्रों की आलोचना से तुमने जिन तत्त्वों को जाना है उन तत्वों की प्रत्यक्ष उपलब्धि के लिए तुझे योगी गुरु की खोज करनी पड़ेगी और उनके निर्देश से तुझे योग-साधना करनी होगी। योग के वल से इस तत्त्व के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त होंगे। अतः तू योगी गुरु की खोज कर योग की साधना कर।" निगमानन्द ने आवेग के साथ उत्तर दिया, "आपको छोड़कर और कहीं जाने को मन नहीं कर रहा है। आप ही मुझे योग की शिक्षा दें।"

सच्चिदानन्द ने कहा, "वत्स, निगमानन्द, मैं योगपथ में सिद्ध नहीं हूं, ज्ञान पथ में सिद्ध हूं। परन्तु ज्ञान पथ बहुत कठिन है। कठिन साधना का कष्ट सहन करने के बावजूद इस पथ में सत्यलाभ में बहुत समय लगेगा। मैं दिव्य दृष्टि से देख पाता हूं कि योगी गुरु की खोज कर योग की साधना करने से बहुत कम समय में तुझे परमतत्त्व की उपलब्धि हो जाएगी। उस समय अनायास ही निर्विकल्प समाधि के भीतर ब्रह्मतत्त्व खिल उठेगा।"

सच्चिदानन्द का विदाई आशीर्वाद

पुनः गुरु की खोज करने की बात सुनकर निगमानन्द का मुंह कुम्हला गया। यह सोचते हुए कि साक्षात् ब्रह्मतत्त्वविज्ञ परमज्ञानी गुरु का आश्रय छोड़कर पुनः गुरु की खोज करना कितना कष्ट साध्य व्यापार है, वे निराश हो गए। शिष्य को ऐसे विषर्ण होते देख सच्चिदानन्द ने कहा, "वत्स, भय मत कर, योगी गुरु तुझे शीघ्र मिल जाएंगे।" इसके बाद निगमानन्द ने योगी गुरु की खोज करने का दृढ़ संकल्प किया और श्रीगुरु का आशीर्वाद लेकर अविलंब आश्रम से विदा ली। गुरु सच्चिदानन्द ने बहुत दुःखी मन से शिष्य निगमानन्द को विदा दी और उनकी नजरों से दूर होने तक वे शिष्य को सजल नेत्रों से देखते रहे।

चौथा अध्याय

योग साधना

योगी गुरु की खोज

स्वामी निगमानन्द अपने गुरु सच्चिदानन्द के निर्देश से योगी गुरु की खोज में निकल पड़े और उन्होंने इस प्रयास में अनेक सिद्ध महात्माओं के दर्शन किए। परन्तु कोई भी उनके मन की तीव्र प्यास को नहीं बुझा सका। उस समय जितने महात्मा सिद्ध योगी के रूप में जाने जाते थे उनकी कृपणता और कठोर व्यवहार से निगमानन्द मर्माहत हुए। इस प्रकार के अनेक पाखण्डी साधुओं के सम्पर्क में आकर उन्हें तरह-तरह के कष्ट झेलने पड़े। फिर भी निरुत्साहित न होकर वे लगातार गुरु की खोज करते रहे।

निगमानन्द का बाघ से सामना

इस प्रकार घूमते-घूमते एक दिन किसी जंगल में शाम हो गई। निगमानन्द अपनी थकावट दूर करने के लिए एक पेड़ के नीचे बैठ गए। कुछ देर बाद उन्होंने देखा कि एक बहुत बड़ा बाघ उनकी ओर आ रहा है। उसे देखकर निगमानन्द जड़वत हो गए। उनकी स्थिति ऐसी हो गई कि उनमें उठकर भाग जाने की ताकत भी जाती रही। उन्होंने सोचा, मरना तो निश्चित है, अब बाघ का मुंह देखकर मरने पर अगले जन्म में बाघ ही बनना होगा। यह सोचकर उन्होंने पास में पड़े कम्बल से अपने समूचे शरीर को ढक लिया और वे चित होकर बाघ के सामने लेट गए और पड़े-पड़े मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे। उन्होंने जितनी चेष्टा

की कि बाघ का चिन्तन न करें, फिर भी बाघ का भयानक रूप उनके मन को बेचैन करने लगा। आखिर उनका समूचा मन व्याघ्र-मय हो गया। बाघ पास आया और इधर-उधर चक्कर काटने के बाद उन्हें सूंघ कर वापस चला गया। पास में पड़े पत्तों की सरसराहट सुनकर वे समझ गए कि बाघ जा चुका है। फिर भी वे नहीं उठे। उन्होंने सोचा कि बाघ शिकारी जन्तु है, कहीं घात लगाकर न बैठा हो, तब तो उठते ही खा जाएगा। थोड़ी देर बाद कुछ पहाड़ी लोगों का शोर सुनकर निगमानन्द उठे और उनके पास आ गए। उन्होंने सारी बातें सुनीं और वे निगमानन्द को अपने घर ले आए। उन्होंने निगमानन्द का आदर-सत्कार कर उन्हें भोजन दिया और अगले दिन उन्हें जंगल पार करा दिया। उसके बाद निगमानन्द पुनः अनिश्चित मन से आगे चलने लगे।

कोटा राज्य में रास्ते से भटक जाना

विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए निगमानन्द कोटा राज्य के सीमावर्ती क्षेत्र में पहुंचे। कोटा राजपूताना में एक छोटा सा राज्य था। पहाड़ी रास्ते ऊबड़-खाबड़ थे। उस रास्ते पर जाते-जाते एक दिन शाम हो गई। दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ थे। उन पहाड़ों के भीतर जंगली जानवरों का डर था और रास्ते बहुत संकरे थे। कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद उन्होंने देखा वे भटक गए हैं। परन्तु वे चलकर इतना आगे आ चुके थे कि वहां से लौट कर सही रास्ते का पता लगाना उनके लिए सम्भव नहीं था। प्यास के मारे उनका गला सूखता जा रहा था। पैर से खून की धारा बह चली थी। उन्होंने चारों ओर ढूंढ़ा, पर उन्हें कहीं भी पानी नहीं मिला। तब तक शाम हो चुकी थी। अचानक उन्होंने एक युवती को देखा। विजन वन-क्षेत्र में किसी आदमी को देखकर निगमानन्द थोड़ा आश्वस्त हुए और उन्हें कुछ विस्मय भी हुआ। उस युवती ने उनका नाम लेकर पुकारा, "निगमानन्द", मानो बहुत दिनों से परिचित कोई मित्र हो। निगमानन्द ने महसूस किया कि उनकी पुकार सहज, सरल और हर तरह के संकोच से रहित है। निगमानन्द विस्मय के साथ उनकी ओर अग्रसर हुए। युवती की वेश-

भूषा और अंग-सौष्ठव देख कर उन्हें नहीं लगा कि वे कोई पहाड़ी औरत हैं। तरह-तरह की कल्पनाओं के साथ निगमानन्द युवती के सामने पहुंचे। युवती ने कहा, "निगमानन्द, तुम्हें बड़ी प्यास लगी है और मारे भूख के तुम बहुत ही कातर हो रहे हो। कुछ दूर आगे बढ़ो, तुम्हें एक पर्णकुटी मिलेगी, वहां पर तुम्हारे खाने-पीने की व्यवस्था की गई है। तुम अपनी भूख और प्यास मिटाकर रात वहीं बिताओगे।" युवती के निर्देशानुसार निगमानन्द शीघ्रातिशीघ्र चलने लगे, क्योंकि अंधेरा घिरने से पहले जंगल से बाहर पहुंचना होगा। उस समय उनके मन में अनेक प्रश्न जागे।

योगिनी कुटीर

मन में तरह-तरह की बातें सोचते हुए जब निगमानन्द कुछ दूर आगे बढ़े तो उन्होंने एक पर्णकुटी देखी। वहां पर उन्होंने देखा कि पहले की वह ज्योतिर्मय भैरवी कुटी के सामने खड़ी हैं। भैरवी ने पहले उनका नाम लिया और बाद में उनका हाथ पकड़ कर उन्हें कुटी में ले गईं। उन्होंने निगमानन्द को लोटे में पानी देकर कहा, "हाथ-पैर धो लो, तुम्हारे लिए कुटी में सामान्य जलपान की व्यवस्था है। उसे पाकर यहां पर विश्राम करो।" निगमानन्द जब इस उधेड़बुन में थे कि भैरवी के दिए हुए पानी से पैर धोएं या नहीं, भैरवी ने स्वयं उनके पैरों को पानी से धो दिया। निगमानन्द कोई दूसरा उपाय न देखकर कुटी के भीतर गए और वहां पर उन्होंने देखा कि एक तश्तरी में चीनी, संदेश, फल और कुछ शकरकंद रखे हैं। सामने कुश का एक आसन पड़ा था। भैरवी के कार्यकलाप को देखकर निगमानन्द को आश्चर्य हुआ।

भोजन के बाद निगमानन्द सोचते रहे कि इतनी रात में वे कहां जाएं? इस समय युवती भैरवी ने उनसे कहा, "यहीं पर रात बिताओ, कल सुबह चले जाओगे। इस जंगल में बाघ-भालुओं का बहुत भय है। तुम्हें रास्ते का पता भी नहीं है।" कोई अन्य उपाय न देख निगमानन्द ठहरने को तैयार हो गए। युवती ने कुटी के भीतर दो कुशासन बिछाए। एक पर वह स्वयं सोई और दूसरे पर निगमानन्द को सोने का निर्देश

दिया। दोनों की शय्याओं के बीच मात्र एक हाथ का अन्तर था। एक तो घने जंगल के भीतर पर्णकुटी, उसमें पहाड़ का अंधकार और घोर निस्तब्धता के भीतर दण्डी संन्यासी के पास युवती भैरवी की शय्या थी। इससे निगमानन्द को नींद नहीं आई। उनके मन में तरह-तरह के भावों का उद्रेक हुआ। भैरवी को इसका पता चल गया। इसलिए उन्होंने निगमानन्द से पूछा, "अहो, क्या अभी तक नीद नहीं आई ?"

निगमानन्द—बहुत चेष्टा करने पर भी नींद नहीं आ रही है।

भैरवी—अरे, शायद बिना कुछ खाए-पिए इधर-उधर घूमने के कारण वायु चंचल हो गई है। इसलिए नींद नहीं आ रही है। अच्छा ··

यह कहकर युवती निगमानन्द के सिर के पास बैठ कर उनके सिर और पीठ पर हाथ फिराने लगीं। इससे निगमानन्द का मन बहुत ही चंचल हो उठा। उनकी भावभंगी देखकर भैरवी ने कहा, "निगमानन्द, क्या तुम्हारे मन में कोई संदेह है ?"

निगमानन्द -ऐसा करना संन्यास के नियमों के विरुद्ध है।

भैरवी—तब उपाय क्या है ? तुम्हें जो नींद नहीं आ रही है ?

निगमानन्द—एक रात नींद न हो तो कोई बात नहीं, मैं कुटी के बाहर सोता हूं, तुम कुटी के भीतर सो जाओ।

भैरवी—नहीं-नहीं, ऐसा नहीं होगा। बाहर हिंस्र प्राणियों का भय है। मैं ही बाहर सो जाती हूं, तुम कुटी में निश्चिंत होकर सो जाओ। निगमानन्द इससे सहमत नहीं हो सके। उन्होंने सोचा कि इस घनी अंधेरी रात में बाघ-भालुओं से पूर्ण घोर जंगल में भैरवी अपनी कुटी छोड़ कर बाहर रहेगी और मैं अतिथि होकर गृहस्वामिनी को उसके घर से निकालकर सुख से सोऊं, यह बहुत अशोभनीय बात होगी। यह सोच निगमानन्द ने सरल भाव से भैरवी से कुछ प्रश्न किए।

निगमानन्द—कुछ बातों पर मेरे मन में संदेह होता जा रहा है। तुमसे यह जान सकूं तो मैं सुख से सो सकूंगा।

भैरवी—बेशक पूछो।

निगमानन्द—तुम यहां कैसे आईं ? मेरा नाम भी कैसे जाना ? तुम किस लिए यहां पर हो ? मैं तुमसे ये बातें जानना चाहता हूं ।

भैरवी—तुमने पहले जिस युवती भैरवी को देखा, वह मेरी सहेली है । हम दोनों एक ही कुटी में रहती हैं । हम कश्मीर की ब्राह्मण कन्याएं हैं । हमारे मन में संसार के प्रति वैराग्य का उद्रेक होने पर हमने संसार का त्याग कर एक योगी से साधना आदि की शिक्षा ली । उस योगी की कृपा से हम दोनों योग में सिद्धि प्राप्त कर यहां पर रह रही हैं ।

भैरवी के साथ हुई बातचीत से निगमानन्द को पता चला कि वे त्रिकालदर्शी हैं और उन्हें योग में अलौकिक सिद्धि प्राप्त हैं । उन्होंने भैरवी को गुरु बनाने की इच्छा व्यक्त की । भैरवी के इस बात के लिए राजी न होने पर निगमानन्द ने इसका कारण पूछा । भैरवी ने कहा, "मैं नारी होने के साथ-साथ सुन्दरी युवती भी हूं ।"

निगमानन्द—उसमें क्या है ? मैं तो गुरु मान कर चलूंगा । गुरु मानने से मन चंचल नहीं होगा ।

भैरवी—तुम चाहे जो सोचो, परन्तु तुम से ऐसा हो नहीं पाएगा । तुम युवक हो । मेरी कुटी में मेरे साथ एक रात ठहर कर तुम्हारा मन चंचल हो उठा है । फिर तुम किस प्रकार लम्बी अवधि तक मेरे पास ठहर कर योग की शिक्षा ले सकोगे ? मेरी आयु साठ वर्ष होते हुए भी मेरा एक शरीर-धर्म भी तो है ।

आयु की बात सुनकर निगमानन्द को आश्चर्य हुआ । उनकी आयु इतनी अधिक होने पर भी किसी को विश्वास और अनुमान नहीं हो सकता था कि वह षोडशी नहीं है । कुछ देर बाद भैरवी ने कहा, "मैं तुम्हारी गुरु नहीं हूं । जाओ, गुरु की खोज करो, पाओगे ।"

निगमानन्द—कहाँ पाऊंगा ?

भैरवी—यहाँ से कलकत्ता चले जाओ । वहाँ पर योग-सिद्ध गुरु पाओगे । इस क्षेत्र में व्यर्थ ढूंढते मत फिरो ।

निगमानन्द—कलकत्ता कैसे जाऊं ? मेरे पास रुपया-पैसा कुछ भी नहीं है ।

भैरवी—अच्छा, देखा जाएगा ।

इसके बाद दोनों ने शांति से रात बिताई । सवेरा होने पर भैरवी निगमानन्द को साथ लेकर चलने लगीं । निगमानन्द का मन भैरवी के प्रति इतना आकृष्ट हो गया था कि वहां से जाने की उनकी इच्छा ही नहीं हो रही थी। फिर भी दोनों जंगल से निकल पड़े और बाहर आकर उन्होंने देखा कि सामने ग्रेट इण्डियन पेनिन्सुलर (G. I. P.) रेल लाइन है । भैरवी ने इस लाइन के किनारे कुछ दूर तक आकर कहा, "ये रुपए लो, स्टेशन दिखाई दे रहा है, वहां से टिकट लेकर कलकत्ता चले जाओ ।" नितांत अनिच्छुक होने के बावजूद निगमानन्द आगे बढ़ने लगे । कुछ दूर जाने के बाद उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो पाया कि भैरवी पहले की तरह खड़ी हैं । स्टेशन के पास जाकर देखा तो पाया कि भैरवी गायब हो चुकी हैं । भैरवी के अचानक गायब हो जाने से उनका मन बहुत दुःखी हो गया । उन्होंने सोचा, "मैंने क्या नहीं किया ? ऐसा गुरु पाकर भी उन्हें जाने दिया ।" यह सोच कर वे जंगल की तरफ दौड़े । जाकर देखा कि न वह कुटी है और न ही वह भैरवी । निगमानन्द को और अधिक विस्मय हुआ । निगमानन्द ने पुनः सोचा कि संभवतः भैरवी उर्ध्वलोक की निवासी हैं अथवा यक्षिणी वर्ग की हैं । अन्यथा मनुष्य के लिए इतना उन्नत होना तो सम्भव नहीं है । निगमानन्द ने मन ही मन सोचा कि यह कैसे सम्भव हुआ । इधर-उधर घूमने के बाद आख़िर वे पुनः स्टेशन पर पहुंचे । स्टेशन मास्टर से कलकत्ता का किराया पूछने पर उसने अठारह रुपए दस आने बताया । निगमानन्द ने देखा कि भैरवी ने उन्हें जो धन दिया है उसमें से किराया चुकाने के बाद चार आने और बचते हैं । उससे कलकत्ता जाने तक का खर्चा चल जाएगा । वहां से टिकट लेकर वे कलकत्ता चल पड़े ।

डाक्टर एनी बेसेन्ट के साथ शास्त्रार्थ

कलकत्ता पहुंचने के बाद निगमानन्द ने यह उचित नहीं समझा कि वे पहले जहां पर रहते थे वहीं रहें, क्योंकि अब तो वे संन्यासी हैं। संन्यासियों के लिए पूर्व परिचय रखना उचित नहीं है। अतः वे धर्मशाला में रहने लगे। दो-चार दिन के बाद समाचार पत्रों से उन्हें मालूम हुआ कि थियोसाफीविद् एनी बेसेन्ट कृष्ण नगर में परलोक के सम्बंध में भाषण देंगी। निगमानन्द के मन में वहां जाकर यह देखने की उत्सुकता हुई कि वे क्या नई बातें बताती हैं, उनका तत्त्व वेदान्त दर्शन से कितना भिन्न है और वे लेडबिटर साहब से कितना अधिक जानती हैं। वे अपना लोटा-कम्बल लेकर सियाल्दा स्टेशन पहुंचे। उनके पास पैसे नहीं थे, फिर भी वे रेलगाड़ी से जाना चाहते थे। परंतु बिना टिकट जाना उन्हें अच्छा नहीं लगा। इसलिए वे इधर-उधर घूमने लगे। आजकल की तरह उस समय साधु-संन्यासियों के लिए रेल-गाड़ियों में जाने के लिए ऐसे कड़े नियम नहीं थे। परन्तु उन्हें अयाचित प्रार्थी बनना पसंद नहीं था। इस बीच कृष्ण नगर जाने वाले किसी सज्जन ने उनसे पूछा कि क्या स्वामीजी कृष्ण नगर जाएंगे। उस सज्जन ने गार्ड से अनुरोध करके उन्हें गाड़ी में बिठा दिया। कृष्ण नगर में पहुंचकर निगमानन्द परमेश्वर लाहिड़ी नामक एक वकील के घर ठहरे। यथा समय निगमानन्द उन्हीं वकील साहब के साथ सभास्थल में पहुंचे। वहां उन्होंने देखा कि सभास्थल पर लोगों की बड़ी भारी भीड़ है। बेसेन्ट की अद्भुत वक्तृता क्षमता और शास्त्र ज्ञान सुनकर निगमानन्द को आश्चर्य हुआ। परंतु उनकी धारणा हुई कि बेसेन्ट के धार्मिक विचार हिन्दू शास्त्रों के विचारों से भिन्न हैं। भाषण के अंत में बेसेन्ट ने कहा, "यदि भाषण के सम्बंध में किसी को कोई आपत्ति हो अर्थात् इसके किसी अंश के बारे में कोई चर्चा करनी हो तो मेरे आवास पर आए, मैं उनकी बात सुनूंगी और उनकी समस्या का समाधान करने का प्रयास करूंगी।"

अगले दिन निगमानन्द वकील साहब को साथ लेकर बेसेन्ट के आवास पर पहुंचे और उन्होंने उनसे कहा, "क्या आपने अपने भाषण

में एक स्थान पर यह भी कहा था कि आत्मा को मरणोपरान्त जीविता-वस्था में घटने वाली सब घटनाएं याद रहती हैं, यदि हां, तो यह कैसे सम्भव है ?"

बेसेन्ट—क्यों सम्भव नहीं ? मृतक को प्रत्येक घटना याद रहती है।

निगमानन्द—यदि मृत्यु के वाद प्रत्येक घटना याद रहेगी तो पुनर्जन्म नहीं होगा।

वेसेन्ट—क्यों नही होगा, निश्चय ही होगा।

निगमानन्द--यदि परलोक में सत और असत, सभी घटनाएं याद रहेंगी और मृतक के मन में यदि उनके फलाफल का विचार आता है तो वह असत मार्ग को छोड़ कर क्रममुक्ति-पथ पर चलेगा। उस स्थिति में उसका पुनर्जन्म नहीं होगा। वह असत कार्यों के बुरे परिणामों से इतना विरक्त हो उठेगा कि वह कभी असत मार्ग पर नहीं चलेगा। निश्चय ही सन्मार्ग को चुनकर देवयान में जाएगा।

वेसेन्ट—(गुस्से से) आप कहना क्या चाहते हैं ?

निगमानन्द—मृतक को केवल वह बात याद रहती है जिसमें उसका प्रबल आकर्षण होता है। मनुष्य उस वस्तु के आकर्षण से बाध्य होकर पुनर्जन्म लेता है। जो लोग सत हैं अर्थात् भगवत आराधना करते हैं,उन्हें उस आराधना के प्रति प्रबल आसक्ति रहती है। अतः वे सत पथ पर जाएंगे, और नहीं लौटेंगे। आपका तर्क है कि प्रत्येक घटना का स्मरण रहेगा, यह भ्रामक, अवैज्ञानिक और अतर्कसंगत है। मनुष्य अपनी जीवितावस्था में अनेक बातें भूल जाता है। मृत्यु एक बहुत बड़ा परिवर्तन है। मृत्यु के बाद उसे प्रत्येक घटना का स्मरण रहेगा, यह आपको कैसे पता चला ?

वेसेन्ट का मुंह लाल हो गया। रूखे स्वर में उन्होंने कहा, यह मैं अपनी जानकारी से कह रही हूं, मैं जो जानती हूं, कह रही हूं– "My knowledge, my knowledge।"

वाद-विवाद में वेसेन्ट जोर-जोर से बोलने लगीं। यह देखकर परमेश्वर बाबू ने कहा, "महोदया, आप जिनके साथ वाद-विवाद कर रही हैं वे आपकी नजरों में वच्चे लग सकते हैं, पर वे वेदान्ती संन्यासी हैं तथा उन्होंने महात्मा लेडविटर के पास कुछ दिन ठहरकर परलोक-तत्त्व की खोज की है। यदि आपके पास कोई तर्क हो तो बताइए। यह सुनकर वेसेन्ट थोडी शांत हुई और मुस्कराते हुए बोलीं, "ठीक है, कहिए।"

निगमानन्द—ज्ञान कहने से नाना प्रकार के ज्ञान का बोध होता है। किसी को सुनकर, किसी को ग्रन्थों का अध्ययन कर अथवा किसी को अपनी साधना से ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इन तीन तरह के ज्ञान में से आप ने परलोक के संबंध में जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह किस प्रकार का है।

वेसेन्ट—जो महात्मा लोग हमारी समिति के शीर्ष स्थान में हैं, उन्हें मास्टर कहा जाता है। वे सब त्रिकालदर्शी महापुरुष हैं। वे हिमालय के जनविहीन स्थानों में रह कर लोक-हित के बारे में चिंतन करते हैं। हमारा यह संस्थान उन्हीं के निर्देश से संचालित होता है। हम लोगों में जो भी शुद्धात्मा हैं वे उन मास्टरों से बीच-बीच में भेंट करते हैं और उनसे समस्त ज्ञान प्राप्त करते हैं। हमारा ज्ञान उनसे सुना हुआ है।

कलकत्ता छोड़ना

श्रीमती वेसेन्ट के साथ वार्तालाप करने के बाद निगमानन्द उनसे विदा लेकर कलकत्ता से लौट आए। परन्तु उन्हें कहीं पर भी योगी गुरु का दर्शन नहीं हुआ। उन्होंने सोचा कि क्या भैरवी की बात झूठ निकलेगी ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। इस बीच कामाख्या में अम्बुवाची का त्यौहार मनाए जाने का समय समीप था। निगमानन्द ने कामाख्या जाने वाले कुछ साधुओं के साथ कामाख्या जाने के बारे में सोचा। जाऊं या न जाऊं—इस उधेड़बुन में बहू बाजार से

मेडिकल कालेज की ओर जाते समय उन्होंने देखा कि पास के शिव मंदिर के जीने पर कोई भैरवी खड़ी हैं। जब स्वामीजी उनके सामने आए तो भैरवी उन्हें सम्मोहित करने लगीं। निगमानन्द भैरवी के बारे में सोचते हुए कुछ आगे गए और वहां से पुन: लौटकर शिव मंदिर के सामने से होकर दो-चार बार आने जाने लगे और भैरवी की ओर ताकते रहे। भैरवी दांत दबा कर हंस रही थीं। उस समय अचानक उनके मन में आया, "यह क्या है? क्या मैं सम्मोहित हो चुका हूं। मैं इधर-उधर क्यों आ-जा रहा हूं?" उन्होंने कुछ देर तक आंखें मूद कर सोचा और निश्चय किया कि सदैव आत्मभाव में निमग्न न रहने तथा अन्यमनस्क होने के कारण भैरवी ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए मुझे सम्मोहित कर लिया है। वे और विलम्ब किए बिना वह स्थान छोड़ कर धर्मशाला में पहुंचे और उन्होंने निश्चय किया कि मैं आत्म-दर्शन होने तक लकड़ी की बनी नारी मूर्ति भी नहीं देखूंगा। साधिकाओं के लिए भी यही नियम लागू है। साधकों के लिए संसार में विशेषकर कलकत्ता जैसे जनबहुल स्थान में रहना उचित नहीं है, यह सोचकर निगमानन्द कामाख्या जाने वाले कुछ साधुओं के साथ कामाख्या के लिए चल दिए।

कामाख्या यात्रा

कामाख्या पहुंच कर निगमानन्द ने वहां पर साधुओं का अभूतपूर्व समागम देखा।

प्रचलित जनश्रुति के अनुसार यहां के शक्ति साधक मारण, उच्चाटन, योगिनी, भूत-प्रेत आदि सकाम-साधना में सिद्धि प्राप्त करते हैं। यहां पर देवी की योनि गिरी थी। लोग कहते हैं कि अम्बुवाची के प्रत्येक त्यौहार के समय प्रत्येक वर्ष इस पीठ से बहुत रक्तस्राव होता है। निगमानन्द ने जनश्रुति की सच्चाई को परखने के लिए पंडों को दो-दो रुपए देकर प्रत्येक रात को मंदिर के भीतर प्रवेश कर पीठ पर हाथ रखकर देखा और पाया कि यह सब झूठ है। तब उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि वहां पर पारद का एक प्रस्रवण है। अम्बुवाची का

त्यौहार समाप्त हो गया। वहां पर कुछ दिन ठहरने के बाद उनकी इच्छा हुई कि परशुराम तीर्थ देखें। वे इसके लिए सर्दियों तक कामाख्या में रहे और उसके बाद गौहाटी से डिब्रूगढ़ आकर कुछ साधुओं के साथ रेलगाड़ी से सादिया पहुंचे। वहां से वे हिंस्र पशुओं से घिरी दुर्गम वनभूमि को पार कर परशुराम तीर्थ पहुंचे।

परशुरान तीर्थ

परशुराम तीर्थ में पहुंच कर निगमानन्द ने ब्रह्मकुण्ड में स्नान किया और उसके बाद वे वहां रहने लगे। दो दिन बाद वे प्रबल ज्वर और अतिसार से पीड़ित हो गए। उनकी उठने-बैठने की ताकत भी जाती रही। निगमानन्द बहुत चिन्तित हो गए और उन्होंने साथियों से दो-एक दिन रुकने का अनुरोध किया। परन्तु वे निगमानन्द को बताए बिना एक दिन रात में ही उठकर चले गए। अगले दिन सुबह उन्होंने देखा कि उनके साथी उन्हें छोड़ कर जा चुके हैं और पास में कोई नहीं है। यह सोचते हुए कि अकेले इस जंगल में कहां जाएं, उनका हृदय कांप उठा। इसी बीच एक पहाड़ी आदमी वहां पहुंचा। उसने निगमानन्द की हालत देख कर उन्हें जंगली जड़ी-बूटी लाकर दी और अपने साथ चलने का संकेत किया। मजबूरन निगमानन्द उसके कंधे पर हाथ रख कर उसकी कुटी में गए।

पहाड़ी लोगों का ग्रातिथ्य

हमें इस बात का घमंड है कि हम सभ्य और शिक्षित हैं। पर जब किसी अतिथि को देखते हैं, तो उसे एक दिन के लिए भी आश्रय देने में हिचकिचाते हैं। किसी को विपदाग्रस्त देखकर उसकी ओर नज़र भी नहीं डालते। परंतु इन पहाड़ी लोगों की दया और आतिथ्य से निगमानन्द मुग्ध हो गए। उनके सेवा-सत्कार से वे धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे।

पहाड़ों में भ्रमण

निगमानन्द को एक ही स्थान पर अधिक दिन रहना अच्छा नहीं लगता था। इसलिए वे बीच-बीच में पहाड़ों में इधर-उधर घूमते रहते।

धीरे-धीरे इधर-उधर दूर-दूर बसे हुए पहाड़ी लोगों से उनका परिचय होता गया। वे प्रतिदिन नए-नए स्थानों पर जाते और चारों ओर के रमणीक दृश्य देखते। एक बस्ती के बाद दूसरी बस्ती और जंगल के बाद जंगल पार करते हुए एक बार निगमानन्द ब्रह्मकुण्ड के उत्तर में लगभग ४० मील दूर स्थित एक पहाड़ी बस्ती में पहुंच गए। एक दिन अपराह्न में इस बस्ती से वे एक टूटी-फूटी छतरी लेकर घूमने निकल गए। ऊंचे-नीचे अनेक पहाड़ों को पार करते हुए वे एक रमणीक स्थान में पहुंचे। इस स्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर वे मुग्ध हो गए और अपनी थकावट दूर करने के लिए वहां बैठ गए। बैठे-बैठे वे भगवान की सृष्टि के विचित्र रहस्य के बारे में सोचने लगे। उस समय उनके मन में कितनी नदियों, पहाड़ों और देश-विदेश की बातें नाच उठीं। अपनी जन्म-भूमि की बात, जीवन की पूर्वावस्था, बचपन, माता-पिता, मित्रों और आत्मीय स्वजनों की बातें भी उनके मन में कौंध गईं। अंत में पत्नी का स्मरण हो आने पर उनका मन चंचल हो उठा। उन्होंने वेद-वेदान्त, उपनिषद, पुराणों का जो अभ्यास किया था, उस समय कोई भी उनकी चिंताधारा को नहीं रोक सका। निगमानन्द ने सोचा कि क्या इतने दिनों तक व्यर्थ ही वेदान्त का अभ्यास किया? कहां, कोई भी तो मेरे इस संस्कार-स्रोत को नहीं रोक सका? धीरे-धीरे वे आत्मविभोर हो उठे।

भीषण जंगल में भटक जाना और वृक्ष के कोटर में रात बिताना

कुछ देर बाद जब उन्हें होश आया तो उन्होंने देखा कि शाम ढल चुकी है। वे पहाड़ी बस्ती में लौटने के लिए तेजी से चलने लगे। अंधेरे में कुछ दूर जाने के बाद उन्होंने देखा कि वे जिस ओर बढ़ रहे हैं वहां भीषण जंगल है। इधर-उधर भटक कर वे थक गए। उन्होंने सोचा, "शायद आज बाघ-भालुओं का शिकार बनना पड़ेगा।" पेड़ पर चढ़ने से शायद बच भी जाते, पर उन्हें तो पेड़ पर चढ़ना आता ही नहीं था। पास में एक बरगद का वृक्ष था जिसकी टहनी जमीन तक

छू रही थी। उन्होंने उसे पकड़ कर ऊपर चढ़ने की कोशिश की। बड़ी मुश्किल से पेड़ पर चढ़कर उन्होंने देखा कि पेड़ के निचले भाग में एक बहुत बड़ा कोटर है जिसमें एक आदमी आराम से बैठ सकता है। अंधेरा होने के कारण कुछ भी दिखाई नहीं देता था। निगमानन्द ने कोटर को छतरी से टटोला और देखा कि उसमें कुछ नहीं है। फिर भी उन्हें आशंका हुई कि कहीं भोजन की खोज में बाहर गया कोई जंगली जानवर यहां वापस न आ जाए। अंत में काफी सोच-विचार के बाद और कोई दूसरा उपाय न होने के कारण उन्होंने छतरी खोल कर कोटर के मुंह पर रख दी और वे बड़ी मुश्किल से उसमें बैठे रहे। रात्रि के अन्तिम प्रहर में थोड़ी नींद आई।

योगी गुरु से भेंट

कुछ देर बाद अचानक निगमानन्द की नींद टूटी। उन्होंने देखा कि जंगल के चारों ओर आलोक फैला है। यह जानने के लिए कि मामला क्या है वे वृक्ष के कोटर से बाहर निकले। उन्होंने सामने देखा कि पेड़ों के सूखे पत्तों में आग जला कर कोई बैठा है। वीरान जंगल में आदमी देखकर निगमानन्द सोच में पड़ गए। उन्होंने सोचा अचानक यहाँ पर आदमी कैसे आया? क्या यह भी मेरी तरह भटका हुआ है अथवा कोई भूत-प्रेत है? भय के मारे उनका शरीर कांपने लगा। उनके विस्मय की सीमा नहीं रही। वे साहस बटोर कर पेड़ से नीचे आये और उस आदमी के सामने खड़े रहे। उनके पेड़ के नीचे उतरते समय आवाज हुई। फिर भी उस आदमी ने उनकी ओर देखा तक नहीं। उनके पास जाकर निगमानन्द ने देखा कि कौपीन पहने कोई साधु हैं, पास में गांजे की चिलम है। वे सिर झुकाकर गांजा तैआर कर रहे हैं और उन्होंने गाँजा पीने के लिए धूनी जलाई है। निगमानन्द ने इससे पहले किसी से भी यह नहीं सुना था कि यहां पर कोई साधु-संन्यासी रहता है। वे साधु से साहस कर कुछ भी नहीं पूछ पाए और भयभीत होकर उनके पास बैठ गए। इसके बावजूद साधु ने उनकी ओर नहीं देखा। बाद में चिलम सुलगा कर साधु ने खुद दम लगाया

और उसे निगमानन्द की ओर बढ़ा दिया। गांजा पीना खत्म होते ही साधु ने धूनी बुझा दी और वे चिमटा हाथ में लेकर निगमानन्द को अपने पीछे आने का निर्देश देकर आगे बढ़ने लगे। वे इतनी तेजी से चल रहे थे कि निगमानन्द दौड़ते हुए भी उनके बराबर नहीं चल पा रहे थे। चलते-चलते निगमानन्द को बंकिमचन्द्र की "कपाल कुण्डला" कहानी याद आ गई। उन्होंने सोचा कहीं ऐसा तो नहीं है कि जिस प्रकार कापालिक भूले-भटके नन्द कुमार की हत्या करने के लिए उसे ले जा रहा था उसी तरह यह साधु भी मुझे ले जा रहे हों ? मैं भी तो नन्द कुमार की तरह भटका हुआ हूं और इस साधु का चेहरा भी तो बिल्कुल कापालिक की तरह है। यह सोच कर वे साधु के पीछे-पीछे चलने की बजाय थोड़ी देर के लिए रुक गए। परन्तु साधु ने पीछे मुड़ कर नहीं देखा। तब निगमानन्द ने सोचा कि वह कापालिक नहीं है, कापालिक होता तो लौटकर देखता। यह सोचकर निगमानन्द बड़ी मुश्किल से दौड़कर उनके पास पहुंचे।

पहले की तरह चलते-चलते साधु और निगमानन्द एक छोटी पहाड़ी के पास पहुंचे। वह स्थान अत्यन्त साफ-सुथरा था। पास में एक झरना बह रहा था। यहां पर साधु ने पीछे मुड़कर निगमानन्द की ओर देखा। कैसी विशाल थी उनकी मूर्ति ! उनके शरीर का रंग गोरा था, छाती चौड़ी थी, ललाट प्रशस्त था, उनके बाल काले और लंबे तथा उनके नेत्र विशाल और मुख-मण्डल ज्योतिर्मय था। ऐसा सुन्दर रूप देखकर निगमानन्द एक साथ ही खुशी और विस्मय से अधीर हो उठे और उन्होंने उनके चरणों में प्रणाम किया। साधु ने प्यार से निगमानन्द का हाथ पकड़कर उन्हें उठाया और कहा, "वत्स, रात में अचानक जंगल के भीतर मुझे देखा। मैंने तुम्हें कुछ बताए बिना अपने पीछे-पीछे आने का इशारा किया। इससे शायद तुम्हें विस्मय और आश्चर्य हुआ होगा, डर भी लगा होगा। परन्तु तुम्हें देखकर मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। क्योंकि इससे पहले ही मुझे पता था कि तुम कौन हो, किस लिए घूम रहे हो, तुम्हें अभाव क्या है और तुम किस कारण से वृक्ष के कोटर में थे। इसलिये मैं तुम्हें लिवा ले जाने के लिये वहां पर गया था। मेरे द्वारा तुम्हारी अभिलाषा पूरी होगी।" साधु ने

निगमानन्द को उनके इस जन्म, पूर्व जन्म और भविष्य जीवन की अनेक गुप्त बातें बताईं। यह सुनकर निगमानन्द को और अधिक आश्चर्य हुआ। उन्हें विश्वास हो गया कि ये सचमुच योगसिद्ध पुरुष हैं। वे अपनी सब व्यथा-वेदनाएं भूल गए और उन्होंने उनके समक्ष आत्म समर्पण करते हुए शरण में लेने की याचना की।

योग शास्त्रों की चर्चा

इसके बाद साधु महाराज ने पहाड़ के पास पहुंचकर एक स्थान से एक बहुत बड़ा पत्थर हटाया। वह पत्थर घूमने वाले ढक्कन की तरह एक गुफा के मुंह पर ढका हुआ था। पत्थर के हट जाने के बाद निगमानन्द ने देखा कि पहाड़ के भीतर एक गुफा है। साधु महाराज और निगमानन्द दोनों ने गुफा के भीतर प्रवेश किया। उसके भीतर छोटे-छोटे दो कमरे थे। एक में रसोई बनती थी और खाने-पीने की जगह थी, दूसरे में साधना आदि की जाती थी। आखिरी कमरा ताड़ के पत्तों पर लिखी पोथियों से भरा हुआ था। पुस्तकें हिन्दी की थीं। तब तक सूर्योदय हो गया था। निगमानन्द ने घर के भीतर खाने-पीने की कोई चीज नहीं देखी। उस समय उन्हें बड़ी जोर की भूख लगी हुई थी। साधु महाराज ने आगंतुक को एक झरना दिखाया और उसमें नहाने का निर्देश दिया। उसके बाद वे कहीं चले गए। कुछ देर बाद लौट कर कुछ शकरकंद खाने को दिए। यहां पर शकरकंद और जंगली फलों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। साधु महाराज सात-आठ दिन के पश्चात बस्तियों में जाते थे और कुछ चावल मांग लाते थे। वहां पर रहते समय निगमानन्द को सप्ताह में एक ही बार भात और उबले हुए शकरकंद मिलते थे। इन साधु महाराज का नाम **उदासीनाचार्य योगीराज सुमेरुदास जी** था। सुमेरुदास जी ने निगमानन्द को हाथ से लिखे योग और स्वरोदय शास्त्र पढ़ने को दिए। जंगल के भीतर इतने सारे ग्रन्थ देखकर निगमानन्द ने उनसे पूछा, "यह सब यहां पर कैसे लाए गए ?" सुमेरुदास जी ने बताया कि जिस समय मुसलमान भारत पर आक्रमण कर हिन्दू-मन्दिरों को

लूटने और शास्त्र-ग्रन्थागार को जलाने लगे तो हिन्दू-साधु उनके अत्याचारों को सहन नहीं कर सके। उन्होंने अपने अमूल्य शास्त्रों को लेकर जंगलों में आश्रय लिया। उनमें से अनेक साधु यहां पर थे। गुरु परम्परा से यह सब शास्त्र मुझे प्राप्त हुए। बाद में जब भारत के अच्छे दिन आएंगे, ये सब शास्त्र देश के लोगों के पास पहुंचा दिए जाएंगे।

प्राथमिक शिक्षा और उपदेश

निगमानन्द ने देखा कि यहां पर हाथ से लिखे जो स्वरोदय शास्त्र हैं, उनका देश में स्वरोदय शास्त्र के नाम से प्रचलित ग्रन्थों से कोई सामंजस्य नहीं है। सुमेरुदास जी ने स्वयं उन्हें पहले शरीर तत्त्व, वायु तत्त्व, नाड़ी तत्त्व आदि योगशास्त्र की मुख्य बातें समझा दीं। निगमानन्द पत्तों के रस से पेड़ों की छालों पर उन सबको लिखकर रखते थे और उन सबका अभ्यास करते थे। उन्होंने जब सुमेरुदास जी से योगशास्त्र के मार्मिक प्रसंगों को सुना और साथ ही मौखिक व्याख्या के साथ उनकी प्रक्रियाओं को आंखों से देखा, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उनका हृदय भक्ति-भाव से भर गया। योग-शास्त्र की जो प्रक्रियाएं हैं, उन्हें सीखना आजकल के लोगों के लिए बहुत ही कष्टसाध्य है। सुमेरुदास जी ने उन्हें वह सब न सिखा कर कुछ सहज साध्य कौशल सिखा दिए और साथ ही योग करते समय समाधि की स्थिति आने पर सबसे पहले जो करना है, उसके बारे में भी उपदेश दिए। समाधि की अवस्था में शरीर में जो लक्षण दिखाई देते हैं, वह भी बता दिए। निगमानन्द ने समझा कि जो सच्चे योगी हैं, वे जंगल की गुफाओं के अलावा संसार में और कहीं नहीं रहते।

जब अवसर मिलता, निगमानन्द सुमेरुदास जी के साथ पहाड़ों से घिरी वनभूमि के रमणीक दृश्यों को देखने बाहर जाते थे। इस दौरान दोनों विभिन्न प्रसंगों पर अनेक बातें करते थे। सुमेरुदास जी से निगमानन्द ने जब अपने पूर्व जन्म और इस जीवन में आत्म विस्मृत होने की बात सुनी, तो उनका मन दुखी हो गया, साथ ही उन्हें प्रतीत

हो गया कि उनका भविष्य जीवन श्रुतिमधुर और चमत्कारपूर्ण है। उन्हें इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि परम ज्ञानी जब पुनः जन्म लेते हैं तो उन पर अज्ञान रूपी बादल इतना छा जाता है कि उसे दूर करने के लिए इतनी चेष्टा की आवश्यकता होती है।* उन्होंने अपने बचपन में जिस प्रसिद्ध साधु के बारे में सुना था, अब पता चला कि वे इस शरीर में निगमानन्द हैं। पुनः निगमानन्द ने सुमेरुदास जी के मुंह से सुना कि योगी जन भले ही जंगलों और गुफाओं में रहते हैं, पर उन्हें संसार की छोटी-बड़ी, सब बातों की जानकारी रहती है। जिस प्रकार समाचार पत्रों में समाचार प्रकाशित होते हैं और लोगों को उनकी जानकारी होती है, ठीक वैसे ही योगीजन न केवल इस जगत की अपितु समस्त ब्रह्माण्ड के समाचार रखते हैं, क्योंकि सिद्ध बन जाने के बाद वे जगत के कल्याण के लिये ही शरीर धारण करते हैं।

त्राटक योग की शक्ति

एक दिन अपराह्न में निगमानन्द सुमेरुदास जी के साथ घूमने गए। अचानक उन्होंने सामने एक बहुत बड़ा बाघ देखा। उसे देखकर वे भय के मारे कांपने लगे। सुमेरुदास जी ने जैसे ही बाघ की नजरों से अपनी नजरें मिलाईं बाघ भय से जड़ीभूत हो गया। उसके बाद जैसे ही सुमेरुदास जी ने उसकी नजरों से अपनी नजरें हटाईं, वह तेजी से भाग गया। इस पर निगमानन्द ने विस्मय से पूछा, "इस योग का नाम क्या है?" सुमेरुदास जी ने इसका नाम त्राटक योग बताया और निगमानन्द को त्राटक योग की जानकारी दी। इस योग का कौशल बताते हुऐ उन्होंने कहा कि मनुष्य के भीतर सब शक्तियां हैं। उन शक्तियों को जागृत करने से सम्पूर्ण विश्व को वश में किया जा सकता है।

---

* निगमानन्द ने अपने पूर्व जन्म में ब्रह्मानन्द गिरि नामक एक तांत्रिक साधु के रूप में त्रिपुरा राज्य में जन्म लिया था। इसका विस्तृत विबरण "नीलाचल वाणी" में दिया गया है।

सुमेरुदास जी का परिचय

प्रारब्ध मनुष्य को कर्म में प्रवृत्त कराता है, परन्तु मनुष्य यह बात नहीं समझ पाता है। निगमानन्द वनों की शोभा देखने आए थे। परन्तु इसके परिणामस्वरूप उनका प्रारब्ध उन्हें सुमेरुदास जी के पास ले आया। सुमेरुदास जी के भीतर इसी प्रकार से साधुत्व का विकास हुआ था। पहले वह साधु बनना नहीं चाहते थे। एक दिन सुमेरुदास जी ने प्रसंगवश निगमानन्द को बताया कि वे पंजाब केशरी राजा रणजीत सिंह के पार्षद थे। रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद राजा दिलीप सिंह दूसरे सिख युद्ध में पराजित हुए। सुमेरुदास जी राजा दिलीप के साथ विलायत गए। विभिन्न कारणों से विरक्त होकर वे दिलीप सिंह को छोड़कर यूरोप के अनेक स्थानों का भ्रमण करने के बाद रूस पहुंचे। उसके बाद उन्होंने चीन के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और उसके बाद तिब्बत में रहने लगे। यहीं पर रहते समय एक योगी उन्हें आकर्षित कर ले गए। उनकी कृपा से सुमेरुदास जी ने योग में सिद्धि प्राप्त की और उसके बाद वे पूर्वोक्त गुफा में सनातन धर्म-शास्त्रों के रक्षक बन कर रहे। पार्षद रहते समय उनका नाम कुथमिलाल सिंह था। योग सिद्धि के बाद वे स्वामी सुमेरुदास जी के नाम से परिचित हुए। प्रसंगवश सुमेरुदास जी ने एक दिन बताया कि भारत की थियोसोफी सोसाइटी के साथ उनके बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। इस सोसाइटी की संस्थापक मैडम ब्लावाटस्की एक बार जब जहाज में कहीं जा रही थी, सुमेरुदास जी ने किसी आध्यात्मिक कारणवश उनसे सूक्ष्म रूप में भेंट कर उनका मत बदल दिया और उन्हें भारत ले आए। उनकी प्रेरणा से मैडम ने यूरोप में भारत के अध्यात्म ज्ञान का प्रचार किया। अब निगमानन्द को पता चला कि मैडम ब्लावाटस्की सुमेरुदास जी की शिष्या हैं, अतः उनकी गुरु बहन हैं।

योगी गुरु का निर्देश

निगमानन्द इस पहाड़ी क्षेत्र में सुमेरुदास जी के पास तीन मास से कुछ अधिक समय तक रहे और उन्होंने उनसे योग-साधना की

प्राथमिक क्रियाएं सीख लीं। सुमेरुदास जी ने उनसे कहा, "यह वन भूमि दूसरी क्रियाओं के लिए अनुकूल क्षेत्र नहीं है। इसलिए तू लोक समाज में जाकर योग की साधना कर। केवल शास्त्रों का पाठ करने से कुछ नहीं होगा, साधना करना आवश्यक है। परन्तु केवल उबले हुए रतालू और शकरक़ंद खाकर साधना नहीं की जा सकती। योग-साधना के समय राजा-महाराजाओं की तरह घी-दूध आदि पौष्टिक आहार लेना पड़ेगा। उसके लिए धन चाहिये। अब तू लोक समाज में जा और किसी धनी गृहस्थ के आश्रय में रहकर योग की साधना कर।"

निगमानन्द—कहां जाऊं?

सुमेरुदास—यहां से मेदिनीपुर जा। वहां पर तेरी सहायता करने वाले लोग मिल जाएंगे।

घर छोड़ने के बाद केवल वेदान्त की चर्चा करते समय निगमानन्द के मन में निर्विकल्प-अवस्था के प्रति एक स्वाभाविक आकर्षण था। अतः उन्होंने पूछा, "क्या असंप्रज्ञात समाधि योग-साधना की चरमावस्था है? क्या इस अवस्था में पहुंचने के बाद निर्विकल्प अवस्था के लिए पुनः साधना करनी होती है?" सुमेरुदास जी ने कहा, "असंप्रज्ञात आ जाने से निर्विकल्प अपने आप आ जाएगा।"

निगमानन्द जब उनके आदेश को शिरोधार्य कर विदा लेने लगे तो सुमेरुदास जी ने उनके भविष्य के सम्बन्ध में अनेक बातें कहीं और वे प्रसन्नचित्त उन्हें पूर्ववर्णित पहाड़ी बस्ती में छोड़ आए। वहां के पहाड़ी लोग निगमानन्द को वापस आए देख बहुत खुश हुए। वहां से निगमानन्द ब्रह्मकुण्ड गए और ब्रह्मकुण्ड से परशुराम तीर्थ की यात्रा पर जाने वाले लोगों के साथ पुनः बंगाल में आ गए।

श्रीगुरु का आश्रम छोड़कर बंगाल में पहुंचने के बाद निगमानन्द सबसे पहले मेदिनीपुर गए। जाते-जाते एक दिन वे इस जिले के तमलूक सब-डिवीजन के नन्दीग्राम थाने के अंतर्गत हरिपुर गांव में पहुंचे। उन्होंने उस गांव के देवालय में रात बिताई। बड़ी सुवह उस गांव के जमींदार शारदा प्रसाद मजूमदार वहां पर आए और उन्होंने निगमानन्द से

पूछा, "आप कौन हैं ? क्यों घूम रहे हैं, बताइए तो सही ?" निगमानन्द ने जब उनसे उनका परिचय लेने का कारण पूछा तो उन्होंने बताया, "कल रात एक दीर्घकाय साधु ने मुझे सपने में कहा कि तुम्हारे देवालय में कोई साधु सोए हुए हैं। तुम योग-साधना में उनकी सहायता करो, इससे तुम्हारा अशेष मंगल होगा। क्या आप वही साधु हैं ?" उनकी बात सुनकर निगमानन्द समझ गए कि उनके गुरु सुमेरुदास जी अब भी उनके साथ हैं।

अपना परिचय देकर निगमानन्द ने उन्हें बताया कि मैं योग-साधना के लिए विभिन्न स्थानों का भ्रमण कर रहा हूं। उनकी बात सुनकर शारदा बाबू ने कहा, "जो सहायता चाहिए, मैं उसके लिए तैयार हूं।" उनके घर के पिछवाड़े एक बगीचा था। निगमानन्द ने शारदा बाबू से तीन कमरों वाला एक घर बना देने के लिए कहा। घर बन जाने के बाद निगमानन्द ने शारदा बाबू को सावधान करा दिया कि इस बात का किसी को पता न चले कि मैं यहां पर साधना कर रहा हूं। शारदा बाबू इस पर सहमत हो गए। शारदा बाबू वहां के जमींदार और सात्त्विक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्हें किसी प्रकार का सांसारिक अभाव नहीं था। वे योग साधना में निगमानन्द की सहायता करने लगे।

योग साधना

सर्वप्रथम शरीर को साधना के उपयोगी बनाने के लिए निगमानन्द सुमेरुदास जी के उपदेशानुसार हठयोग की षट्साधना की क्रियाओं से शरीर-शोधन का अभ्यास करने लगे। हठयोग और लय योग एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। हठयोग से शरीर चार-पांच सौ वर्ष तक जीवित रहता है। लय योग द्वारा जीवात्मा और परमात्मा का लय हो जाता है। हठयोग की षट्साधना* में शरीर का शोधन करना होता

---

* हठयोग की साधना के संबंध में विस्तृत विवरण जानना हो, तो श्रीमत् स्वामी निगमानन्द परमहंस देव द्वारा प्रणीत "योगी गुरु" और "ज्ञानी गुरु" ग्रन्थ पढ़िए।
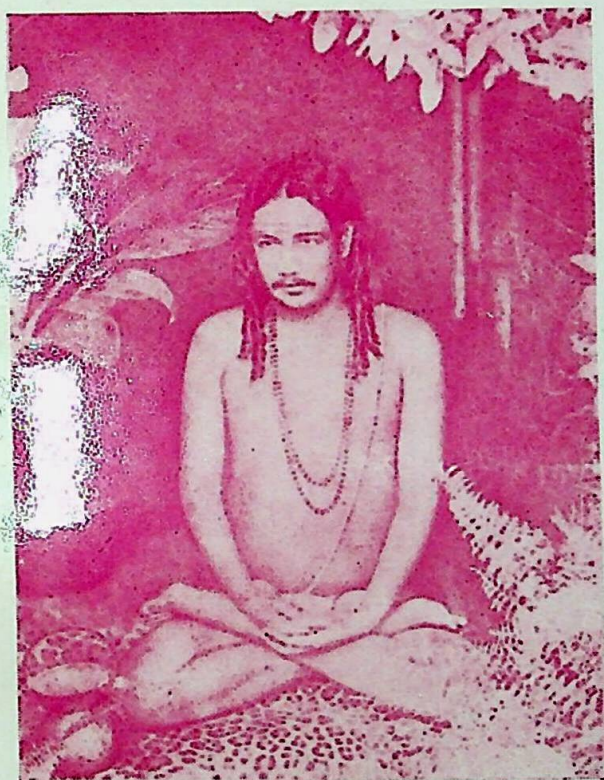
योगी गुरु
परमहंस श्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव

है। यदि शरीर का शोधन नहीं होता है, तो लययोग की आगे की साधनाएं क्रियाशील नहीं होती हैं।

सुमेरुदास जी ने निगमानन्द को उपदेश दिया था कि षट्साधना की प्रत्येक क्रिया का अभ्यास दो-दो मास तक करें। धौतिप्रकरण को पूरा करने के लिए एक वर्ष लगना था। एक वर्ष से अधिक समय तक अभ्यास करना अनावश्यक है, परन्तु आसन का अभ्यास और धौति एक साथ की जा सकती है। नाक के भीतर धागा निगलने, गर्म पानी के साथ तीन अंगुल चौड़े कपड़े को पेट के भीतर लेकर उसे पुनः उलटी करने, तालाब के पानी में कमर तक डुबाकर एक विशेष मुद्रा की सहायता से मलद्वार और लिंगद्वार से होकर पानी लेने और छोड़ने आदि शोधन प्रक्रियाएं करने में निगमानन्द के दिन बीतने लगे।

योग की पहली और मुख्य साधना मेरुदण्ड को सीधा करना है। इसके लिए निगमानन्द ने आसन का अभ्यास करना आरम्भ किया। आसन का अभ्यास करते समय कहीं नींद न आ जाए, इस डर से वे लकड़ी का एक कुंदा गाड़ कर और उसके साथ पीठ लगाकर रात-रात भर उनींदे रह कर आसन का अभ्यास करने लगे। योग का अभ्यास करते समय शरीर की शक्ति का जो ह्रास होता है, उसे पूरा करने के लिए राजे-महाराजों की तरह दूध और घी खाना पड़ता है। शारदा बाबू ने मुक्त हस्त तदनुरूप व्यवस्था कर दी। इस प्रकार प्रायः नौ महीने बीत गए।

योग में विघ्न

यह बात चारों ओर फैल गई कि शारदा बाबू के बगीचे में कोई संन्यासी साधना कर रहे हैं। निगमानन्द के पास लोग, विशेषकर स्कूल के बच्चे आने-जाने लगे। एक दिन निगमानन्द ने उनसे पूछा, "तुम लोग क्यों आते हो?" उन्होंने उत्तर दिया, "बाबा, हमें शिष्य बनाकर योग की शिक्षा दीजिए।" निगमानन्द ने कहा, "मैं क्या जानता हूं जो सिखाऊं?" उन्होंने कहा, "आप जितना जानते हैं उतना ही बताइए।"

इस प्रकार प्रतिदिन लोग आने जाने लगे और तरह-तरह के प्रश्न करने लगे। इससे संन्यासी का समय नष्ट होने लगा। अधिक बातचीत करने के कारण उनके शरीर में वायु विकार होने लगा। बगीचे के जो भीतर तालाब था उसमें स्नान करने के लिए लोग आते थे। वे संन्यासी के मलद्वार से पानी लेने और छोड़ने की प्रक्रिया देखने लगे। इससे निगमानन्द विरक्त हुए और उन्होंने इन असुविधाओं को दूर करने के लिए शारदा बाबू से कहा। शारदा बाबू ने अपराह्न के चार बजे तक उनके पास लोगों का आना-जाना बन्द कर दिया। धौति के लिए ईंट का एक कुण्ड बना दिया तथा उसमें पानी भरकर रखने की व्यवस्था कर दी।

स्थान का त्याग

इससे बाहरी उपद्रव तो कम हो गया, पर एक नई परेशानी दिखाई दी। बाद में उन्हें पता चला कि माया अपने अनुचरों की सहायता से योग में विघ्न डाल रही है। यदि योग में बाधा आती है, तो साधकों का उत्कर्ष होना दूभर हो जाता है। निगमानन्द ने महसूस किया कि योग-विघ्न दूर करना शारदा बाबू की सामर्थ्य के बाहर है। इसलिए उन्होंने गुप्त रूप से वह स्थान छोड़ने का संकल्प किया। परन्तु शारदा बाबू को बताए बिना चले जाना भी कृतघ्नता होगी। इसलिए उन्होंने शारदा बाबू के नाम एक पत्र लिखा कि साधना कार्य में विभिन्न असुविधाएं होने और कुछ अन्य विशेष कारणों से मैं यह स्थान छोड़ कर गुरुदेव के आदेश से अन्यत्र जा रहा हूं। उसके बाद उन्होंने रात में गुप्त रूप से वह स्थान छोड़ दिया और वे सिराजगंज के रास्ते गौहाटी के लिए चल पड़े।

पुन; कामाख्या यात्रा

बिना पूछे किसी के आश्रय में रहना निगमानन्द का स्वभाव नहीं था। इसलिए उन्होंने गौहाटी में न रह कर कामाख्या जाना उचित समझा। कामाख्या हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यहां पर

अनेक धार्मिकजनों का समागम होता है। यह सोचते हुए कि वहां पर उनकी साधना के लिए सहायता मिल सकती है उन्होंने कामाख्या जाने का निश्चय किया। कामाख्या जाते समय गौहाटी में एक गृहस्थ सज्जन ने उन्हें रास्ते में बुला कर कहा, "अहो, संन्यासी जी, सुनो, सुनो"। उस सज्जन का स्वर आधुनिक लोगों की तरह व्यंगपूर्ण था। उसके प्रति ध्यान न देकर निगमानन्द उनके पास पहुंचे। उस सज्जन ने निगमानन्द को बैठने का निर्देश दिया और पूछा, "संन्यासी जी, आप कहां जा रहे हैं ?" निगमानन्द ने उत्तर दिया कि मैं कामाख्या जा रहा हूं। उस सज्जन ने कहा, "कामाख्या जाना हो तो कल जाइए, आज यहीं पर ठहर जाइए।" इस पर निगमानन्द को कोई विशेष आपत्ति नहीं थी और वे उनकी बात से सहमत हो गए।

उस सज्जन ने अपने नौकर को एक कमरा साफ करने के लिए कहा और उसमें स्वामी जी के रहने की व्यवस्था कर दी। उसके बाद निगमानन्द स्नान समाप्त कर गीता पाठ करने लगे। उस सज्जन ने कचहरी में जाते समय संन्यासी के खाने और रहने की व्यवस्था देखने के लिए उनके कमरे में प्रवेश किया तो देखा कि वे गीता पाठ कर रहे हैं। उन्होंने पूछा, "संन्यासी जी ! क्या आपको गीता पाठ करने का अभ्यास है ?"

निगमानन्द ने कहा, "हां, थोड़ा है।"

सज्जन ने पूछा, "गीता पाठ कैसे करते हैं ? क्या गुरु ने समझा दिया है और आप उसे समझ कर पाठ कर रहे हैं या अपने आप कर रहे हैं। निगमानन्द ने उत्तर दिया—"हां, गुरु ने समझा दिया है।" सज्जन ने पूछा, "अच्छा बताइए तो सही, **"जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु-र्ध्रुवं जन्म मृतस्य च"**—इसका अर्थ क्या है। यदि जन्म लेने के बाद मरना निश्चित है और मृत्यु के बाद निश्चय ही जन्म लेना होता है, तो इतने शास्त्रों का पाठ करने से क्या लाभ। इसलिए मैंने यह सब छोड़ दिया है। पहले मैं भी गीता पाठ करता था।" निगमानन्द ने कहा, यदि जन्म लेने के बाद सदगुरु मिलते हैं और उनके उपदेशानुसार

साधना की जाती है, तो प्रत्यक्ष ज्ञान होता है कि सही अर्थ में मेरा जन्म नहीं हुआ है। अतः जिसका जन्म नहीं हुआ है, उसके लिए मृत्यु भी नहीं है—इसकी सच्ची उपलब्धि होती है। केवल जड़ शरीर का ही आना-जाना होता है। जिस समय इस जड़ शरीर से अभिमान और देहात्मबोध दूर हो जाता है, उस समय से इस जड़ शरीर का आना-जाना भी सम्भव नहीं होता है।"

युवा संन्यासी का युक्तियुक्त उत्तर सुनकर उस सज्जन ने कहा, "वाह, वाह, बहुत सुन्दर व्याख्या है। इस विषय पर मैं आपके साथ और आगे चर्चा करना चाहता हूं। अभी कचहरी जाने का समय हो रहा है। शाम को इस विषय पर और आगे चर्चा करेंगे। आप चले मत जाइएगा।"

पहले पाठकों को उस भद्र पुरुष का परिचय दे दें। क्योंकि प्रभुश्री के साधना-जीवन में इनका नाम विशेष रूप से जुड़ा हुआ है। इनका नाम था यज्ञेश्वर विश्वास। उस समय वे गौहाटी के सहायक आयुक्त थे।

आश्रय लाभ

उस दिन शाम को विभिन्न प्रसंगों पर चर्चा करने के बाद यज्ञेश्वर बाबू को जब निगमानन्द के अभिप्राय का पता चला तो उन्होंने उन्हें अपने आश्रय में रखकर साधना में सहायता करने और तत्संबंधी सब बातें गुप्त रखकर व्यय का समस्त भार वहन करने का आग्रह किया। निगमानन्द कामाख्या न जाकर यहीं रहे। कुछ दिन बाद यज्ञेश्वर बाबू ने अपने बगीचे में एक झोंपड़ी बना दी। निगमानन्द ने इसी झोंपड़ी में रहकर साधना आरम्भ की।

साधना का पुनरारम्भ

योगीश्वर सुमेरुदास जी का आदेश था कि षट्साधना की प्रत्येक क्रिया का दो मास अभ्यास करके छोड़ देना होगा। निगमानन्द के लिए

षट्साधना में और तीन मास शेष थे। उन्होंने यहीं पर उसे पूरा किया।

षट्साधना का उद्देश्य

शरीर को योगसाधना के उपयुक्त बनाने के लिए सर्वप्रथम षट्साधना आवश्यक है जिससे कि शरीर साधना का कष्ट सहन कर सके और वायु धारण कर सके। षट्साधना से शरीर रस और श्लेष्मा रहित होकर योग के दूसरे चरण की साधना के उपयुक्त होता है। षट्साधना से अन्नमय कोष की क्रिया को रोध कर प्राणमय कोष पर अधिकार प्राप्त किया जाता है। इस साधना के बाद प्राणायाम की साधना आरम्भ होती है। यदि शरीर रस और श्लेष्मा से पूर्ण रहता है, तो प्राणायाम के समय जो वायु ग्रहण की जाती है वह शरीर में सर्वत्र संचरित नहीं हो पाती है। इसलिए वायु शीघ्र ही बाहर निकलने की चेष्टा करती है, क्योंकि साधक के शरीर में वायु को धारण करने का उपयोगी स्थान नहीं मिल पाता है। फेफड़े और वायु धारण करने वाले दूसरे कोष श्लेष्मा से आवृत रहने के कारण, यद्यपि साधक वायु धारण करता है और वह वायु शरीर में सर्वत्र प्रवेश करती है, परन्तु वहां टिक न पाने के कारण बाहर निकल जाती है। यदि षट्साधना किए विना वायु धारण की जाए, तो अन्नमय कोष की क्रिया रुद्ध नहीं हो पाती है। अतः अन्नमय कोष में बाधा उत्पन्न करती है जिसके परिणामस्वरूप शरीर के सभी सुख-दुःख का प्रभाव दूसरे कोषों पर पड़ता है। इससे योग की परवर्ती साधना-क्रियाएं करना असाध्य हो जाता है।

प्राणायाम साधना

निगमानन्द ने उपर्युक्त षट्साधना एक वर्ष के भीतर पूरी कर ली थी। इससे वे प्राणायाम साधना से प्राणमय कोष की क्रिया को संयत और नियंत्रित कर सके। प्राणायाम साधना के समय बहुत ही पौष्टिक खाद्य की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार अपनी संतान का पालन-पोषण किया जाता है ठीक वैसे ही यज्ञेश्वर बाबू की पत्नी, सरयू देवी

निगमानन्द को जिस समय जिस प्रकार के भोजन की आवश्यकता होती थी, उस समय उसी प्रकार का भोजन वे स्वयं अपने हाथ से खिला देती थीं। इस प्रकार से कुछ दिनों तक प्राणायाम-साधना करने के बाद निगमानन्द प्राणमय कोष की क्रिया का रोधन कर सके।

धारणा और ध्यान

प्राणायाम और प्रत्याहार से वायु के साथ साम्य स्थापित होने के परिणामस्वरूप मन की चंचलता दूर हो गई, क्योंकि वायु के साथ मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। वायु चंचल होने पर मन भी चंचल हो जाता है।

वायु से साम्य स्थापित हो जाने के बाद निगमानन्द के मन की संकल्प और विकल्प जन्य चंचलताएं दूर हो गई और मन स्थिर हो गया। उसके बाद राजयोग के तीसरे चरण के रूप में उन्होंने धारणा और ध्यान की साधना आरम्भ की। ध्यान से मनोमय कोष पर विजय प्राप्त की जाती है। इसमें बाह्य सहायता के लिए एक सहायक की आवश्यकता होती है।

धारणा जब प्रगाढ़ हो जाती है तो उसे ध्यान कहते हैं और ध्यान की परिपक्व अवस्था ही समाधि है। ध्यान के समय कब समाधि लग जाएगी, यह निश्चित नहीं है। जब तक समाधि का स्वरूप ज्ञात नहीं होता तब तक साधक के मन में एक प्रकार का भय बना रहता है। विशेषकर गुरु के पास न रहने पर यह भय बना रहता है कि यदि समाधि न टूटे तो क्या होगा, इसलिए साधक को सहायता करने वाले एक चेले की आवश्यकता होती है। सरयू देवी ने निगमानन्द के चेले का कार्य सम्पन्न किया। निगमानन्द ने उन्हें उनके कर्त्तव्य के सम्बन्ध में उपदेश देकर कहा, "यदि मैं ध्यान करते-करते समाधि में लीन हो जाऊं, तो तुम्हें पहले दिन चौबीस घंटे के भीतर मेरी बाह्य चेतना लौटाने की चेष्टा करनी होगी। आसन पर बैठे रहने के बावजूद मेरा शरीर मुर्दा जैसा रहेगा जिससे उसमें बाह्य चेतना का कोई भी लक्षण नहीं दिखाई देगा। परन्तु भीतर अन्तः सलिला फल्गु नदी की तरह चेतना रहेगी।

पहले कंधे पर देशी घी की मालिश करोगी, फिर दांत खोलने की चेष्टा करोगी। दांत खोलने के बाद जीभ देखनी होगी। वह अपने स्थान से हट कर तालु के द्वार पर रुकी हुई होगी। जीभ को असली चाँदी के चिमटे से धीरे-धीरे खींच कर उस पर घी की मालिश कर उसे स्वाभाविक अवस्था में लाना होगा। उसके बाद साफ कपड़े की बाती बनाकर उससे मुझे दूध पिलाना होगा। यह सब काम बहुत ही साहस और धैर्य के साथ करने से मेरा वाह्य ज्ञान लौट आएगा।"

संप्रज्ञात समाधि

यौगिक क्रियाओं के बहुत सुनिश्चित नियम हैं कि एक क्रिया के फलवती हो जाने पर उसकी अगली क्रिया भी सिद्ध होगी। यह सब अपने अधीन है। इसके लिए किसी की कृपा पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। योग साधक अपने आप जान सकते हैं कि किस समय योग-समाधि आ जाएगी। निगमानन्द को प्रत्यक्ष ज्ञात हुआ कि मूलाधार में स्थित कुल-कुण्डलिनी शक्ति मेरुदण्ड के भीतर होकर किस प्रकार धीरे-धीरे ऊपर उठ रही है। कुण्डलिनी के उर्ध्वगमन और अधोगमन के समय को संप्रज्ञात समाधि कहते हैं। कुण्डलिनी एक के बाद एक पद्म को पार करते हुए ऊपर उठने से एक-एक जगत का विकास होता है। परन्तु यह चरम अवस्था नहीं है। चरम अवस्था में पहुंचने से पहले साधक के सामने अष्ट ऐश्वर्य आदि खुल जाते हैं। साधक को दिव्य दर्शन, दिव्य श्रवण और विद्युत गति आदि प्राप्त होती है। इन सब लक्षणों को देखकर निगमानन्द समझ गए कि शीघ्र ही उनका सर्वाभीष्ट सिद्ध हो जाएगा। इसलिए समाधि अवस्था के कर्त्तव्य के विषय में उन्होंने सरयू देवी को पहले ही उपदेश दिए।

त्रिकूट स्थान

योगी जन आत्मशक्ति पर निर्भर रह कर वायु की सहायता से त्रिकूट स्थान तक जा सकते हैं। परन्तु इस त्रिकूट स्थान पर पहुंचते ही गुरु की आवश्यकता होती है। निगमानन्द ने संप्रज्ञात समाधि से क्रमशः

विज्ञानमय कोष को पार किया और वे इस कोष की क्रिया को रोध कर आनन्दमय कोष के तोरण द्वार तक पहुंच गए।

निरालंबपुरी

बिना गुरु की कृपा के इस तोरण द्वार को पार नहीं किया जा सकता। श्रीगुरु की कृपा से निगमानन्द त्रिकूट स्थान को पार कर निरालंबपुरी में परमात्मा में लीन हो गए। उन्हें असंप्रज्ञात समाधि प्राप्त हुई। लगभग चौबीस घंटे बीत गए, तथापि संन्यासी की चेतना लौटने का कोई लक्षण नहीं दिखाई दिया। इससे सरयू देवी चिंतित हो उठीं। उन्होंने देखा कि निगमानन्द का श्वास चलना बन्द हो गया। बाहर से मृत्यु के सभी लक्षण दिखाई देने पर भी वे बैठे हैं। चौबीस घंटे बीत जाने के बाद सरयू देवी निगमानन्द के उपदेशानुसार उनकी बाह्य चेतना लौटा लाईं।

समाधि अवस्था में निगमानन्द को अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ और चौबीस घंटे के बाद उनकी बाह्य चेतना लौट आई। आनन्द सागर में निमज्जन के पश्चात लौटने पर उन्हें यह जगत एकदम नया महसूस हुआ। वे दूसरे उच्च भावों को भूल गए। उनका केवल आनन्दमय भाव ही बचा रहा। समाधि से प्रथम परिचय के पश्चात निगमानन्द अब अधिक साहसी बन गए। दूसरी बार समाधि में बैठने से पहले उन्होंने सरयू देवी को तीन दिन के बाद बाह्य ज्ञान लौटा लाने का आदेश दिया और फिर वे क्षण भर में ही सहस्रार स्थित निरालंबपुरी की चित्त-सत्ता में डूब गए। उनके उपदेशानुसार तीन दिन के बाद उनकी बाह्य चेतना लौटाई गई। निगमानन्द को समाधि टूटने के बाद दस दिन तक कमजोरी महसूस हुई।

निगमानन्द ने तीसरी बार समाधि में बैठने से पहले सात दिन के बाद बाह्य चेतना लौटाने के लिए आदेश दिया और इसके बाद वे समाधि में बैठे। इस बार समाधि अवस्था में वे ब्रह्माण्ड की सप्त भूमि के प्रत्येक लोक में एक-एक दिन रहे और प्रत्येक लोक की पूरी

जानकारी प्राप्त की। शरीर में स्थित सूक्ष्म चक्रों के साथ स्थूल लोक का बहुत घनिष्ठ संबंध है। निगमानन्द ने प्रत्येक चक्र में ठहर कर प्रत्येक लोक के सृष्टि-वैचित्र्य को देखा और अंत में वे ब्रह्म लोक पहुंचे। सात दिन बीत गए, परन्तु समाधि नहीं टूटी। इससे सरयू देवी को बड़ी चिंता हो गई। उन्होंने बाह्य चेतना लौटाने के अनेक उपाय किए, पर किसी से कोई लाभ नहीं हुआ। यज्ञेश्वर बाबू को भी कोई उपाय नहीं सूझा। इसलिए उन्होंने एक महिला डाक्टर को बुलाया और उनकी सहायता से बड़ी मुश्किल से संन्यासी की चेतना लौटी। राजयोग की चरम अवस्था में परमात्मा के दर्शन प्राप्त होते हैं, परमात्मा के साथ योग स्थापित होता है अथवा आत्मा का परमात्मा में लय होता है। इस अवस्था को सहज रूप से नहीं समझा जा सकता। केवल असंप्रज्ञात समाधि से ही इसकी उपलब्धि की जा सकती है।

इस समाधि का सुख प्राप्त करने के बाद निगमानन्द ने लगभग सारा समय एक तरह से समाधि में ही विताया। जब इच्छा होती, वे समाधि में निमग्न हो जाते थे। परन्तु लोगों के विचलित होने की आशंका से वे शीघ्र ही निम्न लोक में उतर आते थे।

निर्विकल्प समाधि में आरूढ़ होना

निगमानन्द ने धीरे धीरे समाधि-अवस्था को अपने नियंत्रण में कर लिया। सामान्य स्थिर होकर बैठते ही कुण्डलिनी स्वाभाविक नियम से ऊपर उठने लगती और चाहने मात्र से ही वे उसे अपने स्थान में लौटा लाने में समर्थ हो गए। तत्पश्चात निगमानन्द लोगों का संग त्याग कर बीच-बीच में कामाख्या पहाड़ घूमने चले आते थे। इस दौरान कामाख्या मंदिर में नित्यानन्द स्वामी नामक कोई साधु रहते थे। उनके साथ निगमानन्द की अच्छी मित्रता हो गई। निगमानन्द ने उन्हें बताया कि मैं वेदान्त की निर्विकल्प समाधि पर आरूढ़ होना चाहता हूं। इस पर नित्यानन्द स्वामी ने उन्हें चेतावनी दी कि इसमें खतरा है, क्योंकि इस समाधि के बाद शायद ही कोई लौटता हो। उनकी बात पर ध्यान दिए बिना

निगमानन्द ने कामाख्या पहाड़ पर एक निर्जन स्थान को चुना । एक दिन वे शीघ्र ही भोजन करके किसी को कुछ बताए बिना अकेले उस स्थान पर पहुंचे और उन्होंने सोचा, "मुझे ज्ञान की साधना करते हुए अनेक दिन बीत गए हैं, पर कभी भी निर्विकल्प समाधि का आनन्द नहीं लिया, यह सोच कर उन्होंने जीवन का मोह छोड़ दिया और वे ध्यानस्थ हो गए ।

निर्विकल्प समाधि की प्रक्रिया

ध्यान में बैठ कर निगमानन्द अहंत्व का प्रसार करने लगे । पहले उन्होंने मन ही मन सोचा कि मैं यह शरीर हूं । उसके बाद उन्होंने जैसे ही सोचा कि मैं कामाख्या पहाड़, उसके बाद असम प्रांत और उसके बाद समूचा भारतवर्ष हूं, तो भारत के नदी, वन, पहाड़ आदि सब कुछ उन्हें दिखाई दिए । धीरे-धीरे उनका मन ऊर्ध्व जगत में उठने लगा । उस समय निगमानन्द ने मद्धिम ज्योति वाला एक आलोक देखा । ऊपर उठने के साथ-साथ उन्हें ऐसा लगा मानो एक के बाद दूसरा द्वार खुलता जा रहा है और वे धीरे-धीरे ऊपर उठते जा रहे हैं । अन्त में वे सप्तलोक पार कर एक ज्योतिर्मण्डल में पहुंचे । इस ज्योतिर्मण्डल में निगमानन्द ने स्वयं को सर्वत्र महसूस किया । इसके बाद उन्होंने जिस आनन्द का अनुभव किया, वह वर्णनातीत है ।

गुरु भाव का संचार

इस अवस्था में कुछ देर तक रहने के बाद अचानक उनके मन में एक दृढ़ संकल्प जाग उठा कि "मैं गुरु हूं" । अचानक वह अनन्त ज्योतिपुंज वृत्त की परिधि के मध्य में स्थित बिन्दु के आकार में बदल गया । उन्होंने उस बिन्दु के भीतर स्वयं को गुरु के रूप में अनुभव किया । उन में इस गुरुभाव के अतिरिक्त किसी दूसरे भाव की सत्ता नहीं रही ।

अवतरण

कुछ समय बाद निगमानन्द ने घोर अन्धकार देखा । वे इस अन्धकार क्षेत्र में कैसे आए, किस प्रकार यहाँ से बाहर निकलेंगे, उन्हें उस का सही सही पता नहीं चला ।

कुछ देर बाद उन्होंने देखा कि उस अन्धकार क्षेत्र के भीतर जाल की तरह छिद्र वाली एक ज्योतिर्मय वस्तु दिखाई दे रही है। जैसे ही निगमानन्द की दृष्टि उस जाल के मध्य भाग में स्थित छिद्र पर पड़ी, वह धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। निगमानन्द उस छिद्र के रास्ते उतर आए। इस समय उन्हें उदरशूल की तरह भीषण पीड़ा महसूस हुई। इस प्रकार वे क्रमशः निर्गण से सगुण अवस्था में लौट आए। उसके बाद उन्हें अपने सामने तप, सत्य आदि लोक दिखाई दिए। अन्त में भूलोक में पहुंचने पर निगमानन्द को समूची पृथ्वी दिखाई दी। उसके बाद भारत दिखाई दिया। वे दूसरे बड़े-बड़े देश और महाद्वीप भी देख पाए। बाद में असम प्रान्त और अन्त में कामाख्या पहाड़ और पहाड़ के पेड़-पौधे दिखाई पड़े। इस प्रकार देखते-देखते उनकी दृष्टि अपने शरीर पर पड़ी। निगमानन्द ने अचानक अपने शरीर में प्रवेश किया। परन्तु उन्हें इस बात का पता नहीं चला कि उन्होंने किस समय अपने शरीर में प्रवेश किया। शरीर से निकलते समय भी कैसे निकले थे, उन्हें उसका भी पता नहीं चल पाया था। शरीर के भीतर प्रवेश करते ही उनकी बाह्य चेतना लौट आई। उनके मन में "मैं गुरु हूं", यह प्रबल भाव जाग उठा।

निगमानन्द असीम आनन्द के साथ यज्ञेश्वर बाबू के घर लौट आए। संन्यासी को पाकर यज्ञेश्वर बाबू विशेष आनन्दित हुए। इस दौरान निगमानन्द का मुखमण्डल अपूर्व ज्योति से दीप्त हो गया था। उनकी आंखों से हमेशा एक दिव्य ज्योति निकलती रहती थी। इस चमक को दूसरे लोग भी देख सकते थे।

पांचवां अध्याय

गुरु निगमानन्द का कुम्भ मेले में जाना

मनोरथ पूरा हो जाने पर निगमानन्द नूतन जगत के नूतन आलोक से प्रकाशित हुए। उसके बाद उन्होंने गौहाटी में और अधिक समय ठहरना उचित नहीं समझा। इसलिए उन्होंने गौहाटी से बंगाल होकर कुंभ मेले में जाने का निश्चय किया।

यज्ञेश्वर बाबू और सरयू देवी ने बहुत दुःखी मन से उन्हें विदा दी और अनुरोध किया कि कुंभ मेले से पुनः गौहाटी आवें और सम्भव हो तो अपने संन्यासी गुरु को कामाख्या का दर्शन कराने साथ लावें। निगमानन्द अपने गुरुदेव को साथ लाने का वचन देकर वहां से पुष्कर की ओर रवाना हुए। उस समय प्रयाग में कुंभ मेले का आयोजन हो रहा था। अतः निगमानन्द पहले इलाहाबाद पहुंचे। यह १३१२ बंगाब्द (सन १६०६ ई०) की बात है। दो-एक दिन बाद उन्हें पता चला कि उनके गुरु सच्चिदानन्द सरस्वती कुंभ मेले में आकर श्रृंगेरी मठ के महन्त शंकराचार्य के साथ रह रहे हैं। श्रीगुरु का दर्शन करने की उनकी बड़ी इच्छा हुई। निगमानन्द गुरुदेव से भेंट करने निकल पड़े।

परमहंस पद से अलंकृत होना

निगमानन्द ने श्रृंगेरी मठ के महन्त के आसन के पास पहुंच कर देखा कि महन्त महाराज एक बहुत बड़े सिंहासन पर बैठे हुए हैं और

उनके चारों ओर इस मठ के लगभग सौ से अधिक साधु बैठे हैं। स्वामी सच्चिदानन्द उनके बीच बैठे हैं। निगमानन्द ने सबसे पहले अपने गुरु, स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती को प्रणाम किया और उसके बाद महन्त महाराज और दूसरे साधुओं को प्रणाम किया। इस पर साधुजन तर्क-वितर्क करने लगे। आदि शंकर द्वारा स्थापित मठ के शीर्ष स्थान पर बैठने वाले महन्त को जगद्‌गुरु कहा जाता है। इस तर्क-वितर्क के मूल में यही बात थी कि निगमानन्द ने सर्वप्रथम उन महन्त अर्थात् जगद्‌गुरु को प्रणाम न कर सच्चिदानन्द को प्रणाम किया। जब उनसे पूछा गया कि पहले जगद्‌गुरु को प्रणाम न करने का क्या कारण है, तो उन्होंने बताया, "मेरे गुरु ही जगद्‌गुरु हैं।"

मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्‌गुरुः श्री जगद्‌गुरु;
मदात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः।

"अतः श्रृंगेरी मठ के महन्त, जगद्‌गुरु शंकराचार्य और मेरे गुरु, स्वामी सच्चिदानन्द जी के बीच कोई भेद नहीं है। यदि कोई भेद रहेगा, तो अनवस्था दोष उत्पन्न होकर अद्वैतवाद नष्ट हो जाएगा। यदि मैं इस बात को स्वीकार करूं कि मेरे गुरु से कोई बड़ा है, तो मुझे यह भी मानना पड़ेगा कि कोई और उनसे भी बड़ा है। यही अनवस्था दोष है। जिस दिन से जगद्‌गुरु ने मेरे गुरु पर गुरुभार सौंपा है उस दिन से मेरे गुरु और जगद्‌गुरु अभिन्न हैं।"

निगमानन्द का तर्क सुनकर महन्त महाराज ने कहा, "बच्चा ठीक बात बोलता है।" उसके बाद महन्त महाराज ने निगमानन्द को अपने पास बुलाया और उनसे पूछा, "अच्छा, तुमने बाहर पहाड़, नदी, समुद्र सब कुछ देखा ?" निगमानन्द ने उत्तर दिया, "जी हां, सब कुछ देखा।" महन्त ने फिर पूछा, "और क्या देखा ? अच्छा, इस कुंभ मेले जैसा कोई और स्थान देखा है ?"

निगमानन्द ने उत्तर दिया, "**त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।** समाधि में सब कुछ देख लिया। मैंने समाधि में कुंभ मेले

जैसा एक और स्थान इस शरीर के भीतर देखा है।" महन्त ने पूछा, "अच्छा एक वृक्ष पर दो पक्षी देखे हैं ?"* निगमानन्द ने कहा, "जी नहीं, एक वृक्ष पर मात्र एक ही पक्षी देखा है।" महन्त ने पूछा, "तब जो प्रतीति होती है कि एक वृक्ष पर दो पक्षी हैं, उसके क्या कारण है?" इसके उत्तर में निगमानन्द ने कहा, "असली पक्षी वृक्ष पर स्थिर बैठा हुआ है। वृक्ष के नीचे पानी का कुण्ड रखा हुआ है जिस पर ऊपर बैठने वाले पक्षी की छाया पड़ी हुई है। नीचे रखे कुण्ड के पानी के हिलने के कारण पक्षी की छाया जड़ होने पर भी ऐसा लगता है कि वह गतिशील है। ऊपर का पक्षी निश्चल बैठा है। मन निम्नाभिमुखी होने के कारण उसकी दृष्टि से नीचे का पक्षी ही दिखाई देता है, परन्तु जिस दिन मन निम्नाभिमुखी न होकर ऊर्ध्वमुखी हो जाएगा, उस दिन उसे पता चलेगा कि असली पक्षी तो ऊपर बैठा हुआ है। उसकी छाया कुण्ड में स्वच्छ पानी पर पड़ने के कारण ऐसा लगता है कि दो पक्षी हैं।"

निगमानन्द के उत्तर से जगद्गुरु शंकराचार्य बहुत खुश हुए। उन्होंने सच्चिदानन्द को बुलाकर उनसे कहा, "तुम्हारा शिष्य तो परमहंस बन चुका है, उसे अभी तक दण्ड क्यों पकड़ा रखा है ?" सच्चिदानन्द ने कहा, "वह जब से दण्ड लेकर गया है तब से इतने दिनों बाद आज ही मुझसे मिला है।" उसके बाद स्वामी सच्चिदानन्द खड़े हुए और उन्होंने साधुमण्डली की अनुमति मांगते हुए कहा, "मैं अपने चेले को परमहंस की उपाधि देना चाहता हूं, आप लोग कृपया इसकी अनुमति दीजिये।" सभी ने बड़े खुश होकर इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। उस दिन से स्वामी निगमानन्द का नाम **परिव्राजकाचार्य परमहंस श्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती** पड़ा।

गुरु दक्षिणा

गुरु सच्चिदानन्द से योग-साधना के लिए बिदाई लेकर जाने के बाद साधक निगमानन्द को गुरु का यह पहला दर्शन हुआ था।

---

*वृक्ष—शरीर, दो पक्षी—जीवात्मा और परमात्मा।

था। निगमानन्द अब पहले जैसे नहीं थे। वे इस समय गुरु के रूप में अधिष्ठित हो चुके थे। उनका मुखमण्डल ब्रह्मज्योति से उद्भासित और शरीर योगाग्निमय था। निगमानन्द के ऐसे गम्भीर और अद्भुत शांत भाव को देखकर सच्चिदानन्द आश्चर्य में पड़ गए। उन्होंने निगमानन्द को एक निर्जन स्थान पर बुलाकर कहा, "अब तुम्हें गुरु दक्षिणा देनी होगी।"

निगमानन्द—क्या दूं, आप आदेश दें।

सच्चिदानन्द—तुम्हें मेरा गुरुभार वहन करना होगा और पुष्कर की गद्दी पर बैठना होगा।

यह सुनकर निगमानन्द ने कहा कि मैं आपके पहले आदेश का पालन करने के लिए सहमत हूं। परन्तु पुष्कर की गद्दी पर बैठने से मुझ से कोई कार्य नहीं होगा। जब संसार की सभी गद्दियाँ आपकी हैं, तो जिस गद्दी पर बैठने से जगत के विशेष कार्य हो सकें मुझे उसी गद्दी पर बैठना चाहिए। उन्होंने अपने दूसरे गुरुभाई स्वामी ब्रह्मानन्द को पुष्कर की गद्दी पर बिठाकर स्वयं के लिए बंगाल का गुरु बनाने की प्रार्थना की। यह सुनकर सच्चिदानन्द ने कहा, "तब चल, मैं तुझे बंगाल में गुरु के पद पर अधिष्ठापित कर आऊंगा।" इसके बाद दोनों पुष्कर से रवाना होकर यज्ञेश्वर बाबू के घर पहुंचे।

गुरु के पद पर निगमानन्द

सच्चिदानन्द जी और निगमानन्द को पाकर यज्ञेश्वर बाबू स्वयं को भाग्यवान समझने लगे। कुछ दिन वहाँ ठहरने के बाद स्वामी सच्चिदानन्द कामाख्या के दर्शन के लिए व्यग्र हो उठे। यज्ञेश्वर बाबू ने सच्चिदानन्द जी को विदा करते समय दीक्षा देने की प्रार्थना की। सच्चिदानन्द जी ने कहा, "मुझ से क्या दीक्षा लोगे, इस निगमानन्द से लो। यह मुझ से बहुत बड़ा हो गया है।" इसके बाद यज्ञेश्वर बाबू और उनकी पत्नी सरयू देवी ने निगमानन्द जी से दीक्षा ली। ये दोनों पति-

पत्नी स्वामी निगमानन्द जी के पहले शिष्य बने। उसके बाद सच्चिदानन्द जी कामाख्या दर्शन के लिए चले गए।

यहां पर प्रभुश्री का वैशिष्ट्य दीखता है। वे "मैं गुरु हूं", का भाव लेकर निर्विकल्प समाधि से उतरे थे। बाद में हम देखेंगे कि प्रभुश्री को गारोहिल योगाश्रम में गुरुआई करने के लिए किस प्रकार प्रत्यक्ष आदेश प्राप्त हुआ। फिर भी वे शास्त्र की मर्यादा रखकर नराकार परंब्रह्म रूपी अपने गुरु सच्चिदानन्द जी की बिना अनुमति के किसी शिष्य को दीक्षा देने में व्रती नहीं हुए थे।

●

छठा अध्याय

भाव साधना

देवी अन्नपूर्णा माहात्म्य

योग साधना में निर्विकल्प भूमि पर आरूढ़ होने के बाद परमहंस निगमानन्द के मन में कुछ समय के लिए एक प्रकार का अभिमान जाग उठा। वे तर्क के बल पर साकारवाद का खण्डन करते हुए निराकारवाद का प्रतिपादन करने लगे। वे अनेक साकारवादी विद्वानों को पराजित करने के पश्चात विद्यानगरी काशी पहुंचे। निर्विकल्प समाधि के बाद स्वामी निगमानन्द के सामने "ब्रह्म" के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। काशी में पहुंच कर उन्होंने देखा कि एक आचारशुद्ध ब्राह्मण आंखें मूंद शिवलिंग की पूजा कर रहा है। स्वामी निगमानन्द जी ने मंदिर में प्रवेश किया और वे शिवलिंग को बाहों में भरकर बैठ गए। जब ब्राह्मण ने आंखें खोलीं और स्वामी जी को इस स्थिति में देखा, तो शिव-लिंग अपवित्र कर दिया, यह कहते हुए वह ब्राह्मण उत्तेजित हो उठा। स्वामी निगमानन्द की दृष्टि में तो जगत ब्रह्ममय था। उनकी धारणा थी कि शिव कभी कहीं अपवित्र नहीं होते। ब्राह्मण की बात सुनकर निगमानन्द ने कहा, "शिव मंगलमय तथा सदा पवित्र हैं, परन्तु मैं काशी में देख रहा हूं कि शिव भी अपवित्र होते हैं।" ब्राह्मण को जब निगमानन्द जी के परमहंसत्व का ज्ञान हुआ तो वह बहुत लज्जित हुआ।

वहां से निकलकर परमहंस निगमानन्द ने देखा रास्ते पर अनेक भिखारी जूठी पत्तलों को चाट रहे हैं। निगमानन्द को यह देख

कर विस्मय हुआ कि माँ अन्नपूर्णा के धाम काशी में भी लोग ऐसे भूखे रहते हैं। किसी विद्वान व्यक्ति से उन्हें पता चला कि काशी में कोई आगंतुक भूखा नहीं रहता। स्वामी निगमानन्द ने सोचा कि मैं जरा परख कर देखूं कि अन्नपूर्णा किस प्रकार किसी आगंतुक को भूखा नहीं रहने देतीं। उन्होंने दिन भर कुछ नहीं खाया। सायंकाल वे दशाश्वमेध घाट पर जाकर बैठ गए। इसी समय मैले कपड़े पहने एक बुढ़िया उनके पास आई और उनसे कहा, "बाबा, मैं गंगा में स्नान करूंगी। तब तक मैं अपनी यह पोटली तुम्हारे पास रखे जाती हूं। तुम थोड़ा ध्यान रखना।" कुछ देर बाद निगमानन्द समाधिस्थ हो गए। रात के लगभग दस बजे उनकी समाधि टूटी। उन्होंने देखा बुढ़िया लौट कर नहीं आई। पोटली वैसी ही रखी हुई है। यह देख कर उन्हें विस्मय हुआ। कुछ देर और प्रतीक्षा के बाद उन्होंने पोटली खोली। जब उन्होंने देखा कि उसमें वर्द्धमान के आठ सीता भोग हैं, तो उनका विस्मय और बढ़ गया। उन्हें इस बात पर जरा भी संदेह नहीं रहा कि बुढ़िया गलती से पोटली छोड़ गई हैं। निगमानन्द समझ गए कि यह सब माँ अन्नपूर्णा की छलना है। वे सारे दिन भूखे तो थे ही। इसलिए उन्होंने उन सीता भोगों को खाकर अपनी भूख मिटाई।

अपूर्णता का बोध

निगमानन्द के मन में इस बात का अभिमान बना रहा कि माँ अन्नपूर्णा ने छद्मवेश में खाना रख कर व्यक्त रूप से खाने के लिए नहीं कहा है। मन में ऐसा विचार रख कर वे लौटे। रात अधिक हो जाने के कारण वे अपने निर्दिष्ट डेरे तक नहीं जा सके। इसलिए उन्होंने चमगादड़ों के मल से भरे एक टूटे-फूटे मकान में रात बिताई। रात को सोते समय उन्होंने सपने में उसी बुढ़िया को देखा। बुढ़िया कह रही हैं, "अरे, तूने सीता भोग खाए? काशी में कोई भूखा नहीं रहता है। इसलिए मैंने तुझे सीता भोग दिए थे। तू कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका। भगवान सर्वशक्तिमान अखण्ड-मण्डलाकार हैं—यह

तो वैदान्तिक सत्य है। वेदान्त में इस बात का उल्लेख है कि चन्द्र, सूर्य आदि के भी अधिष्ठाता देवता हैं। तब काशी में क्यों नहीं होंगे ?" निगमानन्द ने पूछा, "माँ, तुम कौन हो ?" बुढ़िया ने कहा, "मैं काशी की अधिष्ठात्री देवी, अन्नपूर्णा हूं।"

निगमानन्द ने पूछा, "तब तुमने मुझे इस वेश में क्यों दर्शन दिए। अपने वास्तविक रूप में दर्शन दो।"

इसके उत्तर में बुढ़िया ने कहा, "तुझे तो देवी-देवताओं पर विश्वास नहीं है। इसलिए मैंने बुढ़िया के रूप में दर्शन दिए। भगवान सर्व-शक्तिमान हैं। देवी-देवता उनकी भिन्न-भिन्न शक्तियों के परिचायक हैं। जो विश्वरूप हैं, जिनकी शक्ति से यह विश्व परिचालित होता है, क्या उनमें एक बुढ़िया का रूप धारण करने की सामर्थ्य नहीं है ?"

यह कह कर माँ अन्नपूर्णा ने निगमानन्द को भुवनमोहिनी देवी माँ अन्नपूर्णा के रूप में दर्शन दिए। देवी के अंग-सौरभ से घर महक उठा। स्वामी निगमानन्द ने प्रत्यक्ष देखा कि अन्नपूर्णा के शरीर में ब्रह्म साकार होकर परिलक्षित हो रहे हैं। अन्नपूर्णा ने पुनः कहा, "वत्स, जो निराकार निर्गुण ब्रह्म हैं, वे ही साकार और सगुण होकर लीला कर रहे हैं। तू उनकी साकार मूर्ति को इतना तुच्छ क्यों समझ रहा है ? तूने परमब्रह्म का ज्ञान प्राप्त किया है परन्तु तू तो अभी तक अवर ब्रह्म* का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका। भाव या लीलाजगत अभी तक तुझे ज्ञात नहीं है। अतः तू अपूर्ण है। तू भावकी साधना कर, सब कुछ स्पष्ट हो जाएगा।" इतना कह कर देवी अदृश्य हो गईं। निगमानन्द का स्वप्न टूट गया। इसके साथ ही उनके मन में अपूर्णता का भाव जागृत होने से उन्हें व्याकुलता होने लगी। उन्होंने सोचा, "कहां, मैं तो पूर्ण नहीं हूं, अभी तक तो मैं लीला रहस्य का

---

* अवर ब्रह्म ज्ञान संबंधी विस्तृत विवरण सारस्वत मठ से प्रकाशित "जीवनी और वाणी" पुस्तक में दिया गया है।

ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका।" सुबह होने पर वे अन्नपूर्णा के मंदिर में गए और उन्होंने देवी के दर्शन किए। देवी के ज्योतिर्मय रूप को देख कर उनका मन और व्याकुल हो उठा। पहले जिस लीला जगत के प्रति उनमें अविश्वास था, उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति होने पर उन्होंने समझा कि यह तत्त्व मुझमें प्रकाशित नहीं हुआ है। इसलिए मैं अभी तक पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका।

गौरी माँ

निगमानन्द कुछ दिन तक भगवत आराधना का पथ जानने का उपाय ढूंढ़ते रहे। परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। इस दौरान उन्हें गौरी माँ का स्मरण हो आया। वे तत्काल पैदल चलते हुए मसूरी के रास्ते पहाड़ों से घिरे गौरी माँ के आश्रम जा पहुंचे।

पाठकों को स्मरण होगा कि निगमानन्द दो वर्ष पहले स्वामी सच्चिदानन्द के साथ गौरी माँ के आश्रम में गए थे। गौरी माँ जाने-माने महापुरुषों के साथ भी भेंट नहीं करती थीं। परन्तु सच्चिदानन्द जी का उनसे पूर्व परिचय था और निगमानन्द उनके साथ वहां गए थे। इसलिए वे गौरी माँ से भेंट कर सके थे। गौरी मां की सेविकाएं अलग रहती हैं। आश्रम में पहुंच कर निगमानन्द ने भीतर प्रवेश की अनुमति मांगी, परन्तु पहरेदार ने पहले दिन उनकी बात की ओर ध्यान नहीं दिया। अगले दिन पुनः कहने पर पहरेदार ने गौरी माँ को उनके आने के बारे में अवगत कराया। गौरी माँ ने अनुमति दे दी। गौरी माँ कश्मीर देश की ब्राह्मण कन्या हैं। वे अनुपम सुन्दरी और योगविभूति सम्पन्न भी हैं। उनकी आयु चार सौ वर्ष होने पर भी उन्हें देखने से ऐसा लगता है कि उनकी आयु मात्र सत्रह वर्ष की है। वे रमणीक पर्वत घाटी में विस्तृत आश्रम परिसर के भीतर लता-पुष्पों से आच्छादित कुंज में निर्वस्त्र रहती हैं। सिद्ध महात्माओं के अतिरिक्त कोई दूसरा उस कुंज में प्रवेश नहीं कर सकता। वे कपड़े पहन कर दूसरे महापुरुषों को बाहर आकर दर्शन देती हैं। देवी के असाधारण शास्त्र-

ज्ञान और योग विभूति से चमत्कृत होना पड़ता है। परमहंस निगमानन्द उनके मुंह से विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में प्रकाशित आधुनिक लेख और कविताओं की समालोचना सुनकर अवाक् रह गए।

गौरी माँ द्वारा स्वागत

गौरी मां ने संध्या के समय निगमानन्द को बुला भेजा और उन्हें अपने निवास स्थान के पास स्थित कक्ष में ठहरने का निर्देश दिया। संध्या बीत जाने के बाद श्यामलवर्ण के तृणों से आच्छादित उस समतल भूमि पर न जाने किसकी इच्छा से एक सुसज्जित कक्ष आविर्भूत हुआ। ऐसा लगा जैसे किसी मायावी के मायादंड के स्पर्श से अचानक एक बहुत बड़ा आश्चर्यजनक कार्य हो गया हो। अचानक वह सुसज्जित कक्ष आलोक से दीप्त हो उठा। कक्ष के भीतरी भाग के नैसर्गिक सौरभ से दसों दिशाएं महक उठीं। निगमानन्द को माया से रचित उस कक्ष में बुलाया गया। निगमानन्द समझ गए कि उनके स्वागत के लिए गौरी माँ ने योग-ऐश्वर्य के बल पर उस कक्ष की रचना की है। निगमानन्द ने उस कक्ष के भीतर प्रवेश किया। उन्हें ऐसा लगा मानो वह कक्ष ऐसे अभूतपूर्व द्रव्यों से परिपूर्ण है जो इस नश्वर जगत में नहीं हैं। कमरे की दीवारों पर रंग-बिरंगे फूल खिले हुए हैं जिनमें गुंजन करते भौंरे रस-पान कर रहे हैं। सुन्दर विद्युत की आभा वाले प्रभापूर्ण बत्ती के प्रकाश से कक्ष आलोकित हो रहा है। कमरे के मध्य भाग में मखमली बिस्तर था। गौरी मां ने निगमानन्द को उस शय्या पर बैठने को कहा और स्वयं खड़ी रहीं। जैसे कोई प्रेमिका लंबे विरह के बाद अपने प्रियजन के आगमन की बाट जोहती हुई द्वार पर प्रतीक्षा करती है, माँ गौरी ठीक वैसे ही निगमानन्द की प्रतीक्षा में खड़ी रहीं। परन्तु यह क्या ? जिस गौरी माँ की कृपा प्राप्त कर त्रिकालज्ञ महापुरुष भी स्वयं को धन्य समझते हैं और माँ के नाम से सम्बोधित करते हैं, वही गौरी माँ निगमानन्द का आज यह कैसा स्वागत कर रही हैं ! कक्ष की नीरवता को भंग करते हुए निगमानन्द ने

कहा, "अपने गुरु सच्चिदानन्द स्वामी जी के साथ आपके पास आया था। उस समय आपने उनसे कहा था, यदि मैं कभी निर्विकल्प समाधि प्राप्त करूं तो उसके बाद आपसे मिलूं।"

गौरी ने पूछा, "तुमने कौन-कौन सी साधनाएं की हैं ?"

निगमानन्द ने कहा, "घर छोड़ने से पूर्व तांत्रिक साधना में सिद्धि प्राप्त कर महाशक्ति का साक्षात किया। बाद में मैंने उसमें स्वयं को अपूर्ण पाया। इसलिए योगसाधना से असंप्रज्ञात समाधि और उसके बाद निर्विकल्प समाधि प्राप्त की।" गौरी माँ ने पूछा, "और साधना क्यों की ?" ज्ञान योग और भाव की साधना से जो कुछ जाना जाता है, उन सब तत्त्वों को अपने भीतर प्रकट करने के लिए महाशक्ति से वर क्यों नहीं मांगा अथवा बाद में उनसे इन सब तत्त्वों की जानकारी प्राप्त क्यों नहीं की ? ऐसा होता तो इतनी कठोरता का मार्ग नहीं अपनाना पड़ता। परन्तु निगमानन्द ने यह उचित नहीं समझा कि वे जिस कारण से महाशक्ति से इन सब तत्त्वों के बारे में नहीं पूछ सके, इस सबके बारे में गौरी माँ को बताएं, क्योंकि वे सब उनकी व्यक्तिगत छोटी बातें थीं। वह सब बता कर स्वयं लज्जित होने के सिवाय उन्हें और कुछ नहीं मिलता। उन्हें चुप देख कर गौरी माँ ने कहा, "भगवान को पाने के बाद कुछ भी पाना शेष नहीं रहता।" निगमानन्द ने कहा, "आप जिन्हें भगवान कहती हैं, मेरे ख्याल से वे गुणमय हैं।"

गौरी माँ ने कहा, "जहां सगुण का अन्त होता है, वहीं से निर्गुण का आरम्भ होता है। स्वयं साधना कर उनके विभिन्न तत्त्वों की जानकारी प्राप्त करने से जो यह सब जानता है, जो तत्त्वरूपी हैं, जिनके पास सब बातों की कुंजी है, क्या उन्हें स्वामी के रूप में प्राप्त कर उनके साथ घर-संसार बसाना अच्छा नहीं होगा?"

निगमानन्द ने उत्तर दिया, "हां, निश्चय ही अच्छा होगा।"

गौरी माँ ने कहा, "भगवान पत्नी के रूप में भी मिल सकते हैं। जिस प्रकार पत्नी अपने पति को प्राणों से अधिक प्यार करती है, उनकी सेवा करती है, ठीक वैसे ही निर्गुण और सगुण के संधिस्थल रूपी

भगवान यदि पत्नी के रूप में दासी बनकर सेवा करते हैं, तब क्या वह मधुर नहीं है ? क्या वह योग और वेदान्त के शुष्क ज्ञान से अधिक सरस और उत्कृष्ट नहीं है ?"

इसके उत्तर में निगमानन्द ने कहा, "निश्चय ही अच्छा है।" गौरी ने कहा, "देखो इस संसार में जितने भी जीव हैं, वे सब क्रमशः उत्कर्ष करने पर मनुष्य बने हैं। मनुष्यों में भी कितनी तरह के मनुष्य हैं। उनमें भी अन्तर है। मनुष्यत्व विकसित होकर देवत्व में परिणत हो जाता है। इस प्रकार संसार में प्राणियों के उत्कर्ष के विचार से जहाँ पर इस उत्कर्ष की चरम स्थिति है, उसे भाव लोक कहते हैं। यह भाव लोक सगुण और निर्गुण के संधिस्थल पर स्थित है। यहाँ पर दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य आदि भावों के उत्कर्ष की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है और ये सब भाव यहाँ पर मूर्त रूप धारण करते हैं। मान लो, इस संसार में हिंस्र आदि इतर जंतुओं से लेकर मनुष्यों तक जितने स्त्री जीव हैं, उनमें से उनका स्त्रीत्व निकाल कर यदि कोई मूर्ति बनाई जाए, तो उसके प्रति प्रत्येक मनुष्य के मन में स्त्री भाव के अतिरिक्त कोई दूसरा भाव पैदा नहीं होगा। ठीक वैसे ही, किसी बाघिन के भीतर जो मातृ भाव है उसकी उपलब्धि उसके शावकों के अतिरिक्त और किसी को नहीं होती है। परन्तु भाव लोक में मातृभाव मूर्त है। इसलिए इस मूर्ति को देखने पर प्रत्येक प्राणी के हृदय में मातृ भाव का उद्रेक होगा। इसी प्रकार जगत के सभी भाव वहां पर मूर्तिमान है। जो भाव नित्य लोक में प्रतिष्ठित है, इस जगत के गार्हस्थ्य धर्म में उसका आभास मिलता है या यह उसकी छाया है। इसी आदर्श पर बंगाल का भक्ति धर्म और जगत का गार्हस्थ्य धर्म आधारित है। भाव लोक में जो सूक्ष्म में है इस जगत में वह स्थूल बन कर कुछ सीमा तक विकृत हो गया है। प्रेमिक भावुकों के सामने से यह आवरण हट जाता है। जैसे कि तुम्हारे गौरांग देव थे। उन्हें क्या अभाव था ? फिर भी उन्होंने अपने स्वरुप को छिपाकर स्वयं को नित्यलोक के लीलारस में डुबा रखा था।"

गौरी के मुंह से गौरांग देव का नाम सुनकर परमहंस निगमानन्द चौंक उठे। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हुआ कि कश्मीर की ब्राह्मण

कन्या होते हुए भी गौरी गौरांग देव को जानती हैं। निगमानन्द ने गौरी मां के तर्क के मूल भाव को समझ कर कहा, "परन्तु यहाँ पर पति-पत्नी के बीच जो आकर्षण है, वह कुछ सीमा तक स्थूल है। यदि यहाँ के पति-पत्नी का धर्म उस नित्य लोक के आदर्श पर आधारित है, तो उनमें पारस्परिक आकर्षण का क्या कारण है ?" गौरी ने कहा, " पुरुषों में ऐसी एक गुप्त वस्तु है, जो उनके पुरुषत्व को अक्षुण्ण रखती है। वह वस्तु पुरुष के हाथ, पैर, सिर आदि में कहीं भी नहीं है, फिर भी वह शरीर में गुप्त रुप में है। ठीक वैसे ही नारियों में भी ऐसी एक गुप्त वस्तु है, जो उनके हाथ, पैर आदि में कहीं नहीं है। ये दोनों गुप्त वस्तुएं एक दूसरे से मिलना चाहतीं हैं। किसी विशेष क्रिया से इन दोनों वस्तुओं के सम्मिलित होने पर आनन्द उत्पन्न होता है। यदि नारी और पुरुष दोनों के शरीर से इन गुप्त वस्तुओं को निकाल कर मूर्ति बनाई जाए, तो उन्हें अंग विशेष के संगम से आनन्द उत्पन्न करना नहीं पड़ेगा। वे दोनों हमेशा हमेशा के लिए युगल मिलन से करोड़ों गुना आनन्द का उपभोग करेंगे। एक के एक अंग से दूसरे के एक अंग के स्पर्श से वे एक जैसे आनन्द का उपभोग कर सकेंगे। *स्थूल जीवों के अंग विशेष के संगम से आनन्द प्राप्त होने की तरह वे दो मूर्तियाँ केवल मिलन से ही आनन्द प्राप्त कर सकेंगी। उसमें कोई अन्तर नहीं आयेगा। जगत की चरम सीमा की ओर जितना आगे बढ़ते जाओगे उतना ही मिलन अथवा एकता की ओर जाओगे। स्थूल में केवल विचित्रता या वियोग है। इसलिए जगत में इतना प्रेम करते हैं। प्रेम करना ही आदि और प्रेम करना ही अन्त है। यही प्रेम करना ही भगवान है। भगवान प्रेम के भूखे हैं। क्या तुम उन्हें प्रेम कर सकोगे ?"

यह कहते हुए गौरी माँ के भाव में परिवर्तन होने के साथ-साथ उनके चेहरे पर भी परिवर्तन दिखाई दिए। उनके होंठ कांप उठे। उनके गालों पर लालिमा छा गई। दोनों आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगे। शरीर रोमांचित हो उठा। गौरी माँ ने कांपते हुए

* प्रेम साधना का विस्तृत विवरण श्रीमत् स्वामी निगमानन्द परमहंस देव द्वारा प्रणीत "प्रेमिक गुरु" ग्रन्थ में दिया गया है।

पूछा, "कहो, तुम मुझसे क्या चाहते हो ?" निगमानन्द ने कहा, "मैं यहां पर प्रेम का भिखारी बनकर आया हूं। सुना है प्रेम की कोई साधना नहीं है। केवल महापुरुषों की कृपा पर ही प्रेम का उद्रेक होता है। उस प्रेम का संचरण-सूत्र प्रेम करना है।" गौरी माँ ने कहा, "मैं तुम्हें प्रेम की शिक्षा दूंगी। परन्तु क्या तुम मुझे प्रेम कर सकोगे ? प्रेम किए बिना कुछ भी संचारित नहीं होगा।" यह कह कर वे रोने लगीं।

भाव का संचार

गौरी के शरीर में सात्त्विक भाव का संचार होने लगा। वे कांपते कांपते निगमानन्द के चरणों में गिर पड़ीं। निगमानन्द को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि त्रिकालदर्शी प्रेमिका ऋषि का मन इतना कोमल हो सकता है। यह जानकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि जो बज्र से भी अधिक कठोर प्रतीत होती थीं, प्रेम के प्रसंग में वे फूल से भी कोमल हो सकती हैं। निगमानन्द ने उन्हें पकड़ कर जमीन से उठाया। गौरी ने आवेगपूर्ण स्वर में कहा, "मैं सारा जीवन तुम्हारे आने की प्रतीक्षा में बैठी हूं। तुम कब प्रेम के इस प्रवाह को जगत में प्रवाहित करोगे। आज तुम्हें पाकर मैं धन्य हो गई। जिस मनुष्य ने देवत्व प्राप्त कर रखा है और जिस नारी ने आह्लादिनी स्वरूप को प्राप्त कर रखा है, आज उन दोनों के मिलन से यह स्थान कैलाश अथबा वैकुण्ठ बन गया है।" यह कहते-कहते निगमानन्द जिस पलंग पर बैठे थे, गौरी उस पलंग के एक छोर पर बैठ गईं। गौरी के प्रेम-शिक्षा देने की प्रणाली से निगमानन्द के भीतर धीरे-धीरे उन्माद का वेग आ गया। स्वामी निगमानन्द नशे से प्रभावित व्यक्ति की तरह निर्निमेष गौरी की ओर निहारते रहे।

पाठकों को ज्ञात होगा कि निगमानन्द ने कोटा के जंगल में जिस योगिनी को देखा था, उसकी तुलना में गौरी की आयु छब्बीस वर्ष प्रतीत होती थी। परन्तु प्राणों के कंपन के साथ-साथ गौरी की आयु और चेहरे पर पूर्ण परिवर्तन दिखाई दिये। गौरी रासेश्वरी राधा के

भाव से पूर्ण हो उठीं। भाव के कंपन के साथ-साथ ऐसा प्रतीत होने लगा कि उनकी आयु सोलह वर्ष है। उनके अवयव सोलह वर्ष की युवती के समान दिखाई दिये।

गौरी का पूर्व रूप अन्तर्हित हो गया। गौरी ने उनकी पत्नी सुधांशुवाला का रूप धारण किया। वही रूप जो योग व ज्ञान की कठोर साधना के दौरान पिछले दो वर्षों से मन से दूर हो गया था और वह चेहरा, उनके जैसा होने पर भी उनसे हजारों गुणा ज्योतिर्मय था। उनकी आंखों से मानो मोती झर रहे थे। सारा संसार पहेली की तरह स्वामी निगमानन्द के चरणों के नीचे से खिसक गया। उन्हें और कुछ नहीं दिखाई दिया। केवल प्रभुश्री और माँ, भाव और प्रेम में दोनों उन्मत्त थे। अनेक दिन बाद भेंट हुई थी। वे आंसुओं के सहारे भाव का आदान-प्रदान करने लगे। ब्रह्मज्ञ निगमानन्द का ब्रह्मज्ञान चूर-चूर हो गया। वे दीन भाव से महाभावमयी के सामने प्रणय के भिखारी बन कर मूर्छित हो गये। उसी समय मनोमयी रूपधारी गौरी के प्रेमस्पर्श से निगमानन्द भाव समाधि में निमग्न हुए। नित्य लोक का आस्तरण पट हमेशा के लिए हट गया।

निगमानन्द सुबह तक भाव समाधि में निमग्न रहे। सुबह उनकी बाह्य चेतना लौट आई। उन्होंने गौरी से विदा मांगी। गौरी ने अनेक वर्ष पहाड़ों के भीतर आत्मगोपन कर अपने हृदयरूपी भण्डार में जिस प्रेम को संचित कर रखा था, आज उन्होंने उस प्रेम को योग्य पात्र में संचारित कर जगत में उसका प्रचार करने के लिये उन्हें सानन्द विदा दी।

विदा करते समय गौरी माँ ने पुनः कहा, "श्रीगौरांगदेव ने वैदिक संन्यास लिया था। वे अवतार थे। इसलिये ज्ञान स्वतः सिद्ध भाव से उन में पूर्ण था। श्रीगौरांगदेव जीवों को पूर्णता प्राप्ति का सहज उपाय दिखाने के लिये सदैव प्रेम-भक्ति का आश्रय लेकर रहते थे। भक्त और भगवान के बीच प्रेम-प्रीति के गहरे संबंध हैं। महाप्रभु सदैव अपने शिष्यों को इसी विषय का उपदेश देते थे। भगवान का भजन पांच तरह से किया जाता है। प्रत्येक मनुष्य को उन्हें परम

आत्मीय अथवा माता-पिता, प्रभु, सखा या स्वामी के रूप में प्यार करना चाहिये। भगवान के प्रति इस प्रेम-भक्ति की भावना को लेकर संसार बसाना होता है। भगवान ने संसार का इसलिए सृजन किया है कि मनुष्य उन्हें ऐसा प्रेम करेगा और इसी कारण उन्होंने संसार के सर्वश्रेष्ठ जीव मनुष्य को ज्ञान और भक्ति का ऐश्वर्य प्रदान किया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने इष्टदेव को अपने प्राणों से अधिक प्रिय समझेगा। इस प्रेम-भक्ति से ही जीवन की चरम सार्थकता प्राप्त होती है।

गौरी माँ के उपदेश से ज्ञान और योग सिद्ध निगमानन्द भगवत प्रेम से आत्मविभोर हो गए। वे समझ गए कि भगवान जन्म-जन्मान्तर से जीव को इस प्रेम-भक्ति के मंत्र से दीक्षित कराने की चेष्टा करते आ रहे हैं। किसी एक साधक के सिद्धि प्राप्त करने पर उससे भगवान ही आनन्द का उपभोग करते हैं। क्योंकि वह उस समय आम लोगों की तरह केवल अपनी सन्तानों को ही प्यार नहीं करेगा, अपितु भगवान को सन्तान के ज्ञान से प्यार करेगा। नलिनीकान्त को किशोरावस्था में मातृहीन और यौवनावस्था में पत्नी का विछोह देने के बाद उन्हीं भगबान ने दिवंगता पत्नी के रूप में उन्हें दर्शन देकर उन्हें ज्ञान साधना में प्रवृद्ध किया। अतः भगवान ही मानव के परम हितैषी मित्र हैं। जीव के लिए उनके जैसा आत्मीय स्वजन और कोई नहीं है। तब ऋषि निगमानन्द के मन में सहज भक्तिभाव का उद्रेक हुआ। उन्होंने बचपन में पाठशाला में पढ़ा था—

"अच्छे वक्त पर गले लगाय सब कोय,
बुरे वक्त पर कोई किसी का न होय,
आपद विपद सभी काल भगवान,
होते हैं परम मित्र रखो यह ज्ञान।"

बचपन की यह नीति शिक्षा अब पूर्णतः सच निकली। जब वे मंत्रलाभ के लिए व्याकुल हुए, भगवान ने सच्चिदानन्द स्वामी की मूर्ति में उन्हें मंत्रदान किया। गुरु न मिलने पर जब उनके मन में आत्महत्या का विचार आया, उन्हीं भगवान ने उन्हें स्वप्न में वामाक्षेपा का दर्शन

कराया। साधना के समय भी उन्हीं भगवान ने प्रतिकूल परि-स्थितियों में न केवल उनकी रक्षा की, अपितु वे प्रियजनों की तरह उनकी सहायता करते भी आए। साधना की शिक्षा देकर निर्विकल्प का ज्ञान प्राप्त करने के बाद भी भगवान ने उन्हें अन्नपूर्णा के रूप में दर्शन देकर उनकी भ्रान्तियां दूर कर दीं। निगमानन्द ने इस बारे में जितना सोचा, उनका मन उतना ही शुद्ध-भक्ति से विगलित होता गया। ज्ञान में सिद्धि प्राप्त करने के बाद प्रेम-भक्ति प्राप्त कर वे प्रेम में पागल जैसे हो गए।

स्वामी निगमानन्द की इष्ट देवी थीं महाविद्या तारा देवी। इस समय भगवान ने पुनः उन्हें इष्ट देवी की मूर्ति में दर्शन देकर कहा, "तुमने पूर्वजन्म में मुझे अपनी पत्नी के रूप में पाने की अभिलाषा प्रकट की थी। तुम्हारी वह अभिलाषा इस जन्म में पूरी होगी। मैं भक्त वांछा-कल्पतरु हूं। अब से मैं तुम्हारी साध्वी पत्नी सुधा देवी की तरह तुम्हें चाहूंगी और तुम्हारी सेवा करूंगी। तुम स्वयं को महाशक्ति के स्वामी साक्षात् शिव समझोगे। जगद्‌गुरु शिव ही महाशक्ति के भरतार हैं। अतः तुम भी शिवस्वरूप हो। तुम ही सार्वभौम गुरु हो। ये जगत वासी तुम्हारी ही सन्तान हैं। तुम गुरु के रूप में संसार में जाकर जीवों को स्वरूप का ज्ञान प्रदान कर उनका उद्धार करो। अज्ञानी जीवों को आत्मज्ञान प्रदान करने का प्रबंध करो।" शास्त्र में इस बात का उल्लेख है कि श्रीभगवान ही जगद्‌गुरु हैं। जब उन्होंने जगदीश्वरी के रूप में परिव्राजक परमहंस निगमानन्द जी को गुरुभार स्वीकार करने के लिए कहा और स्वयं उनकी दासी बन कर सेवा करने का वचन दिया, तब स्वामी निगमानन्द ने स्वयं को पूर्ण समझा।

भाव साधना

गौरी माँ से विदा लेकर स्वामी निगमानन्द भाव-साधना के लिए यज्ञेश्वर बाबू के घर लौट आए। उस समय उनमें बाह्य ज्ञान बिल्कुल नहीं रहता था। उन्हें मल-मूत्र त्यागने का ख्याल नहीं रहता। वे
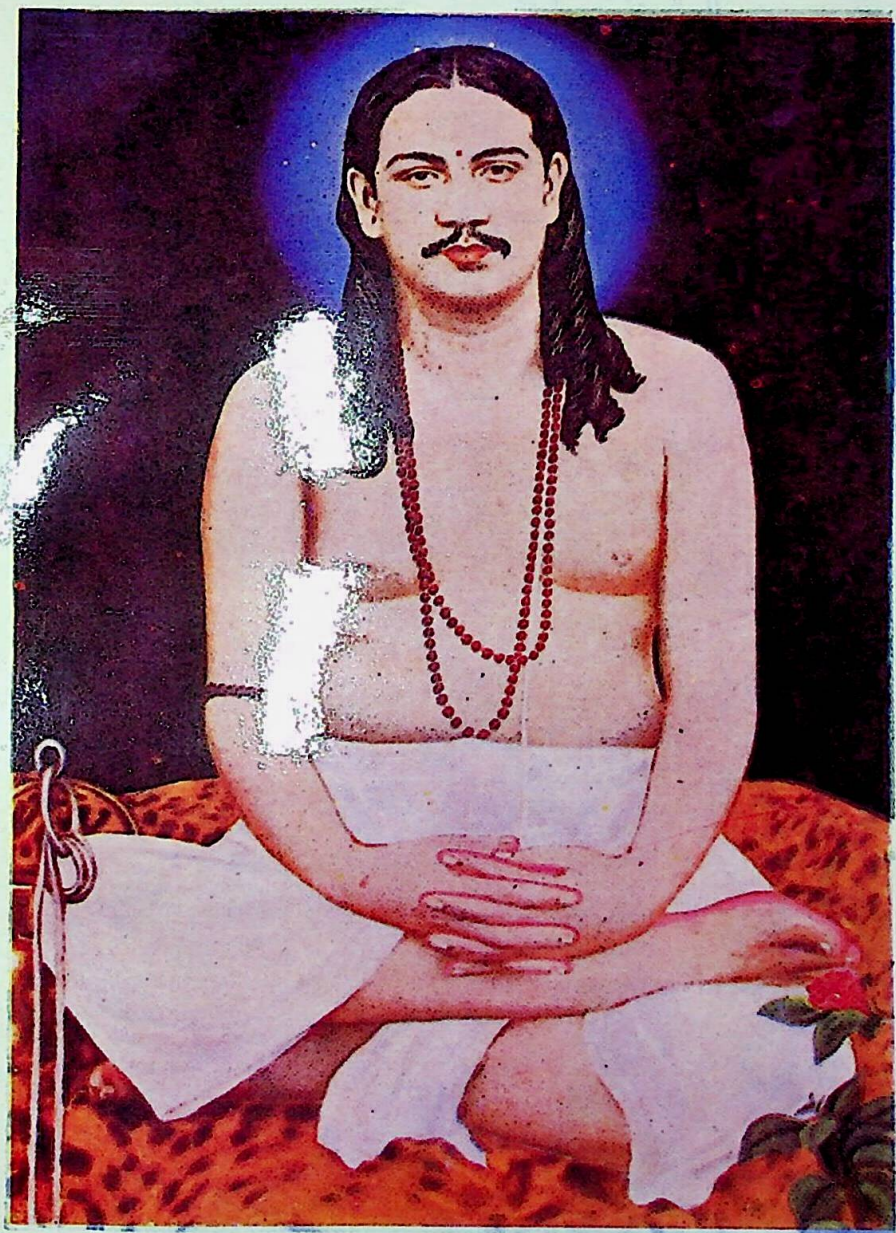
प्रेमिक गुरु
परमहंस श्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव

सदैव पागल जैसे रहते थे। जहां चाहे वहीं मल-मूत्र त्याग कर देते थे। यज्ञेश्वर बाबू की पत्नी अपनी सन्तान की तरह उनका ख्याल रखतीं। उन दिनों कोई उन्हें खिला देता तो वे खा लेते, वरना उन्हें खाने की भी इच्छा नहीं रहती।

प्रेमोन्माद

तीन महीने तक भाव-साधना करने के पश्चात प्रभुश्री में प्रेमोन्माद भाव आ गया। इस दौरान वे हर समय हंसते, रोते, नाचते और घूमते थे। संसार के प्रत्येक अणु-परमाणु में चिरसुन्दर को देखकर वे आत्म-विभोर हो जाते। वे किसी सुन्दर चीज को देखते ही समाधिस्थ हो जाते। उनकी यह प्रेमोन्माद अवस्था एक बार आने के बाद लगातार तीन-चार दिन तक बनी रहती। उस समय उनके सिर के बाल और शरीर के रोएं कांटे की तरह खड़े हो जाते और आँखें जवा कुसुम की तरह लाल हो जातीं। आँखों से रात-दिन आँसू बहते थे। कभी-कभी उनकी आँखों और लोमकूपों से खून भी निकलने लगता था। इस अवस्था में वे कपड़ों में ही टट्टी-पेशाब कर देते थे। सरयू देवी अपने हाथों से उन्हें साफ करतीं।

यह भाव पैदा होने के समय प्रभुश्री के इर्दगिर्द प्रेममयी का रूप खिल उठता था। किसी सुन्दर फूल को देखते ही वे उसमें प्रेममयी का रूप देखते थे। वे उषा की अरुणिम किरणों में जैसे प्रेममयी का हास-पूर्ण मुख को खिलते देख पाते।

भाव-समाधि* टूटने के बाद यज्ञेश्वर बाबू और उनकी पत्नी प्रभुश्री के सामने उनकी समाधिकालीन अवस्था का वर्णन करते थे। यदि कोई स्त्री उनकी वह अवस्था देखने आती तो प्रभुश्री किस प्रकार उसको गले लगाकर रोते थे और किसी फूल के पौधे को पाकर जिस प्रकार वे पुनः

---

* भाव समाधि में स्थूल शरीर योग समाधि की तरह जड़ और मृतवत् नहीं होता है।

पुनः उसे चूमते थे, उक्त पति-पत्नी ने उस सबका वर्णन किया । यह जानकर प्रभुश्री को विस्मय होता था। साथ ही वे चिंतित हो उठे। उन्होंने शिष्य दम्पति को बताया कि ऐसे लोकाचार विरुद्ध कार्यकलापों को करते हुए उनका किसी के घर पर ठहरना उचित नहीं है। इसलिए उन्होंने कलकत्ता जाने की इच्छा व्यक्त की। इस पर यज्ञेश्वर बाबू ने कहा, "प्रभो, आपकी भाव समाधि अवस्था का आलिंगन पाना तो सौभाग्य की बात है।" "यह भले ही किसी किसी के लिए सौभाग्य की बाव हो सकती है, परन्तु कोई इसके लिए मेरा अपमान भी कर सकता है।" यह सोचकर परमहंस निगमानन्द गौहाटी से कलकत्ता के लिए रवाना हो गए।

योगी गुरु सुमेरुदास जी से भेंट

कलकत्ता में स्वामी निगमानन्द ने किसी के घर पर ठहरना अनुचित समझा। वे कालीघाट के पास बनी धर्मशाला में ठहरे। वहां उन्होंने देखा कि उनके गुरु सुमेरु दास जी नकुलेश्वर मन्दिर में बैठकर गांजे की चिलम तैयार कर रहे हैं। प्रभुश्री को देखकर वे बहुत आनन्दित हुए। उन्होंने उनसे पूछा कि कहां से आए हो ? प्रभुश्री ने भी उनसे वही प्रश्न किया। सुमेरुदास जी ने बताया कि मैं पुरी से आ रहा हूं। तदनन्तर स्वामी निगमानन्द ने अपने बारे में बताया कि यज्ञेश्वर बाबू के घर पर रहते हुए भाव समाधि की उन्मादग्रस्त अवस्था में उनकी क्या दशा होती थी और इसलिए वे गौहाटी छोड़कर कलकत्ता चले आए। वह रात उन्होंने वहीं पर गुरु के साथ बिताई।

कठोर आश्रम जीवन

कुछ दिन बाद स्वामी निगमानन्द तुरा पहाड़ पहुंचे। वे जंगल में वहां पर दो कमरे बनाकर साधना करने लगे। यहां पर कुछ दिन ठहरने के बाद उन्होंने गारोहिल के कोदालधोआ नामक स्थान में एक आश्रम का निर्माण किया। यह आश्रम "गारोहिल योगाश्रम" के नाम से जाना जाता है।

गारोहिल योगाश्रम

कोदालधोआ के पहाड़ी क्षेत्र में हाजं जनजाति के लोग रहते थे। इस अल्पवयस्क साधु को देखकर वे उनके प्रति आकृष्ट हुए और उनके खाने-पीने की व्यवस्था करने लगे। हाजं लोगों ने स्वामी जी के लिए पुआल का एक छोटा सा घर और सोने के लिए बांस का एक मचान बना दिया।

अध्यापन कार्य

स्वामी निगमानन्द ने हाजं लोगों के बच्चों को पढ़ाने के लिये वहां एक प्राथमिक विद्यालय खोला। वे स्वयं अध्यापक बनकर बच्चों को पढ़ाने लगे। बाद में शिक्षा विभाग के स्थानीय अधिकारियों ने विद्यालय का निरीक्षण किया और सात रुपये मासिक सहायता की व्यवस्था कर दी। इस सहायता की मंजूरी के बाद हाजं लोग निगमानन्द को पण्डित जी के नाम से पुकारने लगे।

प्रेमिक का वासर घर

प्रभुश्री दिन में विद्यालय का कार्य पूरा कर रात को साधना करते थे। कभी कभी वे दो-तीन दिन तक दरवाजा बन्द करके घर में रहते थे। इस दौरान हाजं लोग प्रभुश्री को भूत लगा समझ कर उनके पास नहीं फटकते थे। कबीले के ही उनके दो अनुचर मदन और सीताराम भी उस अवस्था में प्रभुश्री को पागल ही समझते थे।

गारोहिल के ऊपर विशाल बिल्व वृक्ष के नीचे बनी पर्णकुटी प्रेमिक निगमानन्द के वासर गृह में बदल गई। वहाँ पर रहते हुए प्रभुश्री के समक्ष महाभावमयी सशरीर प्रकट हुईं और वे विश्व के सम्पूर्ण प्रेम और हास-परिहास के साथ प्रभुश्री को अर्ध देने के लिये उपस्थित रहने लगीं। सूनी पर्णकुटी में प्रेमिक निगमानन्द महाभावमयी को पाकर आनन्दाश्रु बहाने लगे। प्रभुश्री यदि मचान पर सोते थे तो देवी भी उनके पास एक ओर सो जातीं। प्रभुश्री के उठने पर वे भी उठ जातीं।

प्रभुश्री बाहर निकलने के लिये तैयार होते तो देवी उनकी धोती का छोर पकड़ लेतीं। यदि प्रभुश्री अवज्ञा करके चले जाते तो प्रेममयी मुंह फुला लेतीं। सूनी पर्णकुटी में प्रभुश्री निगमानन्द इस प्रकार रहते थे। परन्तु इसका पता किसी को नहीं चला। यह लीला कोई नहीं देख पाया।

इस प्रकार से कुछ दिन बीत गए। अन्त में एक दिन प्रेममयी ने कहा, "तुम इस भाव में कितने दिन बिताओगे? तुम्हें गुरु का कार्य करना होगा, क्या तुम्हें इस बात का स्मरण नहीं है?" निगमानन्द ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। गुरु बनने का झमेला उन्हें कतई पसन्द नहीं था। इसी गुरुभाव के जागने के कारण ही तो निर्विकल्प समाधि की अवस्था से उनका व्युत्थान हो गया था। इस सुनसान स्थान में खुशी से दिन बिता कर गुरुभार लेने की बात भूल जाने पर प्रेममयी ने उन्हें उसका स्मरण करा दिया। फिर भी कोई उत्तर न मिलने पर प्रेममयी ने पुनः प्रश्न किया, "उत्तर क्यों नहीं देते?" प्रभुश्री ने कहा, "गुरु बनना बड़े झमेले का और दायित्वपूर्ण काम है।" यह सुनकर प्रेममयी ने कहा, "क्या ऐसा कहने से चलेगा?" इसके उत्तर में प्रभुश्री ने कहा, "यदि तुम मुझे दो वर दे दो, तो मैं यह जिम्मेदारी निभाऊंगा।" प्रेममयी ने पूछा "सुनूं तो सही, वे दो वर क्या हैं?" प्रभुश्री ने उत्तर दिया, "जो लोग मेरा शिष्यत्व स्वीकार करने के बाद मुझे छोड़ कर चले जाएंगे अथवा मेरे विरुद्धाचरण कर दूसरा गुरु करेंगे, वे भी तीन जन्मों के भीतर निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करेंगे।"

प्रेममयी ने कहा, "ठीक है, ऐसा ही होगा, फिर दूसरा वर क्या है?" प्रभुश्री ने कहा, "जो लोग मेरा शिष्यत्व स्वीकार कर आजीवन मेरे शिष्य बने रहेंगे, साधना भजन करें या न करें, वे एक ही जन्म में मुक्ति प्राप्त करेंगे।" प्रेममयी ने उत्तर दिया, "ठीक है, ऐसा ही होगा। जो शिष्यगण भक्ति और विश्वास के साथ सघन साधना करेंगे, वे इस शरीर के रहते हुए ही मुक्ति प्राप्त करेंगे और दूसरे लोग क्रम-मुक्ति मार्ग पर जाएंगे। उनका पुनर्जन्म नहीं होगा। मैं इसके लिए तीन बार वचन देती हूं।"

इसके बाद दो महींने बीत गए। प्रभुश्री के लोक समाज में आने के कोई लक्षण नजर नहीं आए। प्रेममयी पहले की तरह दांपत्य जीवन बिताने लगीं। स्वयं विश्वनियंत्री माँ भगवती प्रभुश्री की गृहिणी। छोटी सी पर्णकुटी में नित्यवृन्दावन का विकास। प्रभुश्री की बिल्कुल इच्छा नहीं हुई कि इस भाव लोक के आनन्द को छोड़ माया-जड़ित संसार में जाकर स्वयं को कर्म के स्रोत में बहा दें। उन्हें ऐसा बोध हुआ कि पाश्चात्य शिक्षा से डूबे बंगालियों का गुरुभार वहन करना सर्वथा असंभव है। विशेषकर उस समय बंगाल में स्वदेशी युग का आरम्भ हुआ था और देश में भयंकर विप्लव चल रहा था। चारों ओर विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, बंगभंग का विरोध और सभा-समितियों में हिंसा का ताण्डव चल रहा था। ऐसी स्थिति में संन्यासी की बातें सुनेगा भी कौन ? अतः प्रभुश्री माँ को लेकर पहले की तरह गृहस्थी निभाने लगे। एक दिन देवी द्वारा पुनः इस बात का स्मरण दिलाए जाने पर प्रभुश्री ने कहा, "गुरु बनने पर गृहस्थों के आश्रय में रहना पड़ेगा। वे सन्देह के दास हैं। अतः उनके साथ सदैव संकोच में रहना पड़ेगा। मन का यह भाव भी नहीं रहेगा। फिर मैं तुम्हें और इस भाव में नहीं पा सकूंगा।" यह सुनकर प्रेममयी माँ ने कहा, "तुम अपनी सती, साध्वी और पतिव्रता शिष्याओं में मुझे देख सकोगे। वे मेरी ही तरह तुम्हें प्रेम करेंगी।"

निरुपाधि भाव

तब भी प्रभुश्री की संसार में आने की इच्छा नहीं हुई। पहले की तरह वे दिन में विद्यालय में और रात को देवी के साथ सानन्द रहने लगे। एक रात प्रभुश्री ने प्रेममयी को अपने वक्ष पर सुलाने की कामना करते हुए हाथ तो फैलाया, पर वे तत्काल रुक गए। उन्हें डर लगा कि ऐसा करने से गोपियों की तरह उनके मन में भी कहीं वासना न जाग उठे। उन्होंने मन ही मन सोचा कि यदि भगवान प्रेममयी के रूप के स्थान पर छोटी बच्ची का रूप धारण करते तो वे उन्हें अपने वक्ष पर रखकर सो सकते। यह सोचकर वे बाहर चले आए। वे जब पुनः घर में आए तो देखा कि मचान पर प्रेममयी के स्थान पर सात वर्ष की

एक सुन्दर बालिका सोई हुई है। बालिका प्रभुश्री को देखकर हंसने लगी। प्रभुश्री ने समझ लिया कि प्रेममयी ने उन्हीं के लिए बालिका का रूप धारण किया है। प्रभुश्री बड़े प्यार से उन्हें वक्ष पर रखकर सोते रहे। परन्तु आश्चर्य की बात है कि वह बालिका वक्ष पर धीरे-धीरे बढ़ने लगी। बालिका धीरे-धीरे षोड़शी युवती के रूप में बदल गई। प्रभुश्री को उसके बढ़ते हुए अंगों के बोझ से भारीपन का एहसास हुआ। प्रेममयी ने धीरे-धीरे बढ़कर उनकी पत्नी सुधांशुबाला का रूप धारण कर लिया। प्रभुश्री प्रेममयी की लीला देखकर हंस पड़े। देवी भी हंसने लगीं। प्रभुश्री के वक्ष पर प्रेममयी के रूप और शारीरिक गठन में तेजी से परिवर्तन होने लगे। उस समय उन्हें प्रतीत हुआ कि प्रेममयी की आयु ३०-३५ वर्ष की हो चुकी है। धीरे-धीरे यौवनावस्था दूर होती गई। उनके शरीर में बुढ़ापे के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। इस पर प्रभुश्री गंभीर होने लगे। उनमें मानसिक परिवर्तन दिखाई दिया। क्रमशः प्रेममयी की आयु बढ़ने के साथ-साथ चेहरा भी बदलता गया। प्रभुश्री उन्हें वक्ष से खिसका कर मचान पर उठ आये। यह तो उनकी गर्भधारिणी माँ माणिक्य सुन्दरी देवी हैं! प्रभुश्री का शरीर रोमांचित हो उठा।

माँ, पत्नी और कन्या एक ही हैं। केवल शरीर भिन्न भिन्न हैं। यह बहुत ही विस्मयकारी, बहुत ही भयानक, फिर भी निगूढ़ सत्य है। माँ, पत्नी और कन्या तीनों एक हैं और एक ही तीनों है।

आज प्रभुश्री के भाव के मूल में कुठाराघात हुआ। इस घटना से उनके मन से माँ, पत्नी और कन्या के प्रति भिन्नता का जो भाव था वह दूर हो गया और एक तरह के निरुपाधि और निर्गुण भाव ने उसका स्थान ले लिया। अतः रूप का विकास भी अदृश्य हो गया। इस प्रकार चेहरे की विषमता अरूप में अथवा निर्गुण भाव में विलीन हो गई।

सातवां अध्याय

सिद्ध जीवन

परिपूर्ण भाव

प्रभुश्री के भीतर मात्र तीन वर्ष में ही विभिन्न साधनाओं से सम्पूर्ण तत्त्व प्रस्फुटित हो गए थे। जिस समय उन्होंने तंत्रोक्त साधना से जगज्जननी का जाया के रूप में दर्शन किया, उस समय उन्होंने स्वयं को असीम शक्तिशाली शिवत्व से समुज्ज्वल समझा। उस समय उनके समक्ष शक्ति की लीला से उत्पन्न जगत प्रकट हो गया। उस समय प्रभुश्री सोचते थे कि जो कुछ जानना था सब जान चुके हैं। इसके बाद और कुछ जानना बाकी नहीं रहा। तदनन्तर कुछ ही दिनों में उनके भीतर तंत्रोक्त शक्तिवाद का अपूर्णबोध जाग उठा। इसलिए वे संन्यासी बनकर वेदान्त का विचार करने लगे।

वेदान्त विचार से एक बहुत ही विभ्रम सी स्थिति पैदा हो गई। उन्होंने तांत्रिक साधना से जो शिक्षा प्राप्त की थी, उस बारे में पहले पहल उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि वह सब झूठ है। तंत्र शास्त्र में इस जगत में एक मात्र महाशक्ति को लेकर विचार किया गया है। परंतु वेदान्त विचार में यह जगत माया, मिथ्या और प्रहेलिका है। जो स्थूल व दृश्यमान है, जो कुछ भी महाशक्ति जगज्जननी द्वारा प्रसूत है वह सब मिथ्या अथवा स्वप्न की तरह असत्य है। इसकी कोई सत्ता नहीं है। वेदान्त द्वारा प्रतिपाद्य ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है। उस अधिष्ठान या आधाररूपी ब्रह्म में रूप की कल्पना की जाती है। अतः अधिष्ठान की सत्ता के अतिरिक्त माया की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं। अतः प्राथमिक विचार में तंत्रोक्त शक्तिवाद मिट गया। उस समय

परमहंस देव के मन में आया कि क्या शक्ति सचमुच झूठ हैं ? तब उन्होंने जिसके दर्शन किए थे, वह देवी क्या स्वप्न की तरह मिथ्या हैं ? क्या वेदान्त ही सच्चा तत्त्व है ? तब क्या तंत्र और तंत्र की साधना मिथ्या की साधना है ?

आदि शंकर के मत में अथवा नव्य वेदान्त में बताया गया है कि "ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या" है। अतः इस वेदान्त की साधना में जगत सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त नहीं होता है, यह झूठ है। परन्तु तंत्र के विचार से अथवा शाक्त या शैव वेदान्त के विचार से जगत मिथ्या नहीं है। प्रभुश्री पूर्णज्ञान प्राप्त करना चाहते थे। इसलिए उन्हें योगपथ में जाना पड़ा। तंत्र और कुछ नहीं है, वह योगशास्त्र का कर्मकाण्ड मात्र है। शंकर मत की साधना से प्रभुश्री ने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था, पिण्ड ब्रह्माण्ड या शरीर रूपी ब्रह्माण्ड का ज्ञान प्राप्त नहीं किया था।

जिस समय उन्होंने योग साधना से असंप्रज्ञात समाधि प्राप्त की, उस समय उनके समक्ष एक और अन्तर्जगत खिल उठा। देह रूपी क्षुद्र ब्रह्माण्ड के भीतर उन्हें एक महान और अनन्त अन्तर्जगत का दिग्दर्शन हुआ। यह अन्तर्जगत इतना वैचित्र्यपूर्ण है कि वहाँ से उन्हें एक और जगत के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ। जिस समय उन्हें निर्विकल्प समाधि प्राप्त हुई अथवा उनमें प्रत्यक्ष ब्रह्मज्ञान का उदय हुआ, उस समय उन्होंने इस सृष्टि लीला रूपी विराट जगत और उसके अतिरिक्त जगतों का स्वरूप जाना और इस प्रकार वे तंत्र के साथ ज्ञान का सामंजस्य कर सके। तब उन्हें इस बात की उपलब्धि हुई कि शक्ति में आधारभूत सत्ता के रूप में ब्रह्म की उपासना की जाती है। रूपरहित विशुद्ध चैतन्य ब्रह्म की उपासना असंभव है। इसके अतिरिक्त शक्ति का कोई आश्रय नहीं है। वह ब्रह्म पर आश्रित है। अतः तंत्र की महाशक्ति शिवरूपी महाशक्ति पर संस्थित है।

बाद में उन्होंने योग के साथ तंत्र और ज्ञान का मिश्रण करके देखा। तब उन्होंने देखा कि प्रकृति और पुरुष रूपी उभयात्मक ब्रह्म ही तंत्र की शिवशक्ति है। उसके बाद उन्होंने योग और वेदान्त के परमात्म-तत्त्व को ब्रह्मतत्त्व के साथ एक ही आधार पर मिलाकर देखा। शास्त्रों

में बताई गई तीन तरह की विभिन्न साधना पद्धतियां यद्यपि भिन्न भिन्न आध्यात्मिक तत्त्वों को प्रकट करती हैं, तथापि तीनों साधनाएं मूल तत्त्व की ही अनुगामी हैं।

भावलोक का संधान प्राप्त करते ही एक और नूतन जगत उनके समक्ष तैर उठा। उन्होंने देखा कि जिस प्रकार तंत्र में मायाशक्ति पर विचार किया गया है, ठीक वैसे ही भक्तिशास्त्र में आह्लादिनी शक्ति का अनुशीलन किया गया है। सभी साधनाओं में सिद्धि प्राप्त करने के बावजूद यदि उनमें यह भाव तत्त्व प्रकट न होता, तो उनका जीवन भिन्न प्रकार बनने के विशेष कारण थे। प्रभुश्री ने महसूस किया कि तंत्र के शक्तिवाद और भक्ति के भावतत्त्व के बीच बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है।

जो भी हो, उपर्युक्त तत्त्वों के प्रकाशित होते ही २६ वर्षीय संन्यासी के भीतर असीम कर्म की ऐसी जीवन्त प्रेरणा जाग उठी कि वे और अधिक समय उस बिल्व वृक्ष की पर्णकुटी में नहीं रह सके। अब वे भव ताप से दग्ध अज्ञानी जीवों को स्वरूपानन्द प्रदान करने के लिए व्याकुल थे। इसलिए उन्होंने पहाड़ी क्षेत्र को छोड़ कर संसार में आने का निश्चय किया। तब उन्होंने महसूस किया कि उनकी देह और मन एक महान इच्छा से यंत्रवत् संचालित हो रहे हैं।

यह बात दूर-दूर तक फैल गई कि पण्डित जी के भीतर कोई बड़े साधु प्रच्छन्न रूप से रह रहे हैं। उनका पता करके अध्यात्म तत्त्व के पिपासु लोग इस जनहीन वनभूमि में उनके पास उपस्थित होने लगे। बाद में एक दिन पलासडंगा के कुछ सज्जनों के विशेष आग्रह पर प्रभुश्री गारो पहाड़ के निर्जन निवास स्थान को छोड़कर कुछ दिन के लिए पलासडंगा चले गए।

पलासडंगा के निवासियों ने संन्यासी निगमानन्द के स्वागत-सत्कार के लिए वहां पर कीर्तन आदि की व्यवस्था की थी। इस संकीर्तन को सुनकर प्रभुश्री निगमानन्द समाधिस्थ हो गए। संदेहयुक्त लोगों में से एक युवक ने संन्यासी की समाधि की परीक्षा लेने के लिए

उनके दक्षिण जानु के संधिस्थान पर एक जलता हुआ अंगारा रख दिया। दो घंटे के बाद प्रभुश्री की समाधि टूटी। उस समय उनको जले हुए स्थान पर जलन महसूस हुई। इस पर उपस्थित लोग विशेष लज्जित हुए। उन्होंने घाव पर मरहम लगाया। साथ ही वह दुष्ट व्यक्ति पागल हो गया। उपस्थित लोगों ने स्वामी जी से उस युवक को क्षमा करने की प्रार्थना की। प्रभुश्री उस युवक को अपने साथ गारोहलि ले गए। वहां पर सात-आठ दिन ठहरने के बाद वह युवक रोग मुक्त हो गया। जले हुए का वह निशान अन्त तक प्रभुश्री के शरीर में विद्यमान रहा।

गृहस्थों के बीच प्रथम सम्मेलन में ही साधुओं के प्रति सर्वसाधारण के अविश्वास का प्रमाण मिल गया। इससे उन्होंने अनुमान लगाया कि समाज में आने पर ऐसी घटनाओं का सामना करना ही पड़ेगा। लोगों को आसानी से विश्वास नहीं होगा। उनके प्रति किसी में भ्रमधारणा पैदा न हो, इस उद्देश्य से उन्होंने सर्वसाधारण की दृष्टि आकृष्ट करने के लिए कुछ सहज और आशु-फलप्रद साधनातत्त्वों का समावेश कर एक पुस्तक लिखने का निश्चय किया। प्रभुश्री ने परमयोगी स्वामी सुमेरुदास जी से जो साधना तत्त्व सीखे थे और जिनसे वे लाभान्वित हुए थे उनके आदेशानुसार उनमें से कुछ सहज, सुखसाध्य और सर्वसाधारण के उपयोगी लययोग के साधना रहस्यों को सन्नि-वेशित कर एक पुस्तक लिखी और उसका नाम "योगी गुरु" रखा। उन्होंने निश्चय किया कि पुस्तक पूरी होते ही वे उस स्थान को छोड़ देंगे और अनन्य प्रेमभाव से उनकी सेवा करने वाले सीताराम, मदन आदि हाजं लोगों से शीघ्र ही विदा ले लेंगे। उन्हें बुलाकर प्रभुश्री ने कहा कि मैं चला जाऊंगा। तुम्हें देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है।

पण्डित जी की बात सुनकर वे रो पड़े। उसके बाद प्रभुश्री ने उन्हें मंत्र की विशेषता के बारे में समझाया और उन्हें मंत्र ग्रहण करने के लिए कहा। यह जानकर कि मंत्र से रुपया पैसा न मिलने पर भी इससे परलोक में मंगल होगा और फिर जन्म नहीं लेना पड़ेगा, उन्होंने मंत्र लेने का आग्रह किया। इसके बाद प्रभुश्री ने देश-काल-पात्र को

ध्यान में रख कर मदन और सीताराम को शक्ति मंत्र से दीक्षित किया। कुछ दिन बाद मदन के भीतर रात्रि में निद्रितावस्था में मंत्र शक्ति का ऐसा स्फुरण हुआ कि उस असभ्य हाजं के मुंह से काली कर्पूर मंत्र सुनाई दिया। मूर्ख हाजं लोगों को उसका आरंभिक ज्ञान नहीं था। इसलिये उन्होंने पण्डित जी को बताया कि मदन को भूत लग गया है! प्रभुश्री मदन को देखकर समझ गए कि दीक्षा शक्ति के सामयिक प्रभाव से हाजं संस्कार दूर हो कर बहु पूर्व जन्मों के हिन्दुत्व का संस्कार जागृत होने के कारण मदन काली कर्पूर मंत्र का उच्चारण कर रहा है। परन्तु इसे समझ न पाने के कारण घर के बाकी लोग भयभीत हो रहे हैं। अतः प्रभुश्री ने शक्ति का स्फुरण रोक दिया।

एक दिन "योगी गुरु" लिखते समय प्रभुश्री ने मदन को चिलम तैयार करने के लिए कहा। मदन ने झोले में देखा, पर उसे गांजे की कली नहीं मिली। यह देखकर प्रभुश्री ने कहा कि विश्वास के साथ ढूंढ़ने से निश्चय ही मिलेगी। ऐसा नहीं होगा तो पुस्तक लिखना रुक जायेगा। मदन ने इधर-उधर ढूंढ़ा और अंत में उसे बिल्ववृक्ष के मूल में गांजे की कली मिल गई। इससे वह बहुत खुश हो गया। उसने गांजा बनाकर प्रभुश्री को दिया। जब मदन ने आश्चर्य चकित होकर पूछा कि गांजे की कली कहां से आई, तो प्रभुश्री ने कहा कि गांजा तो सामान्य चीज है, उन पर विश्वास रखने से जगत की कोई भी वस्तु बिना क्लेश के मिल सकती है। मदन ने फिर पूछा कि क्या उन पर विश्वास रखने से बाघ का भय दूर हो जायेगा? प्रभुश्री ने उत्तर दिया कि यदि उन्हें उनकी बात पर विश्वास होगा, तो बाघ उनसे डरेगा। वे बाघ की पूंछ पकड़ कर उसे खाली हाथों से खींच सकेंगे। उन्हें अब और अधिक समय तक भुजाली लेकर जंगल में नहीं जाना पड़ेगा। केवल विश्वास होना चाहिये।

मदन की इच्छा हुई कि प्रभुश्री की बात की परीक्षा लें। वह सीताराम आदि चार-पांच साथियों को लेकर समस्वर से "जयगुरु" "जयगुरु" का उच्चारण करते हुए पहाड़ के विभिन्न स्थानों में बाघ की खोज करने लगा। परन्तु जहां बाघ अक्सर दिखाई दिया

करते थे, वहां पर एक भी बाघ नहीं मिला। लगभग दोपहर को एक विशाल बाघ को देख वे भयभीत तो हो गये, फिर भी प्रभुश्री की बात की परीक्षा लेने के उद्देश्य से एक दूसरे को पकड़ कर वे बाघ के सामने आये। बाघ उनको सात हाथ दूर से ही देखकर भीषण गर्जना से वनभूमि को प्रकम्पित करता भाग गया। उन्होंने लौट कर अपने बाघ अभियान का विस्तृत विवरण पण्डित जी को बताया। यह सुनकर प्रभुश्री ने कहा, "यदि तुम लोग श्रीगुरू की बात की परीक्षा न लेकर प्राणपण से उस पर विश्वास करते तो तुम लोग पहले भयभीत ही नहीं होते। उस समय तुम लोग सात हाथ ऊपर उठ कर बाघ की पूंछ पकड़ कर उसे ला सकते थे। बाघ में मनुष्य से अधिक शक्ति नहीं है। मनुष्य अपनी शक्ति की रक्षा नहीं कर पाता, इसलिये बाघ उसे खा जाता है।" प्रभुश्री ने आगे समझाते हुए कहा, "बाघ मनुष्य को खाता है, इसी संस्कार के कारण ही मनुष्य कमजोर पड़ जाता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के कारण बाघ में सम्मोहिनी शक्ति जागृत होती है। जिस समय बाघ की यह शक्ति उसके नेत्र के भीतर होकर ब्रह्मचर्यहीन दुर्बल मनुष्य पर क्रियाशील होती है, वह शक्तिहीन हो जाता है। मनुष्य के शारीरिक बल की तुलना में बाघ में अधिक बल नहीं है। बाघ गुरु विश्वासी से डर कर चलेगा और दुनिया गुरु विश्वासी के वश में है।" मदन आदि हाजों ने प्रसन्नचित्त से उस दिन से भुजाली छोड़ कर "जयगुरु" नाम रूपी हथियार लेनें की प्रतिज्ञा ली। "योगी गुरु" का लेखन कार्य पूरा होने के बाद उसका मुद्रण व्यय संगृहीत करने के लिये प्रभुश्री गारोहिल छोड़कर लोक-समाज में आये। उस समय प्रभुश्री वेदान्त की निर्विकल्प समाधि में ब्रह्म को जानकर ब्रह्मविद, योग साधना में परमात्मा से साक्षात कर सिद्धयोगी और भाव साधना में भागवत तत्त्व से अवगत होकर परम भागवत बन चुके थे। अतः एक ही बात में वे तब तक शास्त्रों में निर्दिष्ट लक्षणों के अनुसार पूर्णज्ञानी परमहंस हो चुके थे।

आठवां अध्याय

योग-ऐश्वर्य का प्रकाश

मैमन सिंह जिले में वेनियाचर नामक एक स्थान है। यहां कंस नदी के तट पर श्मशान के पास माँ काली का एक मंदिर है। इस मंदिर के बगल से होकर एक आम रास्ता जाता है। प्रभुश्री वहां पहुंचकर उस मन्दिर में रहने लगे। तरुण और कौपीनधारी संन्यासी की सौम्य और दिव्य मूर्ति, अरुण नेत्र और उदासीन दृष्टि तथा सामने पड़े लंबे चिमटे ने उस रास्ते से आने-जाने वाले लोगों की दृष्टि उस ओर आर्कषित कर ली। उनमें से कुछ लोगों ने संन्यासी को प्रणाम किया, परन्तु ऐसे तेजस्वी संन्यासी से साहस करके कोई भी कुछ नहीं पूछ सका। संन्यासी के वहां ठहरने की बात चारों ओर फैल गई।

काली मंदिर के पास स्थित गांव में नित्यानन्द मोदक नामक एक सज्जन रहते थे। उनकी पत्नी पिछले छह-सात वर्षों से उदरशूल रोग से ग्रस्त थी और हमेशा बिस्तर पर पड़ी रहती थी। उस महिला ने संन्यासी की बात सुनकर अपने पति को विशेष अनुरोध कर उनके पास भेजा। मोदक महोदय ने पहले ,उनकी पत्नी की बीमारी ठीक कर देने के लिए संन्यासी से विनती की। प्रभुश्री ने अपने गुरु सच्चिदानन्द स्वामी से उदरशूल रोग के प्रतिकार का कौशल और मंत्र आदि सीखा था। परन्तु कहीं भी उसकी परीक्षा नहीं की थी। उन्होंने इस अवसर पर उसकी परीक्षा करने का निश्चय कर कहा, "अच्छा, चेष्टा की जाएगी; परन्तु इसका फलाफल ईश्वर के हाथ है।" उसके बाद मोदक महोदय की पत्नी वहां पर लाई गई। प्रभुश्री ने मोदक जी को

कुछ सरसों का तेल और नया मटका लाने का आदेश दिया। लोगों को यह जानकारी थी कि मोदक महोदय की पत्नी बहुत दिन से इस असाध्य रोग से पीड़ित है और असह्य यंत्रणा भोग रही है। अनेक प्रकार की चिकित्सा करने पर भी बीमारी ठीक नहीं हुई थी। इसलिये जानने वाले अनेक लोग रोग आरोग्य की प्रक्रिया देखने के लिये काली मंदिर में उपस्थित हुए।

प्रभुश्री के आदेशानुसार उस मटके में तेल को आग पर औटाया गया। उसके बाद प्रभुश्री ने उपस्थित लोगों का विस्मय बढ़ाते हुए उस खौलते हुए तेल में अपने बाएं पैर की एड़ी डुबोई और उससे रोगी के शरीर को छुआ। उनके छूते ही पीड़ा कम होने लगी। कुछ समय के बाद रोगी की पीड़ा पूरी तरह दूर हो गई। वह बहुत ही खुश होकर अपने घर लौट गई। यह बात शीघ्र ही चारों ओर फैल गई। प्रभुश्री में ऐसी क्षमता देखकर लोगों को विस्मय हुआ। इस घटना के बाद से काली मंदिर में बड़ा मेला सा लग गया। बात स्थानीय जमींदार और नायब के कानों में भी पड़ी। पातिलदह परगना के अन्तर्गत बेनियाचर गांव के नायब उमाचरण सरकार निःसन्तान थे। इसलिए उनकी पत्नी हेमलता देवी साधु-संन्यासी के प्रति विशेष भक्ति परायण थीं। नायब दम्पति लोगों के मुंह से इस अद्‌भुत संन्यासी की बात सुनकर उनके दर्शन करने आए। वे उनसे बहुत विनती करके उन्हें अपने घर ले आए। थोड़े ही समय के भीतर वे प्रभुश्री के प्रति आकृष्ट हो गए। यहां पर रहते समय गारोहिल के सीताराम से एक सौ रुपए आए जिसके लिए उसने वचन दिया था। इस मूलधन से "योगीगुरु" ग्रन्थ प्रकाशित किया गया। प्रभुश्री "योगीगुरु" पुस्तक के मुद्रण के लिए कलकत्ता गए और वहां पर कुछ दिन रहने के बाद पुनः मैमनसिंह लौट आए।

"योगी गुरु" ग्रन्थ के प्रकाशन के बाद विभिन्न स्थानों से अनेक जिज्ञासु साधक प्रभुश्री के पास पत्र भेजने लगे और अनेक साधक उनसे भेंट कर साधना प्रणाली सीखने लगे। उन्हें विभिन्न स्थानों पर आमंत्रित किया गया। अनेक लोगों ने "योगी गुरु" पढ़ कर प्रभुश्री का

शिष्यत्व स्वीकार किया। इस दौरान कोमिल्ला के अन्तर्गत दुर्गापुर के जमींदार श्री चन्द्रकान्त सेन के विशेष आग्रह पर प्रभुश्री ने मैमनसिंह छोड़कर दुर्गापुर की यात्रा की। वे कुछ दिन तक चन्द्रकान्त बाबू के घर पर ठहरे। बाद में उनके घर के पास बनाए गए नए आश्रम में रहने लगे और वहीं से देश की तत्कालीन अवस्था का निरीक्षण करने लगे।

योग ऐश्वर्य का प्रकाश

प्रभुश्री ने देखा कि सामान्य जन त्याग और वैराग्य की वाणी को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और अनादर कर रहे हैं। सब भोग और विलासिता की चकाचौंध से मुग्ध हैं और अचानक एक ही दिन में बड़ा आदमी बनने की आकांक्षा रखते हैं। प्रभुश्री ने सोचा कि यदि मैं देश की ऐसी अवस्था में त्याग और वैराग्य की वाणी का प्रचार कर संसार को अनित्य सिद्ध करने की चेष्टा करूं तो कोई भी मेरे पास नहीं आएगा। यदि कोई मेरे पास नहीं आएगा, तो मैंने जिस साधनालब्ध सत्य की उपलब्धि की है, उसका प्रचार कैसे करूंगा? इसलिए उन्होंने एक उपाय करने का निश्चय किया। उन्होंने साधना के अवान्तर फल के रूप में जो अलौकिक शक्तियां प्राप्त की थीं, उन शक्तियों का इस क्षेत्र में प्रयोग करने का निश्चय किया।

इस दौरान प्रतिदिन दो-चार सौ रोगी प्रभुश्री के पास आते थे और अपनी-अपनी अभिलाषाएं पूरी होने पर खुश होकर अपने-अपने घर लौटते थे। उस दौरान प्रभुश्री की कृपा से उदरशूल से ग्रस्त कम से कम तीन सौ रोगी अरोग्य हुए। अन्यान्य जटिल रोगों से ग्रस्त रोगियों की संख्या भी कम नहीं थी। पावना स्थित स्थल वसन्तपुर के जमींदार भीषण यक्ष्मा रोग से पीड़ित थे। वे प्रभुश्री के आश्रम में उपस्थित हुए। प्रभुश्री का प्रसाद लेते ही उनकी बीमारी ठीक हो गई। वह जमींदार अभी भी उस कृपा के बल से सुखशांति से रह रहे हैं।

बंगाल नागपुर रेलवे के एक इंजीनियर दृष्टिशक्ति खोकर समय से पूर्व सेवा निवृति लेने के लिए बाध्य हुए थे। दृष्टिशक्ति वापिस पाने

के लिये उन्होंने प्रभुश्री के पास पहुंच कर जैसे ही मन ही मन प्रार्थना की उनकी दृष्टि शक्ति लौट आई और वे किसी का सहारा लिये बिना अपने घर लौट आये।

इस रोग निरामय तत्त्व के संबंध में प्रभुश्री ने कहा है, "प्राणों के कंपन के बिना रोग का आरोग्य नहीं हो सकता है। औषधियां शरीर में कंपन पैदा करती हैं। शरीर में जिस धातु का अभाव होने के कारण रोग पैदा होता है, इस कंपन से वह धातु अपेक्षित मात्रा में भर जाता है। सच्चे साधुओं के पास भक्ति और विश्वास के साथ जाने से रोगी के शरीर में स्वतः ही वह कंपन पैदा हो कर जिस स्थान पर जिस चीज का अभाव रहता है वह पूरा हो जाता है। परन्तु प्रारब्धजन्य रोगों में स्थान विशेष पर साधु स्वयं कृपा कर अथवा प्रसाद या धूनी की राख खाने को देकर रोगी के शरीर में स्पन्दन पैदा कर देते हैं।"

प्रभुश्री की अलौकिक तप शक्ति के प्रभाव से अनेक निर्धनों को धन मिला अनेक निसन्तान लोगों को सन्तान प्राप्त हुई, जटिल रोगों से ग्रस्त अनेक लोग रोगमुक्त हुए। धनी, निर्धन, विद्वान, मूर्ख आदि सभी लोग अपनी-अपनी अभिलाषाएं पूरी करने उनके पास दौड़े चले आते थे। इस दौरान पभुश्री ने काम भावना से दूषित चित्त वाले मानवों के मन में पार्थिव सुख लाभ की इच्छा अधिक पाई। उन्हें नित्य वस्तु का प्रसंग उठाने का अवसर तक नहीं मिला। इस श्रेणी के लोगों की कामना पूरी करने के लिये उन्होंने "सिद्धि योग" नामक एक पुस्तक लिखना आरम्भ कर दिया। इसी समय उनके योगी गुरु स्वामी सुमेरुदास जी उनके सामने प्रकट हुए और उन्होंने उनका वह पुस्तक लिखना बन्द करा कर कहा, "मैंने तुझे ब्रह्मविद्या का वितरण करने का विशेष भार देकर समाज में भेजा, परन्तु तूने अविद्या का वितरण कर बंधन पर और बंधन कसना आरम्भ कर दिया है। तू अब ये सब बेकार की बातें छोड़।" श्रीगुरु की बात सुनकर शिष्य निगमानन्द ने कहा, "मैं स्वयं चाह कर कुछ नहीं कर रहा हूं, परन्तु मेरे दर्शन और स्पर्श करते ही उनकी अभिलाषाएं पूरी हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में मैं कर भी क्या सकता हूं?"

सुमेरुदास जी ने कहा, "तू योग ऐश्वर्य का संवरण कर। साधना के फलस्वरूप तुम्हारे अंतर में सत्य की जो विमल ज्योति खिल उठी है उसके प्रभाव से तू काम से कलुषित और मोह से आच्छन्न जीवों का अज्ञान नाश कर। किसी भी प्रकार की शक्ति का विकास मत कर। स्तुति और निंदा की अपेक्षा न रखकर और ब्रह्मभाव से अनुप्राणित हो कर सर्वसाधारण में ब्रह्मज्ञान का वितरण कर।"

उस दिन से प्रभुश्री ने सामान्य रूप से रोगों का निरामय करना बंद कर दिया। लोगों को बताया कि वे केवल अध्यात्म विद्या के जिज्ञासु लोगों से ही भेंट करेंगे। आश्चर्य की बात है कि उन्होंने जिस दिन से यह बन्द कर दिया, उस दिन से विभिन्न स्थानों से अध्यात्म-विद्या के जिज्ञासु उनके पास आने लगे। शिष्य-भक्तों के बुलावे पर उन्हें अनेक बार दुर्गापुर से ढाका और मैमनसिंह जाना पड़ता था।

इस दौरान अनेक लोगों को उनके पास आते-जाते देखकर गुप्तचर विभाग की पुलिस उनकी गतिविधियों पर नजर रखने लगी। एक दिन गुप्तचर पुलिस के अधिकारी, श्री शशि भूषण भट्टाचार्य वहां पहुंचे। वे प्रभुश्री की अचानक अन्तर्धान होने की क्षमता को देखकर उनका सच्चा स्वरूप समझ गए। इस घटना से शशि बाबू और उनके दर्शन प्राप्त करने के इच्छुक दूसरे लोग समझ गए कि चाहने मात्र से ही वे परमाणु की समष्टि से बने इस शरीर को कम्पन के द्वारा पल भर में ही परमाणु में बदल कर दूसरों के अलक्ष्य में अवस्थान कर सकते हैं। पुलिस विभाग के कर्मचारियों ने उन्हें कई प्रकार से परेशान करने की चेष्टा की, पर वे लोग उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सके। मनुष्य की क्षुद्र बुद्धि और क्षुद्र शक्ति महापुरुष की महान शक्ति के सामने नतमस्तक हो गई।

नवां अध्याय

योगमाया देवी

हेमलता का भाव

"योगी गुरु" पुस्तक के प्रकाशित हो जाने के बाद मैमनसिंह के उमाचरण सरकार के पते पर विभिन्न स्थानों से पत्र आने लगे। उस दौरान प्रभुश्री "योगी गुरु" के मुद्रण के बाद कलकत्ता में रह रहे थे। हेमलता ने प्रभुश्री के चले जाने के बाद घर पर कोई काम नहीं किया। वे दरवाजे बन्द कर कल्पना लोक में प्रभुश्री की स्मृति को अपने मानस पट पर चलचित्र की तरह देखने लगीं। इस बीच गोहाटी के यज्ञेश्वर बाबू को "योगीगुरु" पुस्तक प्राप्त हुई। उन्हें जब अपने भ्रमणकारी गुरू का पता चला, तो वे उमाचरण सरकार के पते पर प्रभुश्री को पत्न लिखने लगे। प्रभुश्री की अनुपस्थिति में जितने पत्न आते थे हेमलता देवी पहले उन्हें पढ़ती थीं और केवल जरूरी पत्नों को ही कलकत्ता भेज देती थीं। यज्ञेश्वर बाबू की पत्नी सरयू देवी के पत्रों को पढ़ने में हेमलता देवी को बहुत ही कौतूहल होता था। हेमलता ने देखा कि ऐसे और भी अनेक शिष्य हैं जो प्रभुश्री को प्रेम करते हैं और उनकी सेवा करने के लिए उत्सुक हैं। गौहाटी से उन पति-पत्नी के जो पत्र आते थे, वे इतने भावपूर्ण होते थे कि उन्हें पढ़कर हेमलता विस्मित हो जाती थीं। प्रभुश्री की समाधि अवस्था के चित्र उनके मन में उदित होकर उनमें जो व्याकुलता पैदा होती थी, उसे पढ़कर हेमलता देवी भाव विभोर हो उठती थीं। हेमलता को लगा कि सरयू देवी के पत्रों में अक्षरशः उनके मन की गुप्त बातें लिखी हुई हैं।

उन्होंने बिना विचार के जिसे हीरा समझा था, वह सचमुच हीरा है। इन सब बातों पर सोच विचार कर उन्होंने निश्चय किया कि मैं भी सरयू देवी की तरह प्रभुश्री को प्रेम करूंगी।

प्रभुश्री ने कलकत्ता से लौट कर दुर्गापुर के जमींदार के अनुरोध पर मैंमन सिंह छोड़ कोमिला में आश्रम बनाया। उनके मैंमन सिंह से चले आने के अगले दिन उमाचरण सरकार सपत्नीक आश्रम में उपस्थित हुए। उन्होंने वहां पर स्थायी रूप से रहकर साधना-भजन करने की इच्छा व्यक्त की।

प्रभुश्री ने आश्रम में सपत्नीक रह साधना करने की अनुमति नहीं दी। सरकार महोदय ने बहुत विनती की, परन्तु प्रभुश्री ने विरक्त होकर गंभीर भाव धारण कर लिया। घर का सन्नाटा तोड़ते हुए सरकार महोदय ने कहा, "क्या एक बात पूछ सकता हूं?" प्रभुश्री ने कहा, "पूछो"। उमाचरण ने प्रश्न किया, "आपके, 'योगीगुरु' ग्रंथ में इस प्रकार उल्लेख है, 'कृपा सिंधु फुरावेना विन्दु वितरने' (कृपा सागर में से मात्र एक बूंद वितरित कर देने से वह समाप्त नहीं हो जायेगा)। क्या वह आपने ही लिखा है?"

प्रभुश्री ने कोई उत्तर नहीं दिया अपितु वे पहले से अधिक गंभीर हो गये। सरकार महोदय उस मूर्ति के सामने अधिक समय तक नहीं बैठ पाये और धीरे-धीरे वहाँ से चले गये। कुछ दिन बाद जब उन्होंने आश्रम में रहने का पुनः अनुरोध किया, तो प्रभुश्री ने उन्हें समझाया कि यह मेरा आश्रम है, यहां पर पति-पत्नी के रूप में रहने की अनुमति देना मेरे लिए असम्भव है। यहां पर ठहर कर साधना करनी हो, तो भाई-बहन की तरह रहना होगा। परन्तु वह तुम्हारे लिये बड़ा कठिन होगा। फिर भी सरकार महोदय आश्रम से नहीं गये और अनन्य निष्ठा के साथ साधना करने लगे। हेमलता देवी ने रसोई संभाली। वे आने जाने वाले शिष्य भक्तों को प्रसाद बांटने का कार्य करने लगीं।

धीरे-धीरे सरकार महोदय अत्यन्त निष्ठा के साथ साधना कर योगमार्ग में उन्नति करने लगे। हेमलता देवी ने भी प्रभुश्री

की सेवा में स्वयं को न्योछावर कर दिया। इस प्रकार थोड़े दिन के भीतर उनमें विवेक जागृत हो गया। उन दोनों के बीच पति पत्नी का भाव दूर हो गया। इस दौरान ढाका के डाक्टर नृपेन्द्र चन्द्र राय और दूसरे अनेक भक्तों के परिवार तीर्थ भ्रमण पर प्रभुश्री को साथ ले गये। तीर्थ यात्रा में दूसरे शिष्य भक्तों के बच्चों को साथ जाते देखकर हेमलता ने भी उनके साथ चलने का आग्रह किया। उमाचरण सरकार ने हेमलता देवी को उनके साथ जाने दिया और स्वयं आश्रम का भार ग्रहण कर लिया। ज्यों ही साधक योग साधना में सफलता के करीब आता है, उस समय अनेक बाधा-विघ्न आड़े आते हैं। सरकार महोदय ने भी योग विघ्न का सामना किया। कुछ दुष्ट प्रकृति के लोग गाँव के भीतर किसी संन्यासी का आश्रम बनते देख कर पहले से ही क्षुब्ध थे। प्रभुश्री की अनुपस्थिति में उन्होंने सरकार महोदय को उनके विरुद्ध उकसाया। अन्त में उमाचरण आश्रम का सारा सामान लेकर एक रात कहीं चले गए।

जिस रात सरकार महोदय आश्रम का सारा समान लेकर चले गए संयोग से उसके ठीक अगले दिन सुबह प्रभुश्री नृपेन भाई आदि के साथ आश्रम में पधारे। उन्होंने आश्रम गृह को सूना पाया। वहां का सारा सामान गायब था और सरकार महोदय भी लापता थे। यह देखकर चण्डी ब्रह्मचारी पुलिस को रिपोर्ट करने चले गएं। उस समय हेमलता देवी की मानसिक स्थिति बड़ी दयनीय हो गई। उन्होने सोचा, श्रीगुरु के साथ यह कैसा विश्वासघात है। वे अपना मान बचाने के लिए भगवान से प्रार्थना करने लगीं।

प्रभुश्री सोचने लगे कि मैं संसार लीला देखने के लिए ईश्वर की इच्छा से लोक समाज में आया हूं। विषय जड़ित होकर पुलिस की सहायता से विषय पर स्वामित्व सिद्ध करना क्या ईश्वर की इच्छा है? मैं लोगों के द्वारा कर्म करा कर उसके बदले में उन पर कृपा करने के लिए महाशून्य अवस्था से लोक समाज में आया हूं। सगुण भाव की लीला कितनी विचित्र है, वह पहले इस लोक चरित्र में प्रकट हो रहा है। ईश्वर कहीं पर पत्नी बन कर पति को प्रतारित कर रहे हैं,

माँ योगमाया देवी

कहीं पर चोरी कर हिरासत में जा रहे हैं और कहीं पर न्यायपीठ पर बैठकर दोषी व्यक्तियों को दण्ड दे रहे हैं। लीलामय की यह सब लीला-चातुरी प्रभुश्री के ज्ञाननेत्र के समक्ष प्रस्फुटित हुई। उस समय वे एक प्रकार की मधुर लीला का आनन्द लेने लगे। प्रभुश्री ने देखा कि उमाचरण उस अनन्त वैचित्र्यपूर्ण जगत का एक क्षुद्र दृश्य है। पुलिस सरकार महोदय को पकड़ कर मामले की जांच करने आई। प्रभुश्री ने पुनः देखा वही लीलामय, पुलिस और चोर बनकर भिन्न-भिन्न शरीरों में अभूतपूर्व संसार लीला कर रहे हैं। परन्तु पुलिस या चोर किसी को भी इसकी जानकारी नहीं है। वे सब गुण के आवरण से निद्रित हैं। लीलामय शुद्धसत्त्वमय शरीर के भीतर स्वरूप से विस्मृत लोगों को धक्के देकर उन्हें जागृत करने की चेष्टा कर रहे हैं। प्रभुश्री के विस्मय की सीमा नहीं रही। बाद में प्रभुश्री ने उमाचरण के पक्ष में बयान देकर उन्हें जाने देने के लिए पुलिस से अनुरोध किया और उमाचरण जो सामान और नकदी लेकर चले गए थे, वह सब उन्हें लौटा दिया। इस बात का रहस्य किसी की समझ में नहीं आया। किसी के पूछने पर प्रभुश्री ने बताया कि चोर जिस चीज को छू लेता है, वह साधुओं के व्यवहार के लिए निषिद्ध है। सरकार महोदय के जाते समय प्रभुश्री ने हेमलता को भी उनके साथ जाने का आदेश दिया। परन्तु सरकार महोदय ने अपमान और क्रोधवश अपनी पत्नी हेमलता को साथ ले जाने से इन्कार कर दिया। इस पर हेमलता देवी मूर्छित होकर गिर पड़ीं।

समय बीतता गया, पर सरकार महोदय नहीं लौटे। पति गृह ही हिन्दू नारी के लिए तीर्थ के समान है। परन्तु पति ने जिस नारी का परित्याग कर दिया है और जिसके लिए आज साधु के आश्रम में थोड़ा सा स्थान नहीं है, शास्त्र क्या एसी नारी को साध्वी बनने की आज्ञा नहीं देते हैं? जो अवस्था पुरुषों को प्राप्त करने का अधिकार है, न्याय धर्म के अनुसार नारियों को भी वैसा ही अधिकार मिलना चाहिए। हेमलता देवी ने इन बातों पर विचार कर प्रभुश्री से पूछा, "प्रभो, क्या नारियों की आत्मा है?" प्रभुश्री ने कहा, "हां, है।" हेमलता ने पूछा,

"प्रभो, यदि नारियों की आत्मा है, तो मेरा नारी के रूप में जो सृजन हुआ है, क्या मेरे शरीर पर केवल दूसरों का ही अधिकार है, उस पर मेरा अपना कोई अधिकार नहीं है ? यदि मैं सोचूं कि मैं चिन्मात्र आत्मा हूं तो क्या मेरा पत्नीत्व नहीं मिट सकता।"

प्रभुश्री—अधीनता को अस्वीकार करते ही उसे स्वतंत्र कहा जाएगा। तब आत्मा की उपलब्धि निर्विशेष रूप में करना सविशेष आत्मा के लिए साधना सापेक्ष है। केवल निर्वाण मुक्ति के प्रारम्भ में ही वह भाव आ सकता है।

हेमलता—आत्मा के लिए फिर सविशेष या निर्विशेष क्या है ? क्या आत्मा सब समय निर्विशेष नहीं है ? प्रभुश्री—हां, है। आत्मा की स्वरूप अवस्था ही निर्विशेष अवस्था है। आत्मा एकत्वबोधकारी सत्य है, जैसे बिजली। जिस प्रकार बिजली में नेगेटिव (Negative) और पजिटिव (Positive) है, पुरुष आत्मा और नारी आत्मा ठीक उसी प्रकार की है। साधना के द्वारा नारी और पुरुष धीरे-धीरे उन्नत होकर उनके चरम आदर्श राधा और कृष्ण तथा शिव और शक्ति में लय होते हैं। एकमात्र ज्ञान की साधना से चरम अवस्था में परमहंसत्व प्राप्त होता है। उस समय आत्मा की निर्विशेष अवस्था की उपलब्धि की जाती है। अतः निर्विकल्प समाधि के अतिरिक्त आत्मा की निर्विशेष अवस्था को समझना कठिन है। निर्विशेष अवस्था प्राप्त होने पर नारी-पुरुष का भेदभाव मिट जाता है। इसके पूर्वक्षण तक जीवों में परस्पर के प्रति आसक्ति रहती है। अतः तुम भी उस भाव से रहित नहीं हो। तुम गृहस्थ हो। घर में पति और पत्नी एक दूसरे के भाव को आत्मस्थ कर उन्नति के पथ पर अग्रसर होते हैं। किसी नारी को अपने पति को छोड़ कठोर साधना करते हुए कहीं भी नहीं देखा गया है। इतिहास से पता चलता है कि ऋषि पत्नियाँ पति के घर में रहकर साधना आदि करती थीं।

हेमलता—उसके बाद के युग में गोपियों ने पति के घर पर साधना नहीं की है ?

प्रभुश्री—गोपियां रूप की आसक्तिवश प्रेम करने गईं थीं, साधना करने नहीं। उस समय समाज के बंधन बहुत शिथिल थे। अभी भी उस क्षेत्र में सामाजिक बंधन शिथिल हैं।

हेमलता—मीराबाई ?

प्रभुश्री—हां, मीराबाई आईं थीं। केवल उत्कट वैराग्य होने पर सब बंधन टूट जाते हैं।

हेमलता—महापुरुषों में तो नारी-पुरुष का भेद-ज्ञान मिट जाता है। अतः आप तो मुझे अपने आश्रम में थोड़ा सा स्थान दे सकते हैं ?

प्रभुश्री—नहीं, यह नहीं हो सकता। मैं केवल अपने को लेकर नहीं हूं। मेरे कर्मक्षेत्र में जो एकत्र होंगे, वे तो भेद का ज्ञान मिटाकर मेरे पास नहीं आएंगे।

यह सुनकर हेमलता व्याकुल होकर कहने लगीं, "मुझे संन्यास देकर इस संसार बंधन से मुक्त कर दीजिए, मुझे संन्यास दीजिये।" इस तरह कुछ दिन बीत गए। प्रभुश्री ने तरह-तरह से सोच कर मन ही मन हेमलता को संन्यास देने का निश्चय किया। संन्यास देने का दिन निश्चय कर सब कुछ प्रबन्ध कर दिया। प्रभुश्री ने यथा विधान संस्कार करने के बाद देखा कि प्रेममयी हेमलता के गले को पकड़ कर संन्यास की साक्षी के रूप में खड़ी हैं। उसे देखकर प्रभुश्री ने उनका नाम "योगमाया" रखा। "प्रेममयी" धीरे-धीरे योगमाया के शरीर में विलीन हो गई। इसके बाद प्रभुश्री ने शक्ति का संचार करने के उद्देश्य से योगमाया को स्पर्श किया। उनके स्पर्श करते ही योगमाया मूर्छित होकर गिर पड़ीं। लगभग दो-तीन घंटे के बाद उनकी बाह्य चेतना लौटी। चेतना लौटने पर उन्होंने कहा, "किसलिए मुझे लौटा लाए ? मैं तो आनन्द में थी।" प्रभुश्री ने हंसते हुए प्रश्न किया, "कहाँ थी ?"

योगमाया—वह तो मैं नहीं जानती। किसी अव्यक्त और माधुर्य-पूर्ण अवस्था में थी, मुझे लौटा लाए किसलिए ?

प्रभुश्री—जिस प्रकार ताप के स्पर्श से कोई वस्तु या रस युक्त पदार्थ फैलने लगता है, मनुष्य के भीतर भी वैसा ही रस है। यह बिल्कुल स्थूल भाव का रस नहीं है। इसे आनन्द या भाव कहते हैं। यदि कोई शक्तिशाली पुरुष अपनी शक्ति को किसी दूसरे के शरीर में प्रवेश कराता है, तो सामयिक भाव से गुण से आवृत अथवा मलिनता युक्त भाव फैल जाता है। दीक्षा की शक्ति से तुम्हारे भीतर उस भाव का उद्‌बोधन हुआ था।

योगमाया—मैं किस उपाय से इस शक्ति को निरन्तर जागृत रख कर इस भाव में निमज्जित रह सकूंगी ?

प्रभुश्री— तुम जिस शक्ति से अपने अध्यात्म भाव या आनन्द को अनवरत जागृत रख सकोगी, वह तुम्हारे अनजाने में ही तुम्हारे समूचे शरीर में व्याप्त रह कर तुम्हारे शरीर रूपी यंत्र को क्रियाशील कर रही है। यदि तुम अपने शरीर में व्याप्त सब शक्तियों को मानसिक शक्ति के बल से एकत्र कर मूलाधार में स्थित शक्ति के साथ मिलाकर उस शक्ति को सुषुम्ना के रास्ते सहसार में ले जाकर परमशिव के साथ मिला सकोगी, तो तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी। अन्यथा बार-बार जन्म लेने और मरने के गतानुगतिक पथ पर जाना होगा। अब तुम स्वयं को उस कुण्डलिनी शक्ति से अभिन्न मानकर साधना में अग्रसर होओ। वह इतने दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठी है। इस प्रकार वह प्रत्येक जीव की प्रतीक्षा में प्रत्येक शरीर में बैठी रहती है। समय आने पर उनकी ओर दृष्टि जाती है।

योगमाया देवी की साधना और सेवा

इस आश्रम में रहकर योगमाया देवी ने एकनिष्ठ भाव से गुरुसेवा और उसके साथ-साथ साधना करके वहां पर स्थित गुरु आसन में समाधि अथवा सिद्धि प्राप्त की। सिद्धि प्राप्त करने के बाद उन्होंने प्रभुश्री के शिष्य-भक्तों के लिए माँ का स्थान लिया और सभी ने उनके

प्रति भक्ति और आदर प्रकट किया। समारोहों के समय माँ योगमाया अथक परिश्रम करके भी मुस्कराते हुए भक्तों को प्रसाद बांटती थीं। उस समय वे साक्षात् अन्नपूर्णा लगती थीं। वे हर समय प्रसन्न और हंसमुख रहती थीं। प्रभुश्री ने कठोर साधना से जो शक्ति प्राप्त की थी, माँ योगमाया अपनी निश्चल और निस्वार्थ गुरुसेवा और प्रेम-भक्ति के बल पर उस दुर्लभ वस्तु और तत्त्व की अधिकारी बन सकी थीं। माँ योगमाया ने १३४८ बंगाब्द में १५ अग्रहायण वृहस्पतिवार को रात साढ़े दस बजे ध्यानस्थ होकर मंत्र जप करते हुए देह त्याग दिया।

●

दसवां अध्याय

सारस्वत मठ

ढाका आगमन

जमींदार श्री नरेन्द्र नारायण रायचौधरी और डाक्टर नृपेन्द्र चन्द्र राय के विशेष आग्रह पर प्रभुश्री कोमिल्ला से ढाका चले गए। उस समय ढाका के फरीदाबाद क्षेत्र में एक अस्थायी घर में आश्रम का कार्य चलने लगा। इस दौरान अनेक लोग प्रभुश्री के पास आने-जाने लगे। उनसे बार-बार मिलने के परिणामस्वरूप जिन थोड़े बहुत लोगों से प्रभुश्री के सम्बन्ध घनिष्ठ हो गए, उनमें डाक्टर राजचन्द्र धर का नाम उल्लेखनीय है। प्रभुश्री की अनुमति लेकर राजचन्द्र अपने दो पुत्रों और दो कन्याओं को साथ लेकर सपरिवार आश्रम में रहने लगे। इन्हीं राजचन्द्र को संन्यास देने के बाद प्रभुश्री ने उनका नाम स्वामी स्वरूपानन्द रखा। उनके ज्येष्ठ पुत्र, नरेन्द्र नाथ ने एम० ए० पास किया था। आश्रम में उनका नाम वरदा ब्रह्मचारी था। बाद में वे स्वामी निर्वाणानन्द के रूप में जाने गए।

इस दौरान ढाका में प्रभुश्री का सम्मान बढ़ गया। उन्हें विभिन्न स्थानों से बुलावा आया। माणिकगंज के वकील श्री रजनी मोहन बसाक के अनुरोध पर प्रभुश्री माणिकगंज गए। वहां पर कीर्तन सुनकर वे भावस्थ हो गए। उस समय जिन लोगों ने प्रभुश्री को छुआ, वे भी उसी क्षण समाधिस्थ हो गए। स्थानीय उच्च विद्यालय के अध्यापक श्री कामाख्या चरण राय प्रभुश्री को छूकर ३-४ घंटे तक चेतनाहीन अवस्था में रहे। उसके बाद उनमें भावोन्माद दिखाई दिया। बाद में प्रभुश्री उनकी

बाह्य चेतना लौटा लाए। प्रभुश्री की जागृत शक्ति के संस्पर्श में आकर किस प्रकार बाह्य चेतना चली जाती है, उसका वर्णन इससे पहले "योगमाया देवी" के प्रसंग में किया गया है। प्रभुश्री ने आश्रम लौट कर अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "ज्ञानी गुरु", "तांत्रिक गुरु" और "प्रेमिक गुरु" लिखे और उनका प्रकाशन किया। माणिकगंज में प्रभुश्री का ईश्वरीय भाव देखकर लोग बहुत मुग्ध हो गए। तत्कालीन प्रमुख दैनिक "बंगाली" में उनके असाधारण योग-ऐश्वर्य की बात प्रकाशित होने लगी।

शांति आश्रम

ढाका में लगभग एक वर्ष रहने के बाद प्रभुश्री ने सरुराम के जरिए असम के शिवसागर जिले के अन्तर्गत जोरहाट सब-डिवीजन में कुछ जमीन पट्टे पर लेकर १३१९ बंगाब्द के वैशाख मास में अक्षय तृतीया को वहां पर एक आश्रम की स्थापना की और उसका नाम 'शांति आश्रम' रखा। बाद में इसका नाम "असम बंगीय सारस्वत मठ" हुआ।

प्रभुश्री ने जिस उद्देश्य को लेकर असम की वीरान घाटी में आश्रम की स्थापना की थी, धीरे-धीरे उस आश्रम की उन्नति होने लगी। सर्वसाधारण इस आश्रम के भीतरी भाव और सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट हुए।

सारस्वत मठ का वर्णन

सारस्वत मठ जोरहाट से प्रायः छह मील दूर एक खुले मैदान में स्थित है। मठ के तीन ओर दो-तीन मील तक कोई जन बस्ती नहीं है। दूसरी दिशा में मिरि नामक सरल स्वभाव वाले पहाड़ी लोगों का एक छोटा सा गांव है। मिरियाणी–जोरहाट छोटी रेल लाइन उस गांव से होकर कोकिलामुख तक जाती है। आश्रम के उत्तर में पर्वतराज हिमालय, पूर्व में उदयगिरि और दक्षिण में नागा पहाड़ है। जिस समय आकाश में बादल नहीं होते, तब वहां हिमाच्छादित हिमालय की

चोटियां और दिग-दिगन्त तक फैली पर्वत शृंखलाओं के मनोरम दृश्य जनजन का मन मोह लेते हैं। मठ के प्रवेश द्वार के सामने नागेश्वर फूल के पेड़ पंक्तिबद्ध खड़े हैं। विस्तृत कृषिक्षेत्र के पास बहुत बड़ी गौशाला, तालाब के ईशान कोण में रमणीक बिल्वकुंज के भीतर शिवालय और योग साधना का कुटीर, पश्चिम में सुवासित फूलों के अनगिनत पौधों के बीच से प्रवेश पथ जाता है। सामने "शांति आश्रम", "निगमागम पाठागार" और "धर्मार्थ औषधालय", बाईं ओर ब्रह्मचारी निवास, उसके दक्षिण में मुद्रणालय, हथकरघा और भिन्न-भिन्न वृक्षों की छाया से स्निग्ध ऋषि विद्यालय का विस्तृत शिक्षा क्षेत्र है। शांति आश्रम के उत्तर में मठ का आश्रम गृह, पश्चिम में सेवकों की रसोई और दक्षिण में भण्डार गृह है।

प्राचीन इतिहास और पुराणों में तपोवन का वर्णन पढ़ कर मानस पटल पर जो काल्पनिक दृश्य अंकित होता है, इस आश्रम में आने पर वैसा ही चित्र प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। यहां पर तेजोदीप्त ब्रह्मचारियों के हंसमुख चेहरे तथा मन, वचन और कर्म से कर्त्तव्य के प्रति उनकी निष्ठा देखने को मिलती है। इसके अतिरिक्त यहां पर गाय चराने, हल चलाने, सांध्य वंदना करने, पुष्प चयन, शास्त्र अध्ययन और तपस्या करने जैसे प्राचीन तपोवन के अक्षुण्ण दृश्य देखने को मिलते हैं।

मठ का गौरव

सारस्वत मठ से गुरु शक्ति बंगाल, बिहार, उड़ीसा राजपूताना, इन्दौर, मध्य भारत, गुजरात आदि भारत के विभिन्न क्षेत्रों और सुदूर ब्रह्मदेश तक फैलने लगी। उच्च राजकीय अधिकारी मठ के कार्यकलापों की ओर आकर्षित होकर मठ देखने आए और उन्होंने उसकी सच्चाई से अवगत होकर उसके प्रति भारी श्रद्धा दिखाई। धीरे-धीरे देशवासी मठ की ओर आकर्षित हुए। भक्तजन तत्त्व जानने के लिए मठ में समवेत हुए और इस प्रकार उन्होंने मठ को एक तीर्थ स्थान में बदल दिया। पहले-पहल मठ में हस्तचालित मुद्रणयंत्र रखा

गया। बाद में उसे स्वचालित बड़े मुद्रणालय में बदल दिया गया। इस मुद्रणालय में प्रभुश्री द्वारा प्रणीत "सारस्वत ग्रंथावली" और "आर्य दर्पण" नामक मासिक पत्रिका का मुद्रण किया जाने लगा। यहां पर बढ़ई और लोहार का काम करने की शिक्षा भी दी गई। आवश्यक कपडे बुनने के लिए करघा लगाया गया। मोटे तौर पर मठ हर दृष्टि से आत्मनिर्भर बनता गया। धीरे-धीरे वह धर्मायतन, शांति भवन और आनन्द धाम के रूप मे आदर्श कर्मक्षेत्र, कला भवन और शिक्षायतन में बदल गया।

इस दौरान प्रभुश्री ने वरदा ब्रह्मचारी को प्राच्य और पाश्चात्य विद्या की उच्च शिक्षा दिलाई और ऋषि विद्यालय का भार उन्हें सौंप दिया। स्थानीय दलित लोगों और रोगियों को आश्रय देकर उनके खाने पहनने तथा औषध आदि की व्यवस्था करने तथा बाढ़ आदि प्राकृतिक विपदाओं में उनकी सहायता करने के उद्‌देश्य से मठ के विशेष अंग के रूप में "गौरांग अनाथ निकेतन" की स्थापना की गई।

बाद में विभिन्न स्थानों से निमंत्रण प्राप्त होने पर मठ के आदर्श पर बंगाल के पांच विभागों में पांच विभागीय आश्रमों की स्थापना की गई।

प्रभुश्री ने होनहार युवक वरदा ब्रह्मचारी पर मठ का समस्त भार सौंप कर स्वयं कर्म क्षेत्र से निवृत्ति पा ली। कुछ दिन बाद वरदा ब्रह्मचारी एकांत में साधना-भजन करने के लिए मठ छोड़ कर चले गए। इसलिए प्रभुश्री ने प्रज्ञानन्द स्वामी पर मठ का समस्त भार सौंपा। उसके बाद स्वयं मठ और आश्रमों से सब सम्बन्ध तोड़ कर पुरीधाम में निर्जनवास करने चले आए। पुरी आने के बाद उन्होंने शिष्य-भक्तों से मिलने का निषेध कर दिया। इस आध्यात्मिक जगत के व्यापार को देखकर कोई कुछ नहीं समझ पाया। इससे शिष्य-भक्त बहुत दुःखी हुए।

मुख्तारनामा

प्रभुश्री ने जनहितकारी इन संस्थानों की स्थापना कर इसके समुचित प्रबन्ध के लिए नियम-विनियम बना दिए और यह सुनिश्चित

करने हेतु कि भविष्य में इन सब का प्रयोग किसी व्यक्तिगत स्वार्थ को पूरा करने के लिए न हो, उन्होंने एक मुख्तारनामा पंजीकृत करा दिया। इसके लिए गृहस्थों और संन्यासियों में से ११ न्यासी चुने गए। उनके ऊपर इन संस्थानों का सारा भार सौंपा गया। इसके बाद प्रभुश्री ने कर्मक्षेत्र से सेवा निवृत्ति ले ली।

सेवा निवृत्ति

प्रभुश्री ने विशाल क्षेत्र तैयार कर उसमें बीज बोया ताकि वह क्षेत्र फलफूल सके और उसके बाद उसके बारे में ध्यान करने लगे। कछुआ अंडे देने के बाद इधर-उधर घूमता है, परन्तु उसका मन सदैव उन अंडों पर ही रहता है। कछुए के इस ध्यान से अंडे फूटते हैं। ठीक वैसे ही जो महापुरुष सहज अवस्था प्राप्त कर लेते हैं, वे अपने शिष्य-भक्तों के साथ घुलमिलकर पहले उनकी त्रुटियों की पूरी जानकारी ले लेते हैं और उसके बाद एक स्थान पर स्थिर होकर बैठ कर उन शिष्य-भक्तों का चिन्तन करते हैं। सर्वप्रथम प्रभुश्री ने अपने शिष्य-भक्तों के साथ घुलमिलकर उनके अज्ञान का स्तर अच्छी तरह जान लिया और उसके बाद वे उन्हें किस प्रकार उन्नत बनाएंगे, उसके बारे में चिन्तन करने हेतु निर्जन वास करने लगे।

तत्त्वदर्शी महापुरुषों को अज्ञानता का नाश करने का भार दिया जाता है। अज्ञानता के भी भिन्न-भिन्न स्तर होते हैं। विभिन्न स्तरों के अज्ञान का नाश करने का भार भिन्न-भिन्न महापुरुषों पर रहता है। जिस साधु में जितनी क्षमता होती है, उन पर उतने ही बड़े स्तर का भार रहता है। बड़ा स्तर कहने का तात्पर्य अधिक अज्ञान से है। जिन साधुओं को अधिक अज्ञान का नाश करने का भार दिया जाता है, वे अपने शिष्यों के अज्ञान के स्तर को समझ कर उनमें आत्मविस्तृति करने के उद्देश्य से उन पर बाह्य कर्म का भार बढ़ाने के लिए विवश होते हैं। अधिक अज्ञान का भार वहन करना हो तो अपने पतन की भी यथेष्ट संभावना रहती है। जिस समय आदि शंकर ने तांत्रिक उभय भारती

को पराजित करने के उद्‌देश्य से कामकला-तत्त्व सीखने के लिए राजा अमर के शरीर में प्रवेश किया था, उस समय उनका भी पतन हुआ था।

शिष्यों के अज्ञान का नाश और उनका मानसिक विकास तब तक नहीं हो पाता जब तक कि उन्हें निष्काम कर्मयोग के भीतर प्रवेश नहीं कराया जाता। इस कर्म को बढ़ाते जाकर तत्त्वदर्शी महापुरुषों के भी पतन का भय बना रहता है, क्योंकि अध्यात्मकारणवश स्वयं को विभिन्न परिस्थितियों में डालकर फिर उनसे निकलने के लिए अनेक समय कष्ट उठाने पड़ते हैं। साधना कर प्रारब्ध का क्षय करते हुए ज्ञान प्राप्त करना सहज नहीं है। सब लोगों का शरीर साधना के अनुकूल नहीं होता। बहुत से लोगों में तो विश्वास का भी अभाव रहता है। किसी-किसी में शिक्षा का अभाव रहता है तो कोई ब्रह्मचर्य की साधना नहीं करता और किसी-किसी को खाने-पीने का अभाव रहता है। अतः तत्त्वदर्शी गुरु उनके मन पर प्रभाव डालकर उसका मैल दूर करने के उद्‌देश्य से उन्हें ऐसे कर्म में प्रवृत्त कराते हैं जिससे कि वे निष्काम कर्म कर सकें अथवा अनेक लोगों का हित करने वाला कर्म कर सकें। प्रभुश्री का कर्म क्षेत्र इतनी तेजी से बढ़ता गया कि वे अंत में शिष्यों पर कर्म का भार डाल कर उनमें शक्ति का संचार करने के उद्‌देश्य से पुरी धाम चले आए।

नीलाचलवासियों की दृष्टि

प्रभुश्री पुरीधाम पहुंच कर पहले पहल 'गिरि कुटीर" नामक किराये के एक मकान में रहने लगे। बाद में उन्होंने गोवर्द्धन मठ से एक पक्का घर खरीदकर उसका नाम **"नीलाचल कुटीर"** रखा और वहीं विश्राम करने लगे। सर्वप्रथम प्रभुश्री पर गोवर्द्धन मठ के निवासियों की दृष्टि पड़ी। प्रतिदिन उनके पास अनेक पत्र, पार्सल, मनी आर्डर और टेलीग्राम आते थे। इसलिए उन पर डाक और रेल विभाग के कर्मचारियों की दृष्टि भी पड़ी। समुद्र के तट पर भ्रमण करते समय उनकी सौम्यमूर्ति देखकर पर्यटक उनकी ओर आकृष्ट हुए।

अंत में लोगों को पता चला कि इस "नीलाचल कुटीर" में योगी गुरु ग्रन्थ के प्रणेता स्वामी निगमानन्द परमहंस रह रहे हैं। वे संन्यासी हैं, फिर भी उनके घर पर महिलाओं का कण्ठस्वर सुनाई देता है। समुद्र तट पर भ्रमण पर जाते समय महिलाएं और बच्चे उनके पीछे भ्रमण पर जा रहे होते थे। साधु होते हुए भी वे कौपीन नहीं पहनते हैं। उनकी वेशभूषा विलासी सभ्रान्त लोगों के समान है। यह सब देख कर पुरी के लोगों के मन में सन्देह पैदा हो गया। वे प्रभुश्री से मिल नहीं पाए। प्रभुश्री जिस उद्देश्य को लेकर पुरी धाम आए थे, उपर्युक्त कारणों से वह उद्‌देश्य पूरा हुआ। यह समझाने पर भी कि श्रीगुरु के साथ स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म संबंध अधिक फलप्रद होते हैं, शिष्य-भक्त इस बात को नहीं समझ पाए। इसलिए प्रभुश्री ने उनकी मंगल-कामना को लेकर पुरी में निर्जन वास करना शुरु किया।

पुरी में दैनन्दिन जीवन

जिस प्रकार कर्म से क्लांत शरीर विश्राम के समय निद्रा की गोद में लुढक जाता है, प्रभुश्री विल्कुल वैसा ही करते थे। उनकी जैसी निद्रा दूसरे साधुओं में शायद ही दिखाई देती है।

नीलाचल कुटीर में रहते समय प्रभुश्री की दिनचर्या जैसी थी, उसका विवरण नीचे दिया गया है—

प्रातः ५ से ६ बजे—अंग संवाहन
प्रातः ६ से ६.३० बजे—तम्बाकू सेवन
प्रातः ६.३० से ७.०० बजे—शौचाचार
प्रातः ७.०० से ७.३० बजे प्रातः कृत्य, दंत मार्जन इत्यादि
प्रातः ७.३० से ८.०० बजे जलपान।

ग्रीष्म, वर्षा और शीत आदि मौसम के बदलने के साथ उपर्युक्त दिनचर्या में सामान्य परिवर्तन होता था। साधारणतया ८.३० से ९ बजे के बीच सुबह का नाश्ता लेकर प्रभुश्री भूमितल के पूर्व पार्श्व के कमरे में बड़ी मेज के पास कुर्सी पर बैठकर पत्रों का उत्तर लिखते थे और

दैनन्दिन आय व्यय का हिसाब देखते थे। उसके बाद कुछ समय के लिए समाचार पत्र पढ़ते थे। कभी-कभी असमय यदि कोई आगन्तुक आ जाता था, तो आवश्यक होने पर वे उत्तर पार्श्व के आसन बरामदे पर बैठ कर उनसे बातचीत करते थे।

पुरी के पते पर साप्ताहिक 'बसुमती" और मासिक "भारत वर्ष" नामक पत्रिकाएं आती थीं। प्रभुश्री सुबह और दोपहर के भोग के बाद इन पत्रिकाओं को पढ़ते थे। उस समय साप्ताहिक "बसुमती" का आकार बहुत बड़ा था। वे प्रतिदिन एक-दो पृष्ठ करके उसे पूरा करते थे। सुबह के करीब दस बजे उनके शरीर पर तेल की मालिश करने के लिए उत्तर पार्श्व के बरामदे में कुर्सी रखी जाती थी। प्रभुश्री उस पर बैठते थे और सेवक लगभग ४५ मिनट से एक घंटे तक उनके श्रीअंग पर तेल की मालिश करता था। उस दौरान प्रभुश्री दत्तचित्त होकर पत्र-पत्रिकाएं पढ़ते थे। अन्त में जब सिर पर तेल लगाने का समय आता था प्रभुश्री बाध्य होकर चश्मा उतार लेते थे। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि लिखने-पढ़ने के समय के अतिरिक्त वे अन्य समय चश्मे का प्रयोग नहीं करते थे। तेल की मालिश हो जाने के बाद उस बरामदे के एक छोर पर (छोटे कमरे के पास) कुर्सी डालकर उस पर दो बाल्टियों में पानी भर कर रख दिया जाता था। प्रभुश्री स्वयं लोटे में पानी लेकर अपने शरीर पर डालते थे। एक बाल्टी पानी डाल लेने के बाद सेवक उनकी गात्रमार्जना कर देता था। तेल की मालिश के बाद प्रभुश्री के बालों का जूडा बांध दिया जाता था। गात्रमर्जना के बाद उस जूडे को खोलकर और एक बाल्टी पानी से वे स्नान समाप्त करते थे।

उसके बाद सेवक उनके शरीर और सिर के कुछ भागों को पोंछ देता था। उसके बाद वे स्वयं अपने तौलिए से शरीर का निम्नभाग पोंछ लेते थे और सूखे कपड़े पहन कर गीले कपड़े रख देते थे। उसके बाद वे खड़ाऊ पहन कर कुर्सी पर बैठते थे। सेवक उनके बालों को अच्छी तरह प्रसाधन कर चोटी बांध देता था। इस समय प्रभुश्री आत्ममग्न होकर शायद इष्ट मंत्र का जप करते थे। उस समय उनका चेहरा बहुत ही भव्य दीख पड़ता था। साढ़े ग्यारह बजे से

१२ बजे के बीच उन्हें मध्याह्न भोग दिया जाता था। विशेष कारणों से अथवा उत्सवों के दिनों में इसमें सामान्य विलंब होता था।

मध्याह्न भोजन करने तक प्रभुश्री नीचे के कमरे में रहते थे। यह क्रम सन १३३६ बंगाब्द तक चला था। उसके बाद नीचे के कमरे की बड़ी मेज को लीला माँ की पढ़ाई के लिए छोड़कर प्रभुश्री सुबह के नाश्ते के बाद ऊपर के कमरे की छोटी मेज पर अपना काम करते थे। उस समय वे स्नान करने के लिए लगभग १० बजे नीचे आते थे।

मध्याह्न भोग के बाद वे हाथ मुंह धोकर एक बार लघुशंका करते थे। उसके बाद वे बीच के कमरे की कुर्सी पर, जिस पर उन्हें बाहर बैंठने दिया जाता था, पांच-सात मिनट बैठकर ऊपर जाकर बरामदे में रखी कुर्सी पर दो-तीन मिनट विश्राम करते थे। दमे की तकलीफ के कारण सीढ़ियां चढ़ने से पहले और उतरने के बाद उन्हें इस तरह विश्राम करना पड़ता था।

उसके बाद वे शयन कक्ष में जाकर छोटी चारपाई पर लगभग एक घंटा वीरासन करते थे। उस समय उन्हें पान और तम्बाकू दिया जाता था। उनका सेवन करते समय वे पुन: चिट्ठी और पत्रिकाएं पढ़ते थे। दोपहर के दो बजे वे चांदी के बड़े गिलास में एक गिलास पानी पीकर बड़े पलंग पर सोते थे। साढ़े तीन बजे जागकर तम्बाकू लेते थे और पुन: चार-साढ़े चार बजे पाखाने जाते थे। उसके बाद वे हाथ मुंह धोकर लगभग पांच बजे समुद्र के तट पर भ्रमण करने जाते थे और शाम के साढ़े छह या सात बजे लौटते थे। उनके कुटीर लौटने के बाद मनु माँ (लीला) उन्हें धूप देती थीं और प्रणाम करती थीं तथा स्त्रोत्र का पाठ करती थीं। उसके बाद वे कुछ फल, मिष्ठान्न और भांग खाकर ऊपर चले जाते थे। जिस दिन वे घूमने नहीं जाते थे उस दिन छत के ऊपर कुर्सी पर बैठते थे। परन्तु जिस दिन कोई दर्शनार्थी होता था, उस दिन शाम के नाश्ते के बाद आसन के बरामदे पर बैठते थे। कभी-कभी वर्षा के कारण अथवा किसी अन्य कारण से घूमने नहीं जाते थे। उस दिन यदि कोई दर्शनार्थी होता तो प्रभुश्री छत पर न बैठकर बरामदे में उनसे वार्तालाप करते थे या उन्हें उपदेश देते थे।

साधारणतया सांध्य भोग के बाद प्रभुश्री रात के नौ बजे तक ऊपर के बरामदे में छोटी चारपाई पर अथवा गर्मी के दिनों में शीतल चटाई बिछाकर उस बिस्तर पर गोल सिरहाने की ओर झुक कर अर्ध-शायित अवस्था में चित्त होकर अपने भाव में निमग्न रहते थे। अपराह्न में प्रभुश्री नींद से जागकर अपने आप ही जटाओं को इकट्ठा कर जूड़ा बना लेते थे। शाम को जब वे विश्राम करते थे, सेवक उनका अंगमर्दन कर केश प्रसाधन करता था और बालों की दो चोटियां बना कर पीछे को जूड़ा जैसे बना देता था।

रात को नौ-साढ़े नौ के बीच रात्रि भोग होता था। भोग के बाद वे पुनः ऊपर के बरामदे में शाम को बिछाए गए बिस्तर पर बैठ कर वीरासन पर कुछ क्षण अधलेटे पान और तम्बाकू खाते थे और रात के लगभग ११ बजे एक गिलास पानी पीकर सो जाते थे। आमतौर पर रात के दो-ढाई बजे के बाद उनकी नींद टूट जाती थी।

वे रात-दिन में चार बार पानी पीते थे। दिन में दो बार पाखाने जाते थे और रात को खाने के बाद दो बार लघुशंका करते थे। इसके अतिरिक्त रात को एक बार जाग कर लघुशंका करते थे। वे शायद ही असमय शौच या लघुशंका करते थे। आखिरी के दिनों में दमे की तकलीफ के कारण वे एकादशी व्रत का पालन करते थे। उस दिन दोपहर को एक गिलास शर्बत और शाम को एक चिलम गांजे के अतिरिक्त और कुछ नहीं लेते थे। प्रभुश्री इतना कम खाते थे कि आंखों से देखे बिना उस पर किसी को विश्वास नहीं होगा। दिन रात के भीतर दो बार आधा सेर दूध पीते थे। उनका आहार इतना ही था। उत्सव के दिनों में षोडश भोग होता था सही, परन्तु प्रभुश्री सदैव मिताहारी रहते। आमतौर पर उनका आहार सात्त्विक और मध्यवित् गृहस्थ के समान होता था।

प्रभुश्री की नींद

यहां पर विश्राम करते समय पौष मास के अतिरिक्त प्रायः हमेशा सोते समय उन्हें पंखा झलना पड़ता था। पौष मास में भी कभी-कभी

पंखे की आवश्यकता होती थी। पंखा करते समय यदि सेवक का हाथ जरा भी शिथिल हो जाता था, तो कितनी भी रात क्यों न हो, प्रभुश्र ओह कर उठते थे। हाथ बदलते समय भी ओह शब्द सुनाई देता था। उनके सोते समय कमरे के भीतर यदि कोई धीरे-धीरे चलने लगता अथवा उन्हें सोए हुए समझ कर कोई धीमी आवाज में भी बातचीत करता तो प्रभुश्री उस आवाज से उसी क्षण अस्थिर हो उठते थे। परन्तु कभी-कभी बड़े जोर से बातचीत करने पर भी उनकी नींद में बाधा नहीं पड़ती थी। एक दिन पास के घर में आग लग गई। लोगों ने शोर मचाया। परन्तु प्रभुश्री की नींद में कोई बाधा नहीं आई। इस संदर्भ में प्रभुश्री ने कहा था। "आग लगने पर इतना हो-हल्ला हुआ। मैं आग बुझाने का मंत्र जानता था, आग लगने के बारे में जान पाता, तो उसे बुझा सकता था।"* प्रभुश्री की नींद शिष्य-भक्तों के मंगल-चिन्तन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

प्रभुश्री की योगनिद्रा

प्रश्न उठ सकता है कि कोई चिंतन करके किसी का मंगल किस प्रकार कर सकेगा? परन्तु साधुओं की आत्मविस्तृति मंगल का निदान है, यह बात सहज ही समझ में आती है। श्रीगुरु योगनिद्रा की सहायता से स्वयं को शिष्यों के भीतर संप्रसारित कर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते हैं। जब शिष्य श्रीगुरु की ओर आकर्षित होता है, तब दूसरे विषयों के प्रति उसका आकर्षण कम होता जाता है। श्रीगुरु के प्रबल आकर्षण से ही शिष्य का मंगल साधन होता है क्योंकि जो सत, सुन्दर और निर्मल है, शिष्य उसकी ओर जितनी मात्रा में आकर्षित होगा, उसका मन उतना ही विकसित होगा और उसकी मोहरूपी निद्रा उतनी ही घटती जाएगी। उस समय वह श्रीगुरु को पूरी तरह समझ कर अनुभव करेगा कि वे बहुत सुन्दर हैं। दूसरे लोग शिष्य के इस भाव के कारण

---

* प्रभुश्री द्वारा प्रणीत "योगी गुरु" पुस्तक में अग्नि निर्वापन का कौशल विस्तार से दिया गया है।

नहीं जान पाते हैं। कोई किसी को देखकर उसके प्रति क्यों मुग्ध होता है, दूसरे लोग यह न समझ कर उसकी अवज्ञा करते हैं। वे नहीं समझ पाते कि उनकी अवज्ञा अज्ञानता का परिचायक है। भगवान के साथ मिलन होने पर आत्मा का सचमुच विस्तार होता है। अतः प्रभुश्री की निद्रा शिष्यों के मंगल-चिंतन के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

सोते समय कभी-कभी प्रभुश्री देखते हैं कि समूचा घर ज्योतिर्मय है। जब आंखें खोलते हैं तो देखते हैं कि घोर अंधेरा है। वे ऐसी अवस्था में पहुंच गए थे कि यदि वे एक ओर मुंह करके सोते हैं तो उन्हें दूसरी ओर की सारी चीजें स्पष्ट दिखाई देती हैं। उनकी दृष्टिशक्ति इतनी बढ़ गई थी कि वह दीवारों को बेध कर बहुत दूर चली जाती थी। उनकी दृष्टि में दीवारें दर्पण जैसी स्वच्छ दिखाई देती थीं। इस योग निद्रा में रहते समय वे वहुत दूर की धीरे-धीरे कही जाने वाली बातें भी सुन सकते थे।

प्रभुश्री शरीर को अपने वश में रख कर नींद में जाते थे और नींद में भी स्वयं जागृत रहते थे। उनका चित्त नींद में जाने से पहले जिस अवस्था में होता था, नींद में जाने के बाद भी वैसा ही रहता था। पहले का चिंतन वैसा ही चलता रहता था। इसे योग निद्रा कहते हैं। प्रभुश्री ने कहा है—हम लोगों की नींद और आम लोगों की नींद में काफी अन्तर है। हम लोगों की नींद को योगनिद्रा कहते हैं। सोने से पहले मुझे अंधेरा दिखाई देता है और बाद में सब कुछ आलोकमय हो जाता है। इच्छा करने पर मैं किसी भी चिंता को लेकर नींद में भी जागृत रह सकता हूं। मैं ऐसी अवस्था में पहुंच चुका हूं कि मेरे लिए सब कुछ एकाकार है। क्या जागृत और क्या नींद, पता ही नहीं चलता है। एक बार मैंने स्वप्न में ताजमहल देखा। उसके बाद जब मैंने ताजमहल को प्रत्यक्ष देखा तो पाया कि वह बिल्कुल सपने में देखे हुए ताजमहल जैसा ही है।

योगनिद्रा की साधना

"तुम लोग नींद में जाने से पहले आंख मूंद कर सर्वप्रथम एक ज्योतिर्बिन्दु की धारणा करो। पहले वह बिन्दु हिलने-डुलने लगेगी। भौंहों के बीच बिन्दु की धारणा करोगे अथवा सोचोगे कि शरीर के चारों ओर विद्युत्मय है। इस चिंतन के परिणामस्वरूप शरीर में विद्युत प्रकाशित होगी। इसके अतिरिक्त "जयगुरु" का जप और ध्यान करके नींद में जाने से अधिक अच्छा रहेगा। यह एक दिन में नहीं होगा। अभ्यास करते-करते कितने भी दिन क्यों न लगें, निश्चय लाभ होगा। इस प्रक्रिया का अभ्यास करने पर तुम लोग देखोगे कि दीर्घकाल की कठोर योग साधना का फल तुम अनायास प्राप्त कर चुके हो।

नीलाचल सारस्वत संघ की स्थापना

प्रभुश्री नीलाचल धाम पुरी में अपने को छिपाकर रखते थे। वे ऊपर से विलासी सम्भ्रान्त पुरुष जैसे दिखाई देते थे। फिर भी उड़ीसा के कुछ जिज्ञासु लोगों ने उनके स्वरूप को समझा और उनके चरणों में आश्रय लिया। उन भक्तों को संघबद्ध करने का आदेश देकर प्रभुश्री ने वर्ष १९३४ में स्वयं नीलाचल सारस्वत संघ की स्थापना की और उन भक्तों को 'आदर्श गृहस्थ जीवन गठन', 'संघ शक्ति की स्थापना', 'भाव विनिमय' और 'नीति पालन' करने का निर्देश दिया। उन्होंने इस संघ के अधीनस्थ शिष्य भक्तों के सामने सहज ही आत्मप्रकाश किया था।

इसके अतिरिक्त प्रभुश्री ने यह भी उपदेश दिया था, "तुम लोग अपने-अपने घरों में श्रीगुरु की मूर्ति की स्थापना करो और अपने क्षेत्रीय रीति-रिवाजों के अनुसार उस मूर्ति की पूजा करो और मेरी उस मूर्ति को संघ का अधीश्वर या मालिक समझ कर उसे आसन पर स्थापित कर मेरे उपदेशों का पालन करने की चेष्टा करो। तुम लोग अपने मन की बातें निष्कपट भाव से मेरे समक्ष व्यक्त करो। कुछ भी मत छिपाओ।"

साधु महात्माओं द्वारा कुंभ मेले में प्रभुश्री का स्वागत

एक बार शिष्य-भक्त प्रभुश्री के साथ कुंभ मेले में गये थे। हरिद्वार में उनका भव्य स्वागत किया गया। गुजराती, तेलुगु यहां तक कि पश्चिमी क्षेत्र के साधुओं ने भी प्रभुश्री के जुलूस में भाग लेकर उसकी शोभा बढाई। इससे पहले भी प्रभुश्री और एक बार कुंभ मेले में गये थे। उनके साथ कतिपय शिष्य और सेवक भी गये थे। कुंभ मेले में अनेक सिद्ध पुरुष आते हैं। वे स्थान-स्थान पर अपने शिष्य-सेवकों के साथ आसन जमा कर मेले का माहात्म्य बढ़ाते हैं। उस बार सिद्ध साधु गंभीर नाथ बाबा, बड़ा हाजरा महाप्रभु, अनन्तानन्द जी और ऋषिकेश के नेपाली बाबा ने प्रभुश्री का जिस प्रकार आदर किया था, उसका प्रत्यक्ष विवरण श्रद्धेय गुरुभाई श्री क्षेत्रदास भट्टाचार्य के निम्न विवरण में दिया गया है। "मैंने पिछले १३२० (१९१४) बंगाब्द में प्रभुश्री के चरणों में आश्रय लिया। उनके चरणों में आश्रय लेने के बाद मैंने उनके बारे में कुछ अफ़वाहें सुनीं। खैर, इससे प्रभुश्री के प्रति मेरे भाव में कोई अन्तर नहीं आया। क्योंकि पहली ही भेंट में मेरा मन मान गया था कि ये एक असाधारण साधु हैं। उस वर्ष कुम्भ का आयोजन हरिद्वार में हो रहा था। मैंने उस बार हरिद्वार जाकर प्रभुश्री के चरणों की वन्दना करने के पश्चात पूछा, "प्रभो, हम सभी गृहस्थ हैं। इस महातीर्थ में आकर हमें क्या करना चाहिये, बताइये।" प्रभुश्री ने कहा, "यहां पर ब्रह्मकुण्ड और कुशावर्त्त घाट में स्नान और साधु-महात्माओं के दर्शन और उनकी वन्दना करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करना होगा।" यह सुनकर मैंने फिर पूछा, "प्रभो, यहाँ पर तो अनेक साधु-संन्यासी हैं, हम साधु-महात्माओं को कैसे पहचान सकेंगे ?" यह सुनकर प्रभुश्री साधु-महात्माओं के दर्शन करने के लिए निकल पड़े। साथ में मैं, वनमाली और स्वामी योगानन्द थे।"

"पहले एक साधु हमें बाबा गंभीरनाथ के आश्रम में ले गये। जाने से पहले प्रभुश्री ने हमसे कह रखा था, "साधु-महात्माओं के दर्शन करते समय उनके चरण छू कर प्रणाम करोगे, हाथ उठाकर प्रणाम नहीं करोगे। साधु-महात्माओं को प्रणाम करने से वे आशीर्वाद देते हैं

और उस आशीर्वाद का मूल्य बहुत अधिक होता है।" उसके बाद हम बाबा गंभीरनाथ जी के आश्रम की ओर चल पड़े। हमें आते देख बाबा गंभीर नाथ दूर से स्वयं प्रभुश्री की अगवानी के लिये उठकर चले आये। दोनों चुपचाप बैठे रहे। किसी ने किसी से कोई बात नहीं की। परन्तु वे आपस में इशारों से निर्वाक बातें करने लगे। हम लोग कुछ नहीं समझ पाये। कुछ समय बाद प्रभुश्री उठ कर चले आए। बाबा गंभीर नाथ ने भी कुछ दूर उनके साथ आकर उन्हें विदा दी।"

"और एक दिन प्रभुश्री ने बड़े हाजरा महाप्रभु, अनन्तानन्द जी, नेपाली बाबा और अन्य अनेक साधु-महात्माओं के दर्शन कराये। आश्चर्य की बात है कि बाबा गंभीर नाथ ने जैसे वार्तालाप और स्वागत किया था, सभी ने ठीक वैसा ही किया। मैंने प्रभुश्री से पूछा, "प्रभो, आप लोगों ने इस प्रकार इशारों से क्या बातचीत की, इसका तात्पर्य क्या है ?" प्रभुश्री ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

"वहां पर प्रभुश्री विलासी लोगों की वेशभूषा में बाहर घूम रहे थे, फिर भी वहां के नर-नारी, साधु-संन्यासी उनका सादर अभिवादन करते थे। मैंने अनेक बार पूछा, "प्रभो, आपके चेहरे पर ऐसे क्या लक्षण हैं जिन्हें देखकर यहां के आम लोग भी आपकी चरण वंदना करते हैं ?" प्रभुश्री ने कहा, "इस क्षेत्र के लोग साधु–महात्मा को पहचानते हैं। तुम लोग मुझे कैसे पहचानोगे ? यहां पर सिद्ध–साधुओं ने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया, उसी से तुम लोग अपने गुरु का गुरुत्व समझ लो।"

ग्यारहवां अध्याय

ईश्वरीय शक्ति

पहले जिस समय कृष्ण नगर में ऐनी बेसेन्ट के साथ स्वामी निगमानन्द ने शास्त्रार्थ किया, उसी समय से स्वामी सुमेरुदास जी की दृष्टि उनकी ओर आकृष्ट हुई। निगमानन्द के अतीत और भविष्य की घटनाओं से अवगत होकर स्वामी सुमेरुदास जी ने उन पर अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग किया था। सुमेरुदास जी की उस इच्छा-शक्ति के आकर्षण से निगमानन्द को परशुराम तीर्थ जाना पड़ा और तभी हिमालय के उस वीरान क्षेत्र में उनका आना सम्भव हुआ था।

योगी गुरु सुमेरुदास जी ने योगशास्त्र की विशद आलोचना करके निगमानन्द को योगशास्त्र की प्राथमिक शिक्षा और उपदेश दिया तथा उन्हें लोक समाज में जाकर योग का अभ्यास करने का आदेश दिया। निगमानन्द ने उनका आदेश शिरोधार्य कर कहा, "कृपया मेरी एक प्रार्थना पूरी कीजिए जिससे कि मैं किसी समय आपकी कृपा से वंचित न होऊं।" यह सुनकर सुमेरुदास जी ने कहा, "वत्स निगमानन्द ! तुम हमेशा मेरी कृपा प्राप्त करते रहोगे। परन्तु सिद्धि प्राप्त करने के बाद तुम सनातन धर्म के प्रचार और सत शिक्षा के विस्तार में सहायक होंगे। मैंने तुम्हें यह भार सौंपा है। कहो, तुमने इसे स्वीकार किया या नहीं ?" इससे सहमत होकर निगमानन्द लोक समाज में आए और उन्होंने कठोर योग साधना कर. पहले सविकल्प और उसके बाद निर्विकल्प समाधि प्राप्त की। निर्विकल्प समाधि में उनमें गुरुभाव का संचार होने के कारण वे "मैं गुरु हूं", यह भाव लेकर निर्विकल्प भूमि

से उतरे। बाद में प्रेम-साधना में सिद्धि प्राप्त कर गुरुभाव में अधिष्ठापित होते हुए सहज मनुष्य के रूप में रहने लगे।

प्रभुश्री का व्यावहारिक जीवन विलासी सम्भ्रान्त पुरुष जैसा होने पर भी राजा-महाराजा, जमींदार, वकील, मुख्तार, हकीम, डाक्टर, धनी, निर्धन, शिक्षित, अशिक्षित आदि सभी वर्गों के अध्यात्मतत्त्व पिपासुओं को पता चल गया था कि उनमें कैसी असाधारण शक्ति है। वे लोग मात्र एक बार उनके दर्शन प्राप्त करने अथवा उनका मनोरंजन कर सकने से अपने को बहुत ही भाग्यवान समझते थे।

धनी लोग उनकी शारीरिक सुविधा के लिए दान में हजारों रुपए देते थे। प्रभुश्री उस धन को लोकहितकारी कार्यों में लगाकर त्यागी व्यक्ति का आदर्श दिखा गए हैं।

अनेक बार ऐसा भी हुआ कि लोकहितकारी किसी कार्य को हाथ में लेते समय जब हजारों रुपए की आवश्यकता होती थी, उस समय प्रभुश्री हाथ में केवल पन्द्रह-बीस रुपए लेकर बैठे पाये जाते थे। परन्तु आश्चर्य की बात है कि आरम्भ किए गए उस कार्य को पूरा करने के लिए आवश्यकता होते ही अप्रत्याशित रूप से आवश्यकता से अधिक धन मिल जाता था।

अनेक युवकों ने इस महापुरुष के दर्शन करते ही पतिव्रता पत्नी का मधुर स्पर्श त्याग दिया। उन्होंने इस सहज तथा सरल महापुरुष के भीतर अनन्त सौन्दर्य का संकेत पाकर संसार का त्याग करते हुए उनकी अनवरत सेवा में स्वयं को लगाकर असाधारण शक्ति प्राप्त की। ऐसा भी देखा गया है कि वेश्याओं के संग हंसी-मजाक में सदैव मतवाले रहने वाले अनेक शिक्षित और धनी लोगों ने प्रभुश्री के सम्पर्क में आकर देव दुर्लभ चरित्र प्राप्त किया है। प्रभुश्री लोगों को आकर्षित करने के लिए किसी वाह्य शक्ति का प्रयोग नहीं करते थे। लोहे और चुम्बक के टुकड़े देखने में एक जैसे हैं। परन्तु जिस समय लोहे के टुकड़े चुम्बक की ओर आकर्षित होकर उसके साथ चिपक जाते हैं तो तब पता नहीं चलता है कि कौन सा लोहा और कौन सा चुम्बक है।

प्रभुश्री किसी प्रकार की अतिमानवीय शक्ति और योग ऐश्वर्य का प्रदर्शन नहीं करते थे। तथापि अध्यात्मतत्त्व पिपासु लोग स्वतः ही उनके सम्पर्क में आते थे और अपने हृदय में प्रभुश्री को अनुभव कर कृतार्थ होते थे। ऐश्वर्य रहित भाव ही प्रभुश्री का महत्व है। यदि उनमें कोई ऐश्वर्य है, तो वह जीवप्रेम है।

चरित्र की विशेषताएं

प्रभुश्री के चरित्र में एक और विशेषता यह थी कि यदि कोई उनके समक्ष कोई अन्यायपूर्ण कार्य करता तो उसके प्रति ध्यान न देकर वे तटस्थ रहते थे। परन्तु यदि कोई उस अन्याय कार्य के प्रति उनकी दृष्टि आकर्षित कर दें तो वे उसी क्षण उसका प्रतिकार कर देते थे। सहज मनुष्य किसी भी समय किसी की कपटतापूर्ण चाल को मन में नहीं लाते हैं।

प्रभुश्री की सर्वज्ञता और सर्वत्र विद्यमानता

उपर्युक्त कारणों से यदि किसी को उनकी सर्वज्ञता और सर्वत्र विद्यमानता तथा भक्तवत्सलता पर सन्देह होता है, तो वह पूर्णतया भ्रांत है। हम लोगों ने कैसे महापुरुष को पाकर अवहेलना से उन्हें खो दिया है, उसके कुछ दृष्टान्त नीचे दिए गए हैं।

"भक्त के भगवान—यह बात हम लोगों ने केवल शास्त्र-पुराणों में पढ़ी थी। परन्तु भगवान किस प्रकार मिलते हैं, उसका समाचार रखता भी कौन ? बिना सहायता, बिना मंत्र और बुलावे के बिना मात्र भक्ति और विश्वास से आकृष्ट होकर प्रभुश्री ने जिस प्रकार विश्वासी धनी लोगों के भीतर भगवत भाव का उद्बोधन किया है, ठीक वैसे ही उतने ही दुःखी लोगों की टूटी-फूटी झोपड़ी में पधार कर उन्हें प्रेम के बंधन में बांधा है। प्रभुश्री विश्वासी भक्त के पास किस प्रकार स्वरूप का प्रकाश करते हैं, उसका एक दृष्टांत नीचे दिया गया है।

शैलबाला की गुरुभक्ति

त्रिपुरा राज्य के एक गाँव में एक बुढ़िया रहती थी । उसके एक-मात्र पुत्र का नाम अश्विनी और बहू का नाम शैलबाला था। शैलबाला के एक शिशु पुत्र था। इन चारों से वह परिवार बना था। अश्विनी प्रतिदिन जो कुछ लाता था उससे जैसे तैसे उस परिवार का गुजारा चलाता था। बहू शैलबाला लोगों से प्रभुश्री के बारे में सुनकर उनकी एक फोटो संग्रह कर उसकी पूजा करती थी। परन्तु बुढ़िया को यह विश्वास था कि साधु-संन्यासियों की पूजा करने से वंश का नाश हो जाता है। इसलिये वह अपने इकलौते पुत्र अश्विनी के अमंगल की आशंका से हमेशा बहू से कहती रहती थी कि वह प्रभुश्री की फोटो की पूजा न करे। संयोग की बात कि कुछ दिनों के बाद हैजे से पीड़ित होकर अश्विनी की मृत्यु हो गई। यह देख बुढ़िया वेहोश हो गई। उसे चारों ओर सूना-सूना दिखाई दिया। कुछ समय बाद जब उसकी चेतना लौटी, उसे महसूस हुआ मानों प्रभुश्री की फोटो हंसते हुए कह रही है, "जन्म और मृत्यु पहेलियाँ मात्र हैं।" "वृद्धा को और सहन नहीं हुआ। उसने निश्चय कर लिया कि इस साधु की बदौलत ही मेरे पुत्र की मृत्यु हुई है। वृद्धा अपनी और जवान बहू की हालत के बारे में सोच कर कातर हो गई और उसने क्रोध से प्रभुश्री की फोटो को खींच कर कहा, "छिः-छिः प्रभुश्री, तुम्हें घर में रखने से ही अश्विनी की ऐसी दशा हुई है। अब तो मेरा अश्विनी मर चुका है। इसलिए अब तुम्हें भी घर में क्यों रखूं ? माँ होते हुए मैंने पुत्र का विसर्जन कर दिया है। अब तुम्हें भी विसर्जित कर दूंगी।" यह कह कर वह उस फोटो को पास के तालाब में फेंकने के लिए निकल पड़ी।

रात की धीमी रोशनी में सन्नाटा तोड़कर अकेली बुढ़िया जब तालाव के पास जाकर फोटो को पानी में फेंकने ही वाली थी, उसे दूर से किसी का मधुर स्वर सुनाई दिया, "माँ, माँ, मैं तुम्हारा पुत्र हूं, दुःख किस बात का ?"

बुढ़िया सन्नाटे में आ गई। जब आगंतुक सामने आये, तो बुढ़िया ने किंकर्त्तव्य विमूढ़ व जड़वत होकर देखा कि वह जिसकी फोटो को पानी

में फेंकने जा रही है, वही प्रभुश्री सामने खड़े हैं। वही घुंघराले बाल, वही सौम्य मुखारविन्द, वही स्निग्ध दृष्टि। इस पर बुढ़िया को और भी विस्मय हुआ। प्रभुश्री ने कहा, "माँ, माँ, चलो, घर चलें। मैं तुम्हें माँ कहकर पुकारूंगा, इससे तुम्हारे प्राणों को शांति मिलेगी।"

बुढ़िया प्रभुश्री को लेकर घर आ गई। घर में प्रवेश करने के बाद प्रभुश्री बुढ़िया की गोद में बैठ गए। बुढ़िया को कोई आसन नहीं मिला। घर में जो कुछ था, वह सब अश्विनी के साथ श्मशान में चला गया था। शैलबाला बेहोश पड़ी थी। प्रभुश्री ने बुढ़िया की गोद में बैठ कर आवाज दी, "शैल, उठो, देखो। तुम्हारा दु:ख देख कर मैं यहां पर आया हूं।" शैलबाला की चेतना जव लौटी तो उसने देखा कि वह जिन प्रभुश्री की फोटो की पूजा कर रही थी, वे स्वयं बुढ़िया की गोद में बैठे हुए हैं। शैलबाला सब कुछ भूलकर प्रभुश्री के चरणों में गिर पड़ी।

इस प्रकार दो दिन बीत गए। प्रभुश्री घर छोड़कर कहीं नहीं गए। वे लोग ऐसी अनहोनी देखकर रो नहीं सके। दो दिन के बाद प्रभुश्री ने छोटे बच्चे के सिर पर हाथ फिरा कर कहा, "कोई भय नहीं है। मैं हमेशा तुम लोगों पर निगाह रखे हुए हूं। अब मैं जा रहा हूं। यदि कोई विपदा आए तो फिर आऊंगा।" यह कह कर प्रभुश्री बाहर जाकर अन्तर्धान हो गए।

अश्विनी के परिवार में खाने-पीने की ऐसी व्यवस्था थी कि एक दिन नहीं लाने से दूसरे दिन खाने को मिलना मुश्किल था। उनके घर में एक साथ दो दिन का खाना नहीं जुटता था। अश्विनी जैसे-तैसे परिवार की गाड़ी खींच रहा था। उसकी मृत्यु के बाद घर में मुट्ठी भर चावल तक नहीं थे। फिर भी बुढ़िया लज्जा के मारे किसी से कुछ नहीं मांग सकी। बहू शैलबाला की आयु मात्र सोलह वर्ष थी और उसकी गोद में शिशु पुत्र था। वह भी जाएगी कहां, मांगेगी किससे ? किसी को यह दु:ख बताए तो होगा भी क्या ? यह सोच कर बुढ़िया किसी को कुछ बताए बिना बैठी रही। जब तक तालाब में

कलंब का साग और घर के अहाते में रतालू के पत्ते थे, तब तक लोगों के अनजाने में वे पेट भरते रहे। जब साग ख़त्म हो गया तो तीनों केवल पानी पीकर बीस दिन तक भूख मिटाते रहे। आखिर भूख की ज्वाला न सह पाने पर शैलबाला प्रभुश्री के आसन के सामने सिर झुकाए पड़ी रही।

दूसरी ओर उसी दिन गाँव के दुष्ट लोग बुढ़िया के घर के चारों ओर मंडराने लगे। शैलबाला ने धीमे से अपनी सास को बताया, "माँ, माँ, अब क्या उपाय है ? मुझे डर है ये दुष्ट लोग मुझे जोर-जबरदस्ती ले जाएंगे।" यह कह कर वह "गुरुदेव बचाओ, गुरुदेव बचाओ", कहते हुए व्याकुलतापूर्वक प्रभुश्री को पुकारने लगी।

सास निरुपाय थी। उसका शरीर सुन्न हो गया था। उसमें बोलने की भी ताकत नहीं थी। बुढ़िया केवल यह सुन सकी कि दुष्ट मुसलमान उनका बाड़ा खोल घनी अंधेरी रात में सती का सतीत्व नष्ट करने के उद्देश्य से घर में घुसने की कोशिश कर रहे हैं। कोई उपाय न देखकर भूख और प्यास के मारे दोनों प्राणी पीपल के पत्ते की तरह कांपते हुए आंसू भरी आँखों से प्रभुश्री से विनती करने लगीं और कहने लगीं, "गुरुदेव बचाओ, गुरुदेव बचाओ। हमारी लाज रखो। हे प्रभो, हे दयामय, हमारी विपदा दूर करो। हे प्रभो, तुम अपना वादा पूरा करो।" इसी बीच उन्हें ऐसा लगा कि घर में कोई घुस रहा है। शैलबाला कातर स्वर में पुकारने लगी, "गुरुदेव बचाओ, गुरुदेव बचाओ, हे प्रभो, हमारी रक्षा करो।"

उन्हें दूर से सुनाई दिया, "भय नहीं, डरो नहीं" साथ ही साथ प्रभुश्री घर में प्रवेश करके जमीन पर बैठ गए। उन्होंने बुढ़िया को बताया, "मैंने उन लोगों को समुचित दंड देकर भगा दिया है।" भगवान स्वयं ही विश्वासी लोगों की सभी विपदा-आपदा वहन करते हैं।" यह सुनकर वे प्रभुश्री के चरणों में गिर कर केवल रोने लगीं।

रात समाप्त हो जाने पर सुबह दुष्ट लोगों को आपस में बातें करते सुनाई दिया कि वे जिस समय द्वार तोड़ कर घर में घुस रहे थे,

सांवले रंग की कोई नारी कटार से उन पर हमला कर उन्हें भगाने लगी। वे खून से लथपथ होकर जान बचाकर भाग आये।

इसके बाद प्रभुश्री ने बुढ़िया और शैलबाला को दो गेरुए वस्त्र देकर उन्हें पहनने के लिये कहा। प्रभुश्री ने उन्हें अभय दे कर कहा, "वे दुष्ट अब कभी यहां नहीं आयेंगे। तुम लोगों के सोते समय रात में मैं दरवाजे पर बैठ कर पहरेदारी करूंगा। अब तुम लोगों को किसी से कोई भय नहीं।"

ऐसी अभयवाणी सुनाकर प्रभुश्री ने घर के चारों ओर लकीर खींच दी और उनसे कहा, "रात में तुम लोग इस लकीर को पार कर कहीं नहीं जाना। इस लकीर के भीतर रहने से किसी में शक्ति नहीं कि तुम लोगों को छू ले।" यह कह कर प्रभुश्री ने उन्हें कुछ पैसे दिये और वे अन्तर्धान हो गए। अदृश्य होने से पहले उन्होंने शैलबाला को एक अंगूठी और कुछ पैसे देकर कहा, "कल सुबह एक बालक आयेगा। तुम लोग कुछ सोचे बिना उसे पैसे दे देना। वह बाजार से तुम्हारे लिये चीजें खरीद कर ला देगा। तुम लोग लकीर के बाहर नहीं जाना। मैं तुम लोगों को यहां से लिवा ले जाने के लिये शीघ्र ही आदमी भेजूंगा। जो आदमी आयेगा वह तुम्हें मेरा पत्र और ऐसी ही एक अंगूठी दिखायेगा। उसे देखकर तुम लोग उसके साथ मेरे पास चली आना।" यह कह कर प्रभुश्री बाहर जाकर अदृश्य हो गए।

अगले दिन सुबह शैलबाला ने देखा सचमुच एक ग्वाल बालक ने आकर कहा, "माँ, तुम लोग भूखे हो। मुझे पैसे दो, मैं तुम लोगों के लिए बाजार से चीजें ले आऊंगा।" वे दोनों खुशी से चीज खरीदवा कर सानन्द दिन बिताने लगीं। थोड़े दिन बाद प्रभुश्री के आदेश से आश्रम से एक सेवक पत्र और अंगूठी लेकर हाजिर हुआ। शैलबाला ने कभी भी प्रभुश्री को सशरीर नहीं देखा था और वह प्रभुश्री की लिखावट भी नहीं पहचानती थी। इसलिए उसे पहले संदेह हुआ। उसके बाद सेवक के अंगूठी दिखाने पर वे निस्संदेह उसके साथ प्रभुश्री के दर्शन को चल पड़ीं।

प्रभुश्री के आदेश पर भक्त-सम्मेलन में समवेत भक्तमण्डली के समक्ष बुढ़िया ने अपनी करुण गाथा सुनाई। उसकी दुःख भरी गाथा सुनकर उपस्थित भक्तगण आँसू नहीं रोक सके। प्रभुश्री भी बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगे और बुढ़िया को गोद में लेकर "माँ माँ" कहने लगे। इस पर सभी भावस्तम्भित हो गए।

सम्मेलन का समापन होने पर प्रभुश्री पुत्र के रूप में दीन भाव से उनके घर में पधारे और उनके दिए फटे बिस्तर पर सोकर साग भात खाकर आए। उस दिन से प्रभुश्री ने उनका समस्त खर्च वहन किया।

भुवनेश्वर के पंडा

भुवनेश्वर के पास बोधखंडी गाँव के निवासी गोविन्द पंडा प्रभुश्री के भक्त थे। उन्होंने बहुत ध्यान, तप और जप आदि किया। फिर भी उन्हें प्रभुश्री की ईश्वरीय शक्ति का दर्शन नहीं हुआ। तब उनके लिए जीवन का भार वहन करना दूभर हो गया। उन्होंने सोचा कि विरह से कातर जीवन रखने की अपेक्षा मर जाना श्रेयस्कर होगा। इसी उद्देश्य से वे घनी अंधेरी रात में गले में फांसी लगाकर आत्महत्या करने पेड़ से लटक गए। प्रभुश्री तत्काल प्रकट हुए और उन्होंने पंडा जी को बचाकर उन्हें पेड़ से नीचे उतारा और कहा, "मैं सदैव तुम्हारे साथ हूं।" अगले दिन लोगों ने उन्हें पेड़ के नीचे चेतनाहीन अवस्था में पड़े देखा। पंडा जी के गले में रस्सी का वह निशान अभी तक है।

डूबते शिष्य को बचाना

सब जज अश्विनी बाबू अच्छे तैराक और प्रभुश्री के एकनिष्ठ भक्त थे। वे पुरी आकर कुछ दिन प्रभुश्री के पास ठहरे थे। उन्होंने जब देखा कि लोग मछुआरों की सहायता से समुद्र में स्नान कर रहे हैं तो वे भी समुद्र में स्नान करने अकेले ही पानी में कूद गए। उस समय प्रभुश्री तट पर बैठे थे। कुछ दूर जाने के बाद वे भीतरी प्रवाह की धारा में

आ गए। वे भीतरी प्रवाह के प्रभाव से बच निकलना नहीं जानते थे। इसलिए बहुत चेष्टा करने पर भी वे वहां से निकलने में असमर्थ रहे। अन्त में उनका शरीर थक गया। बचने की आशा जब नहीं रही तो वे अन्तिम घड़ी में प्रभुश्री का ध्यान करने लगे। तट पर बैठे प्रभुश्री ने भी अश्विनी बाबू की दुर्दशा देखी। उन्होंने उन्हें बचाने के लिए मछुआरों को भेजा। परन्तु मछुआरे उनके भारी भरकम शरीर को पकड़ने का साहस न जुटा पाकर लौट आए। ऐसी परिस्थिति में अश्विनी बाबू के मन में निर्भरता का भाव जाग उठा और वे "जयगुरु" महामंत्र का जप करने लगे। उस समय उन्होंने अचानक देखा कि प्रभुश्री की विशाल ज्योतिर्मय मूर्ति उनके सामने खड़ी है। उनके दोनों पैर लहरों को छू रहे हैं, उनका सिर आकाश को छू रहा है, नेत्रों में अभय और करुणा है। इस मूर्ति ने अश्विनी बाबू को जोर से ऐसा धकेला कि वे एक ही बार में लहरों पर तैरते हुए आए और तट पर बैठे प्रभुश्री के चरणों में अचेत गिर पड़े। बाहर से देखने पर लगता था कि वे मर चुके हैं। कुछ देर बाद चिकित्सा से उनकी चेतना लौट आई।

सर्वत्र विद्यमानता

अश्विनी बाबू के अपने घर में प्रभुश्री के लिए अलग कमरा था। उस कमरे में प्रभुश्री के विश्राम के लिए पलंग और मच्छरदानी सजी हुई थी। एक बार प्रभुश्री के जन्म दिन के उपलक्ष्य में उनके घर पर अनेक शिष्य-भक्त समवेत हुए थे। उस दौरान प्रभुश्री दूर कहीं और रहते थे। उत्सव के दिन अश्विनी बाबू स्नान करने के बाद प्रभुश्री की पूजा करने आसन घर में गए। बिस्तर से मच्छरदानी उठाकर उन्होंने देखा कि उस बिस्तर पर सचमुच कोई सोया हुआ था, अभी-अभी उठ कर गया है। कमरे के बाहर आकर उन्होंने देखा कि प्रभुश्री बाहर बैठ कर मुंह धो रहे हैं। वे पूर्व दिशा में बैठे भक्तों की ओर देखकर हंस रहे हैं। यह देखकर अश्विनी बाबू भाव-विभोर हो गए। पर थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि वहां पर कोई नहीं। प्रभुश्री अन्तर्धान हो चुके हैं।

रोगी की शय्या में प्रभुश्री

हम लोगों की एक श्रद्धेया गुरुबहन किसी उत्कट रोग की चिकित्सा के लिए कलकत्ता आई हुई थीं। रोग-यंत्रणा में भी वह धीरज के साथ श्रीगुरु की स्मृति को हृदय में जागृत रखने की चेष्टा करती रहीं। अन्त में रोग मारक स्थिति में पहुंच गया। वह प्रभुश्री के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठीं। हमारे कुछ गुरुभाई उनकी सेवा में थे। रोगी बहुत ही व्याकुल होकर प्रभुश्री को पुकार रही थीं। वहां पर उपस्थित सभी लोगों ने देखा कि प्रभुश्री कर्पूरधवल मनोरम मूर्ति में रोगी के सिर के पास बैठे हैं। रोगी पीड़ा भुला कर अर्धनिद्रित अवस्था में श्रीगुरु के दर्शन से असीम आनन्द का अनुभव कर रही हैं। उपस्थित लोगों ने इस घटना को कई बार देखा और वे प्रभुश्री की अहेतुकी कृपा का स्मरण कर पुलकित और विस्मित हो गए।

कीर्तन में प्रभुश्री

एक बार फाल्गुन पूर्णिमा के दिन प्रभुश्री के शिष्य-भक्तों ने झांझ-मृदंग बजाकर कीर्तन आरम्भ किया। कीर्तन का आनन्द इतना जम गया कि सब "जयगुरु" का उच्चारण करते हुए नृत्य करने लगे। अचानक देखा गया कि समूचा कीर्तन स्थल अनूठी ज्योति से उद्भासित है। उस ज्योति के केन्द्र भाग में सहस्र किरणों के समान प्रभायुक्त शिशिर जैसी स्निग्ध प्रभुश्री की मूर्ति प्रस्फुटित हो गई है। साथ ही यह भी दिखाई दिया कि श्रीगुरु के शरीर से ब्रह्मा, विष्णु, महेश, काली आदि देवता निकल कर नाचने लगे। धीरे-धीरे भीतर और बाहर सब कुछ एकाकार हो गया, केवल आनन्द ही बचा रहा।

अनावृष्टि दूर करना

प्रभुश्री जिस समय मैमनसिंह के वेनियाचर कचहरी में रह रहे थे उस दौरान अनावृष्टि के कारण उस क्षेत्र के अनाज के खेत सूखने लगे। कृषकों में हाहाकार मच गया और वे दल बांध कर प्रभुश्री के

समक्ष उपस्थित हुए और उनसे प्रार्थना करने लगे। उनकी आकुल प्रार्थना तत्काल फलवती हुई और उनके वहीं पर बैठे रहने के दौरान ही वर्षाकाल की तरह चारों ओर बादल घिर आए और मूसलाधार वर्षा होने लगी। इससे सभी विस्मय के साथ खुशी से नाच उठे। इस क्षेत्र के लोग प्रभुश्री का प्रसंग उठने पर आज तक इस घटना का उल्लेख करते हैं।

स्वप्न में रोग निवारण

ढाका की एक गुरुबहन लकवे से पीड़ित होकर शय्याशायी थीं। अनेक प्रकार की चिकित्सा हुई, पर रोग का उपशम नहीं हुआ। एक दिन सुबह देखा गया कि वे घूम रही हैं। जब उनसे पूछा गया कि अचानक रात भर में बीमारी कैसे ठीक हुई तो उन्होंने बताया, "पिछली रात प्रभुश्री ने मेरे शरीर पर हाथ फिरा कर कहा, तुझे बड़ी तकलीफ हो रही है। तेरे कारण योगेश्वर भी अशांति भोग रहा है।" यह कह कर प्रभुश्री अंतर्धान हो गए।

वर्षा रोकना

एक महाराष्ट्रीय भक्त असम की कोयला खान में सहायक प्रबंधक थे। एक दिन वे प्रभुश्री की फोटो लेकर रास्ते में कहीं जा रहे थे। अचानक घनघोर वर्षा आरंभ हो गई। वे इस पर बहुत ही चिंतित हो गए कि कहीं वर्षा से प्रभुश्री की फोटो भीग न जाए। परन्तु आश्चर्य की बात है कि रास्ता चलते समय उन पर वर्षा नहीं हुई। वे रास्ता चलते गए, पर वर्षा हर समय उनसे एक हाथ की दूरी पर होती रही।

●

बारहवां अध्याय

भाव जगत में प्रभुश्री

परिपूर्ण भाव

मठ की स्थापना करते समय प्रभुश्री ने अध्यात्म विभूति से समन्वित मूर्ति धारण की थी। उनका मानवीय भाव चला गया था और केवल गुरुभाव ही बचा था। उस समय के भाव को शिष्य-भक्त सहज ही समझ सकते थे। उनके उपदेश एकार्थ बोधक थे और हमेशा उनके कार्यों के एकदम अनुरूप थे। उस समय प्रभुश्री शिष्य-भक्तों के प्रति सहानुभूति और प्रीति सम्पन्न होकर अपनी सभी शक्तियों का प्रयोग करते हुए उनकी वासना कामनाओं को जड़ से उखाड़कर उनमें अपने प्रति विश्वास उत्पन्न कर देते थे।

दुर्बोध्य भाव

मठ में कुछ वर्ष ठहरने के बाद प्रभुश्री कुंभ मेले के दर्शन पर निकले। रास्ते में कुछ दिन काशी धाम में गंभीरा नामक आश्रम में ठहरे। इस दौरान प्रभुश्री के भाव में अनेक परिवर्तन दिखाई दिए। उस समय वे एक अभिनव मूर्ति धारण कर लोगों के साथ चलते थे। वे अपनी शक्ति के प्रभाव से गुरुभाव को आवृत कर शुद्ध और सात्त्विक मनुष्य के रूप में रहने लगे। बहुत सरल बन जाने के कारण उनका व्यावहारिक जीवन रहस्यमय हो गया। अब वे विभिन्न भाव वाले लोगों को भिन्न-भिन्न प्रकार के उपदेश देने लगे। प्रभुश्री में इस प्रकार के परिवर्तनों को देखकर सभी के मन में संशय पैदा हो गया। संशय हो

भी क्यों न ? मनुष्य देवता तो नहीं है ? अर्जुन से लेकर वर्तमान युग के विवेकानन्द तक सभी इस संशय और सन्देह के दास रहे हैं। प्रभुश्री ने स्वयं अपने स्वरूप को एक ऐसे बाह्य आवरण से आवृत्त कर लिया कि उनके अन्तरंग शिष्य-भक्त भी उनके दुर्बोध्य स्वरूप को नहीं समझ सके। संसारत्यागी होते हुए भी नर-नारियों, सभी के साथ अबाध रूप से घुल-मिल जाने के कारण एक वर्ग के लोग उन्हें समाज-द्रोही, आदर्शहीन और स्वेच्छाचारी कह कर उनकी निन्दा करने लगे। एक श्रेणी के लोग उनके बारे में कुछ भी सोच-विचार किए बिना स्वेच्छा से उनके चरणों में आश्रय लेने लगे। साधारण लोग और उनमें कोई अन्तर दिखाई न देने, उनकी वेशभूषा राज परिवार के नवीन युवक की तरह होने, उनके शयन कक्ष की सजावट धनी और विलासी युवक की शय्या की तरह होने पर भी असूर्यम्पश्या हिन्दू स्त्रियाँ, जिन्होंने अपने जीवन में कभी किसी पराये पुरुष को नहीं देखा था और जो गंगा-स्नान करते समय भी परदे के पीछे रहकर स्नान करती थीं, लज्जा और संकोच त्याग कर जिस प्रकार लोग किसी देव विग्रह का दर्शन करते हैं ठीक वैसे ही अबाध रूप से प्रभुश्री के साथ बच्चों की तरह बातचीत कर भगवत तत्त्व की साधना की शिक्षा लेने लगीं।

सहज भाव

जिस समय गुरुस्तरीय जीवन्मुक्त महापुरुष अपने विकिरण भाव को संयत कर साधारण मनुष्य की तरह रहते हैं अर्थात् अपने अलौकिक भाव और शक्तिसमूह को छिपा लेते हैं उस समय उन्हें "सहज" की संज्ञा दी जाती है। जो महापुरुष सिद्धि प्राप्त करने के बाद अधिक समय तक जीवित रहते हैं उनमें सहज अवस्था आ जाती है। यह अवस्था आ जाने पर उन्हें पहचानना कठिन हो जाता है। 'सहज भाव' कहने से सहजिया* भाव नहीं होता है। जो महापुरुष सहज अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं. वे किसी को किसी विशेष आदर्श से परिचालित नहीं करते। प्रत्येक मनुष्य के भीतर उसका अपना भाव है। किसी को

---

* बंगाल का एक धार्मिक संप्रदाय।

किसी विशेष आदर्श से अनुप्राणित करने से उसके व्यक्तित्व में बाधा उत्पन्न होती है। अतः सहज मनुष्य के लिए आदर्शवाद व्यक्तित्व का हानिकारक है। सहज मनुष्य लोगों को आर्कषित करने के लिए किसी बाह्य शक्ति का प्रयोग नहीं करते हैं। फिर भी उनमें एक तरह का स्वाभाविक आकर्षण होता है। वे उसी के प्रभाव से लोगों को अपनी ओर आर्कषित कर लेते हैं। प्रभुश्री ने प्रतिज्ञा की थी कि वे विभूति का प्रदर्शन करके किसी को शिष्य नहीं बनाएंगे। यदि लोग स्वयंमेव प्रभुश्री के रूप में उन्हें नहीं पहचानेंगे, तो उनके सामने विभूति का प्रदर्शन करना व्यर्थ होगा। सहज मनुष्य भोगी अथवा त्यागी के समान प्रतीत नहीं होते। सहज मनुष्य का अपने शिष्यों की किसी प्रकार की कुटिलतापूर्ण गतिविधि पर ध्यान नहीं रहता।

बालक भाव

प्रभुश्री को निःसंशय किसी राज परिवार का आधुनिक शिक्षित बालक कहा जा सकता है। वे भक्तों की इच्छा के अनुसार वर्तमान युग के उपयोगी वेशभूषा धारण करते थे और बच्चों की तरह दूसरों की इच्छा से भोग करते थे। फिर भी उनमें आधुनिक युग की चालबाजी लेशमात्र नहीं थी। जिस प्रकार बालक सरल और हिंसा द्वेष आदि से रहित होता है, प्रभुश्री भी वैसे ही थे। यह बात उनकी धारणा के बाहर थी कि आधुनिक युग के लोगों के सम्पर्क में आने पर मनुष्य जैसे-तैसे भी दोषयुक्त हो जाता है। मनुष्य तो दूर की बात है, उन्हें विश्वास था कि हिंस्रजंतुओं का हृदय भी प्रेम का आधार है।

जीवन्मुक्त भाव

साधना के द्वारा जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेने के बाद केवल योगीजन ही सहज अवस्था को अपने अधीन कर सकते हैं। योगीजन किसी पर निर्भर नहीं होते, किसी की कृपा के भिखारी नहीं बनते हैं। वे प्रबल आत्मशक्ति से महाशक्ति को अपने अधीन कर उन्हें स्वेच्छा से परिचालित कर सकते हैं। कोई देवता भी उन्हें आत्मविस्मृत नहीं कर

पाता। किसी भी समय उन्हें आत्मविस्मरण नहीं होता। इच्छा करने पर वे दूसरों को अभिभूत कर सकते हैं। देवता तक ऐसे जीवन्मुक्त योगीजनों की कृपा प्राप्त करना चाहते हैं। इसलिए गीताकार कहते हैं—

"तपस्विभ्योऽधिक योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन।
(६/४६)

गुरुरूपी भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इसलिए योगी बनने का उपदेश दिया है कि तपस्वी, ज्ञानी और कर्मी, इन तीनों से योगी की अवस्था ऊंची है। परन्तु किस प्रकार का योगी सबसे बड़ा है ?

योगीनामपि सर्वेषां मदगतेनान्तरात्मना,
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।
(६/४७)

योग-साधना में सिद्ध मनोरथ होने के बाद भावतत्त्व की साधना कर योगेश्वर निगमानन्द को किस प्रकार भावमय भगवत अवस्था प्राप्त हुई है, हम पहले ही इस पर प्रकाश डाल चुके हैं।

सहजभाव की उपयोगिता

यदि अवतार अथवा भक्तगण किसी पर कृपा करना चाहते हैं, तो उन्हें इसके लिए अपने-अपने आराध्य देवता के सामने प्रार्थना करनी पड़ती है। परन्तु योगीजन जागृत शक्ति (Living Battery) की तरह किसी दूसरे पर निर्भर किए बिना अपने आप यह सब कर सकते हैं। जो गुरु सहज अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, उनका गुरुभाव इतना सहज हो जाता है कि लोगों को उनके गुरुत्व की उपलब्धि नहीं हो पाती, परन्तु वे दूसरों के प्रभाव से प्रभावित होकर उन्हें न त्याग कर उन्हे साधारण व्यक्ति मान कर उनके साथ घुलमिल जाते हैं। ये सहज मनुष्य अपने द्वारा संचित प्रभूत शक्ति के प्रभाव से अपने गुरुभाव को इस प्रकार प्रच्छन्न कर देते हैं कि जो भी कोई उनके सम्पर्क में आता है, वह अपने भीतर एक तरह के अभूतपूर्व आकर्षण का अनुभव करता

है और उनके साथ खुल कर भाव का आदान-प्रदान करने का सुयोग प्राप्त करता है। परन्तु जो साधु अध्यात्म विभूति से समन्वित हो रहते हैं, केवल सात्त्विक लोग ही उनके पास आने का साहस करते हैं और पापी लोग उनसे दूर से ही भागते हैं। सहज मनुष्य रूपधारी साधुओं के सम्बन्ध में यह बात लागू नहीं होती है। उनमें जीव सेवा की शुभ इच्छा और भाव इतना प्रबल और गहन होता है कि वे देश में घर-घर घूम कर अनेक बहानों से लोगों से मिलकर उनके साथ प्रेम सम्बन्ध जोड़ते हैं और उनके भीतर अनादि संभूत जो बीज है, अलक्षित रूप से उनमें उसका अंकुरण कर देते हैं। जो साधु सहज अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, यदि वे स्वयं ही अपने को प्रकट नहीं करेंगे, तो किसी में भी उन्हें प्राप्त करने या समझ सकने का साहस नहीं हो सकता। यह बात प्रभुश्री ने अनेक बार अपने श्रीमुख से व्यक्त की है।

आश्रित लोग जितना बहिर्मुखी होते हैं, सहज मनुष्य उतने ही अधिक आकर्षण से उन्हें आकर्षित करते हैं। सहज अवस्था अधिक से अधिक निर्गुण अवस्था होने पर भी जो साधु सहज अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, वे भक्ति और विश्वास के सामने आत्मप्रकाश करते हैं।

शिष्य-भक्तों की प्रगाढ़ भक्ति और विश्वास के बल पर प्रभुश्री ने स्वयं को उनके समक्ष किस प्रकार व्यक्त किया है, हम इस बात पर पूर्व के प्रसंगों में चर्चा कर चुके हैं। संक्षेप में यही प्रभुश्री की सहज अवस्था का स्वरूप है। सहज अवस्था का यह माधुर्य इस युग में एक मात्र इस देव मानव के भीतर प्रस्फुटित हुआ है।

सार्वभौम भाव

प्रभुश्री किसी विशेष मतवाद के पोषक नहीं हैं। शक्तिवाद, ब्रह्मवाद, परमात्मवाद, भक्तिवाद या दूसरे शब्दों में द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टा द्वैतवाद— इन चार तत्त्वों के बारे में चाहे कोई किसी प्रकार से क्यों न समझाए लेकिन प्रभुश्री प्रत्येक मत में विश्बास रखते थे। प्रभुश्री ने प्रत्येक मतवाद के भीतर जाकर सत्य की खोज की थी और प्रत्येक मतवाद के साधना-तत्त्व के संबंध में विशेष अभिज्ञता प्राप्त की थी। इसलिए उन्होंने पूर्व के गुरुओं की तुलना में अपने देह स्थिति काल में

विभिन्न भावों वाले बहुत से लोगों को सत्य के मार्ग पर चलाने का भार अपने ऊपर लेने में सफलता पाई है। उन्होंने जिन लोगों का सत्य के मार्ग पर चलाने का भार लिया है, उन्होंने उन्हें न केवल आचार्य समझ कर उन्हें अपनी श्रद्धा और भक्ति अर्पित की है अपितु प्रभुश्री ने शिष्य-भक्तों के भीतर अपने गुरुभाव को इतने दृढ रूप से अंकित कर दिया है कि वे अपने देहस्थिति के समय से आज तक अपने शिष्य-भक्तों द्वारा प्रभुश्री के रूप में पूजित हो रहे हैं। शिष्य-भक्त अपने घर पर प्रभुश्री की मूर्ति की धूप, दीप और नैवेद्य से आराधना कर रहे हैं।

निरुपाधि भाव

तंत्र, योग और ज्ञान आदि की साधनाओं के बंधे-बंधाए नियम हैं। प्रभुश्री तांत्रिक योगियों के बंधे-बंधाए साधना-पथ का प्रदर्शन करते थे। फिर भी उन्होंने इस पथ पर जाने वाले साधकों को प्रकृति-भेद के विभिन्न रास्ते दिखाए और उसमें दी गई साधना की सभी प्रणालियों से सभी संस्कारों का त्याग करने और सभी साधनाओं के मूल केन्द्र रूपी शाश्वत वस्तु को अपने शरीर के भीतर महसूस करने का निर्देश दिया है. क्योंकि बाहर से कोई शक्ति नहीं आती है, साधना के द्वारा ही अपने भीतर की सुप्त शक्ति को जागृत करना होता है। देह के भीतर आनन्द का स्रोत विद्यमान है। जिस समय साधना पूरी तरह से बाह्य सम्बन्धों से रहित और आनुष्ठानिक क्रियाओं से वर्जित हो जाती है, तब भीतर की शक्ति तेजी से जागृत हो जाती है। यहां पर स्वतः ही प्रश्न उठता है कि यदि प्रभुश्री की साधना शरीर के भीतर स्थित वस्तु के प्रति लक्ष्य रखती है, तो उन्हें मुख्यतया योगी कहा जा सकता है। परन्तु यह कोई नहीं कह सकता। हमने देखा कि विभिन्न लोगों के भीतर उनका चित्र भिन्न-भिन्न रूप में प्रकाशित हुआ है। अतः उन्हें किसी विशेष श्रेणी में नहीं बांधा जा सकता। क्योंकि जब तांत्रिकों ने उनके द्वारा प्रणीत "तांत्रिक गुरु" का पाठ किया और वे उनके साथ इस पर शास्त्रार्थ करने बैठे, तो उन्होंने समझा कि वे असाधारण तांत्रिक हैं। जिन्होंने उनके द्वारा प्रणीत "ज्ञानी गुरु" का

पाठ कर उनसे शास्त्रार्थ किया, उन्होंने माना कि वे अद्वितीय ज्ञानी हैं। जिन्होंने "योगी गुरु" का पाठ किया, उन्होंने उन्हें प्रधान योगाचार्य समझा। फिर जिन लोगों ने उनके "प्रेमिक गुरु" में "अचिंत्यभेदाभेद तत्त्व" का पाठ किया उन्हें महसूस हुआ कि वे परम प्रेमिक हैं। जिन्होंने चार तत्त्वों से समन्वित उनके ग्रन्थों का अध्ययन किया वे उनके लिए कोई उपाधि न पाकर परम विस्मय से विमुग्ध हो गए।

भावतत्त्व में प्रभुश्री की अभिनव देन

साधना की जिन सब प्रणालियों की धारा पहले से चली आ रही है, प्रभुश्री ने उनकी तुलना में "जीवन्मुक्त" उपासना को आशु फलप्रद बताया है। जीवन्मुक्त की उपासना कैसी है, इस पर प्रकाश डालते हुए प्रभुश्री ने कहा है, "साधु-संन्यासियों और भक्तों से सुना जाता है कि श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीगौरांग, व्यास, वशिष्ठ, सनक आदि ऋषियों के अभी भी दर्शन होते हैं। तब क्या निर्वाण मुक्ति किसी को भी प्राप्त नहीं हुई? तब क्या ब्रह्म निर्वाण केवल कहने की बात है? योगियों के अतिरिक्त कोई भी इस तत्त्व की मीमांसा नहीं कर सकता है। संसार में प्रत्येक प्राणी के क्रियाकलाप चित्र बन कर रह जाते हैं। व्यास, वशिष्ठ किसी स्वतंत्र लोक में नहीं हैं। वे परमपद में लीन हो चुके हैं। वे कहीं पर पार्थिव शरीर लिए नहीं बैठे हैं। परन्तु उनकी चिंतनधारा, उनकी साधना, त्याग, संयम, शिक्षा और आदर्श आकाश-पटल पर चित्र बनकर सूक्ष्म और गुप्त रूप में विद्यमान हैं। यदि कोई उनके बारे में वैसा गंभीर चिंतन कर सकता है, तब ये सब गुप्त चित्र जीवन्त होकर उसके समक्ष प्रकट होते हैं। ऋषियों की तुलना में अवतारों के लीला-चित्र अनेक वर्षों तक प्रकट रहते हैं। अवतारों के उपासक के सामने ये चित्र खिल उठते हैं। हम, तुम इस घर में बैठे बातचीत कर रहे हैं, यह भी अनेक वर्षों तक स्थायी होकर क्रियाशील रहेगी। यदि कोई इसका अनुध्यान करेगा तो यह उसके सामने प्रकट होगी।

अतः देखने में आता है कि गतानुगतिक रूप में प्रचलित धारा में साधना करने की अपेक्षा निरुपाधि महापुरुषों द्वारा प्रदर्शित अभिनव पथ की उपासना अधिक फलवती हुई है, क्योंकि शिष्य का दैन्य कहां पर है, श्रीगुरु उसे दिव्य दृष्टि से देखकर उसके अनुरूप साधना देकर उसे शांति प्रदान करते हैं। यह बात कतिपय साधिकाओं की साधना प्रणाली से स्पष्ट होती है।

प्रभुश्री अपने चिंतन से भावतत्त्व को इस प्रकार से परिपुष्ट कर देते हैं कि उनके चिंतन से पवित्र हुई अभिनव साधना प्रणाली बड़ी विस्मयकारी रूप से फलवती हुई है। यह सुन कर हमें विस्मित होना पड़ता है। गतानुगतिक जीवन धारा का व्यतिक्रम न करके संयम की रक्षा की जा सकती है, अस्वाभाविक पथ पर न जाकर साधना की जा सकती है और उससे सहज ही इष्ट सिद्धि होती है, इस बात की परीक्षा सबसे पहले नासिरपुर गाँव में हुई।

यह जानकर कि पति के विरह से आत्मविस्मृत जिन विधवाओं ने प्रभुश्री के चरणों में आश्रय लिया है उनके लिए कोई दूसरी साधना फलवती नहीं हो सकेगी, प्रभुश्री ने उनके समक्ष साधना की अभिनव प्रणाली प्रदर्शित की है। इस पथ में भगवत भाव का उद्बोधन किया जा सकता है, किसी गुरु या महापुरुष द्वारा अब तक इस बात की कल्पना तक नहीं की गई थी।

पति के विरह से कातर कतिपय विधवाओं को दीक्षा प्रदान करने के बाद प्रभुश्री ने उन्हें अपने-अपने इष्ट मंत्र का जप और मंत्र के अर्थ का परिचिंतन करते समय इष्ट मूर्ति का चिंतन करने के स्थान पर अपने-अपने प्रियजनों की मूर्ति का चिंतन करने का उपदेश दिया। पति के विरह से विह्वल एक विधवा ने पति की मूर्ति का चिंतन कर मंत्र का जप किया और मंत्र का जप करते समय वह पति के रूप का ध्यान कर आँसुओं से छाती भिगोने लगी। विधवा के हृदय के संपूर्ण प्रेम भाव ने मंत्र के प्रतिपाद्य शरीर की रचना कर दी। स्वयं भगवान उसके पति का रूप धारण कर विरह ताप से संतप्त विधवा के समक्ष उसके दिवंगत पति की तरह आचरण कर हंसी कौतुक करने लगे। पति का प्रेम स्पर्श

पाने के लिए लालायित विधवा को पता ही नहीं चला कि उसके ये स्वामी जगत स्वामी हैं। उसने मन ही मन सोचा कि मंत्र से आहूत होकर उसके पति ने मृत्यु के दूसरे पार से आकर दर्शन दिए हैं। वह सोच नहीं सकी कि उसकी प्रेम-प्रीति, पति के प्रति उसकी आसक्ति, बिछुड़े पनि के लिए उसके विरह चिंतन ने ही इस मूर्ति का गठन किया है और वह प्रेम-प्रीति साधक की मनोमयी मूर्ति का रूप ले सकती है।

इस प्रकार साधना कर मयनावती के पास स्थित नासीरपुर की निवासी एक गुरुबहन साधना के बल से घनी अंधेरी रात में पति के रूप में प्रेम स्वरूप को पाकर आत्मविभोर हो गई थी। वह अपने भाव में पति का ध्यान, जप और पूजा आदि कर रही थी। दिन-प्रतिदिन विधवा के रूप में सुन्दरता, तरुणता और कमनीयता आने से गृह चमक उठा और उसके प्रति सर्वसाधारण की दृष्टि आकर्षित हुई। इस प्रकार एक दिन इस विधवा साधिका के समक्ष प्रेम से गठित पति का स्वरूप परिवर्तित होकर अचानक प्रभुश्री का रूप धारण कर हंस उठा। इतने में ही उसका कामज दाम्पत्य भाव दूर हट गया। विधवा की पूर्वधारणा टूट गई। वह सिर झुका कर प्रभुश्री के सामने गिर पड़ी और उसने उनसे क्षमा मांगी। उस दिन से विधवा के मन में सच्चे प्रेम का उद्रेक हुआ।

उपर्युक्त साधना प्रदान कर प्रभुश्री ने जो कार्य हजारों युग में सम्भव नहीं है, उसे शीघ्र सफल करा दिया। उदाहरण देकर ऐसी सभी घटनाओं का वर्णन करना अतिशयोक्ति समझा जाएगा। क्योंकि यह सब सर्वसाधारण में प्रचार करने की बात नहीं है। ये तो हिन्दू परिवार की भक्तिमति कुलवधुओं की प्रेमसाधना संबंधी गुप्त बातें हैं। प्रेम की साधना कैसी है, भगवत-तत्त्व की विशेष जानकारी रखने वाले व्यक्तियों के अतिरिक्त किसी दूसरे के लिए उसे समझना कठिन है।

यह बात सभी मुक्त कंठ से स्वीकार करेंगे कि अध्यात्म शास्त्र में प्रभुश्री ने ही सर्वप्रथम इस अभिनव पथ का आविष्कार किया है।

आदर्श भाव

यदि प्रभुश्री सभी मतों में विश्वास रखते हैं तो यह प्रश्न सहज ही उठता है कि क्या उनका कोई निश्चित आदर्श नहीं था ? नहीं, उनका कोई आदर्श नहीं था। उन्होंने किसी के सामने कोई विशेष आदर्श रखकर उसे तदनुरूप अनुप्राणित करने की चेष्टा नहीं की। प्रभुश्री ने बार-बार कहा है कि कोई भी किसी दिन आदर्श में नहीं पहुंच सकता। आदर्श भाव सामाजिक जीवन में सुख-सुविधा का विषय हो सकता है, पर आध्यात्मिक जीवन इससे प्रभावित नहीं होता। जगत विचित्रताओं से भरा है। यहां पर अनन्त जीव अनन्त प्रकार से गठित होंगे।

बाल सुलभ सरल भाव

प्रभुश्री के भीतर कभी भी कोमलता का अभाव नहीं दिखाई दिया। वे किसी सुन्दर बच्चे को देखने पर उसे प्यार करते थे। उनका यह प्रेम स्नेहवश नहीं था। वे जहां कहीं भी उन चिरसुन्दर भगवान का सामान्य आभास पाते, वहीं वे स्वयं निरुपाधिभाव में प्रतिष्ठित होते हुए भी उससे नीचे उतर कर उसे प्यार करते थे। वे बहुत सरल प्रकृति के साधु थे। एक दिन वे किसी शिष्य के घर गए हुए थे। उन्होंने शिष्य के छोटे बच्चे को कमरे में अकेले पाकर उससे कहा, "अरे, क्या तू घोड़े का खेल जानता है ?" उसने कहा, "हां, जानता हूं, तुम चढ़ोगे ?" प्रभुश्री ने कहा, "हां चढूंगा।" बच्चा घोड़ा बना। प्रभुश्री अपने भारी शरीर का बोझ अपने ऊपर रख कर बच्चे की पीठ पर चढ़े। थोड़ी देर बाद बच्चे ने प्रभुश्री से कहा, "अबकी बार तुम घोड़ा बनो, मैं चढूंगा।" प्रभुश्री ने सोचा, "हां, जिस अधिकार से मैं बच्चे की पीठ पर चढ़ा, वह भी उसी अधिकार से मेरी पीठ पर चढ़ने का दावा कर रहा है।" मजबूर होकर वे घोड़ा बने। बच्चा कूद कर प्रभुश्री की पीठ पर चढ़ गया। बच्चे की माँ दूर से यह दृश्य देखकर भागी-भागी आई और बच्चे को डांटने लगी। उसने प्रभुश्री से इसके लिए क्षमा मांगी।

विनिमय भाव

पूर्व परिच्छेद में जिस घोड़ा-खेल का वर्णन किया गया है उसके बारे में पूछने पर प्रभुश्री ने बताया कि यह विनिमय है। मैं घोड़ा बने बच्चे पर चढ़ा। अतः बच्चा भी अवश्य मेरी पीठ पर चढ़ेगा। इस विनिमय भाव के बारे में खुलासा करते हुए प्रभुश्री ने कहा, "तुम लोग मुझे पंखा झल रहे हो, मेरे पैर दबा देते हो, मुझे भी इसके विनिमय में कुछ करना होगा। इस जगत में कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता है अर्थात् कोई कार्य करने पर उसका फल निश्चय ही मिलेगा। कर्म के साथ फल का अटूट सम्बन्ध है।"

मठ में रहते समय प्रभुश्री अक्सर ऋषि विद्यालय के बच्चों के साथ खेलते और हंसी-मजाक करते थे। एक दिन वे बच्चों के साथ गुलाब के बाग में घूम रहे थे। उनमें से एक बच्चे ने गुलाब की एक कली तोड़ दी। उसे देखकर मजाक में प्रभुश्री ने कहा, "अरे, तूने गुलाब की कली तोड़ दी, मैं निर्वाणानन्द (तत्कालीन मठाध्यक्ष) को बताकर तुझे मार पड़वाऊंगा।" इससे वह बच्चा रोने लगा। उसने यह बात अध्यक्ष महोदय को न बताने की मिन्नत की। प्रभुश्री ने मजा लेने के लिए जब पुनः कहा कि "बता दूंगा" तो बच्चा और जोर से रोने लगा और निर्वाणानन्द को न बताने के लिए बार-बार अनुरोध करने लगा। बाद में प्रभुश्री ने उसे दिलासा दिया। इसके बाद कुछ दिन बीत गए। एक दिन प्रभुश्री और बच्चे पुनः गुलाब के बाग में घूम रहे थे। उस दिन प्रभुश्री ने गुलाब की एक कली तोड़ कर खुशी से उसे हाथ में पकड़ा। यह देखकर पहले का वह बच्चा कहने लगा, "अहो प्रभुश्री, आज बचकर कहां जाओगे, मैं जरूर अध्यक्ष महोदय को बताकर उनसे तुम्हें मार पड़वाऊंगा।"यह सुनकर अचानक ही प्रभुश्री में भावान्तर आ गया। वे व्याकुलतापूर्वक रो उठे और बच्चे का हाथ पकड़ कर यह बात अध्यक्ष महोदय को न बताने की मिन्नत करने लगे। परन्तु बच्चा छोड़ने वाला नहीं था। जब उसने जरूर बताने की जिद पकड़ ली तो प्रभुश्री बहुत रो-रो कर मूर्छित हो गए। बाद में सभी आए और पूरी

जानकारी लेने के बाद प्रभुश्री की चेतना लौटा लाए। इससे पता चलता है कि प्रभुश्री में विनिमय भाव कितना प्रबल था।

यदि उनमें विनिमय भाव प्रबल था तो स्वतः ही प्रश्न उठता है कि क्या प्रभुश्री कृपावाद को स्वीकार नहीं करते थे। कृपा में फिर पात्र और अपात्र में अन्तर है। जिसमें कृपा को आकर्षित करने की क्षमता होती है, उसी पर ही कृपा की जाती है। मोटे तौर पर विनिमय में कुछ नहीं देने से कृपा नहीं हो सकती। विश्वास और प्रेम करने आदि की कोई साधना नहीं है, फिर भी भगवान की जिस कृपा की उपलब्धि होती है, उसे भी कृपा कहते हैं। परन्तु यह साधारण नियम के बाहर भगवत-विभूति मात्र है।

समन्वय भाव

प्रभुश्री समन्वयवादी थे। "जितने मत उतने पथ" कह कर उन्होंने सभी मतों में खूबियाँ देखी हैं। प्रभुश्री का जीवन समन्वय का जीवन है। जिस समय जगत में असंख्य मतवाद और विषमता दिखाई देती है, उस समय अवतारगण आकर एक मतवाद और एक आदर्श का प्रचार करते हैं। अधिकारी और अनाधिकारी पर विचार न कर सभी को एक भाव, एक आदर्श पर चलाना अवतारों का कार्य है। अवतारों द्वारा प्रचारित मतवाद में जो गंभीर सत्य निहित है, सद्गुरुगण अपने जीवन में साधना कर जगत में उसका प्रचार करते हैं।

सद्गुरुगण अपने से पूर्व आए अवतारों द्वारा प्रचारित मतवादों को अस्वीकार न करते हुए भी जगत में अभिनव पथ का आविष्कार करते हैं। अतः आदर्श के बारे में बताते हुए प्रभुश्री ने हमसे कहा है, "शंकर का मत और गौरांग का पथ ही तुम लोगों का आदर्श है।"

ज्ञान प्राप्त करना ही हम लोगों का चरम लक्ष्य है। परन्तु आदि शंकर द्वारा प्रवर्तित साधना-पथ में हम जैसे दुर्बल अधिकारियों के लिए चलना असंभव मानकर उन्होंने हमें भक्ति पथ पर चलने का उपदेश दिया है। "शंकर का मत और गौरांग का पथ"—इस उदार सार्वभौम

उपदेश के माध्यम से प्रभुश्री ने ज्ञान और भक्ति में समन्वय स्थापित किया है।

यह समझते हुए कि ज्ञान-भक्ति के समन्वय पथ पर नहीं चल सकने से नीरस और शुष्क ज्ञान के पथ पर अथवा ज्ञान रहित आचार अनुष्ठान के पथ पर चलने से भारत की दुर्दशा दूर नहीं होगी, प्रभुश्री ने हमारे समक्ष समन्वय का आदर्श रखा है। किस प्रकार ज्ञान और भक्ति का समन्वय संभव होता है, प्रभुश्री ने अपने जीवन में उस आदर्श को दिखाया है। हम लोगों ने प्रभुश्री के भीतर शंकर और गौरांग अर्थात् ज्ञान और भक्ति का अभूतपूर्व मिलन अपनी आँखों से देखा है। तंत्र, ज्ञान, योग और भक्ति पथ में सिद्धि प्राप्त करने के कारण प्रभुश्री में एक तरह का उदारभाव सदैव विद्यमान रहता है।

उनके पास आकर सभी मतों और सभी पथों पर चलने वाले लोगों को एक समान आदर मिला है। साधारण, असाधारण जो कोई भी उनके पास उपदेश प्राप्त करने की इच्छा लेकर आया, उन्होंने उसे परम आशीषवाणी सुनाकर यथोचित साधना सिखाई। उन्होंने बराबर कहा, "मैं एक साधारण मनुष्य हूं। मैंने साधना करके अपने इस जीवन में जीवन्मुक्त-अवस्था प्राप्त की है। तुम लोग भी मनुष्य हो। अतः तुम लोग भी मेरे जैसी अवस्था क्यों नहीं प्राप्त कर सकते ? मुझे विश्वास है तुम लोग निश्चय ही मेरे जैसी जीवन्मुक्त-अवस्था प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य बना सकोगे।"

प्रभुश्री के मुखारविन्द से हम लोगों ने "ज्ञान-भक्ति", "कर्म-योग", "गृहस्थ और संन्यासियों के सम्मेलन" संबंधी अनेक उपदेश प्राप्त किए हैं। उन्होंने अनेक अवसरों पर उपदेश प्रदान कर हमें समझाया कि आदर्श गृहस्थ और और आदर्श संन्यासी के बीच कोई अंतर नहीं है।

ज्ञान और भक्ति

प्रभुश्री ने कहा है, "विश्लेषण पथ अर्थात् ज्ञान पथ के साधक ब्रह्मसत्ता में निमग्न हो जाते हैं। अतः वे लीलानन्द का भोग नहीं कर

पाते हैं। फिर संश्लेषण पथ अर्थात् भक्तिपथ के साधक लीलानन्द में डूब कर स्वरूपानन्द से वंचित हो जाते हैं। परन्तु जो विश्लेषण पथ में जाकर संश्लेषण पथ में लौट आता है, केवल वही सच्चिदानन्द सागर में डूब कर आत्मस्वरूप में लीलानन्द का उपभोग करता है। केवल उसी का जीवन संपूर्ण है। जो लोग लीलानन्द में मतवाले हो जाते हैं, वे नित्यानन्द का स्वाद न पाकर नित्य अवस्था को कठोर और शुष्क कहते हैं और इस प्रकार अपनी विज्ञता प्रकट करते हैं और जो लोग केवल नित्यानन्द में पागल हैं, वे अनित्य ज्ञान की वजह से लीलानन्द के प्रति अश्रद्धा करते हैं। परन्तु भगवान जिस प्रकार नित्य अर्थात अनादि और अनन्त हैं, भगवान की लीला भी वैसी ही अनादि और अनन्त है। जिसे भगवान के इन दोनों भावों की उपलब्धि हुई है केवल वही ब्रह्मविद्, वही प्रेमिक शिरोमणी है।

"भक्ति मार्ग" और "ज्ञान मार्ग" में से किसी एक पथ का अवलंबन लेने से पूर्ण सच्चिदानन्द की उपलब्धि नहीं हो पाती। दोनों मार्गों का अवलंबन नहीं लेने अर्थात ज्ञान और भक्ति के समन्वय मार्ग पर नहीं चलने से कोई पूर्ण ज्ञान का अधिकारी नहीं बन सकता। उसके हृदय की संकीर्णता दूर होकर उसमें सार्वभौम उदारता भी नहीं आती है। अतः वह सांप्रदायिक भाव का त्याग न कर धर्मजगत को हिंसा-द्वेष से कलुषित कर देगा। परन्तु जिस के हृदय में ज्ञान और भक्ति का मिलन हुआ है, उसमें किसी प्रकार का विद्वेष भाव नहीं रहेगा। वह सभी संप्रदायों में सम्मिलित हो कर सभी रसों में निमग्न होकर हर तरह का आनन्द ले सकता है।

हनुमान, प्रह्लाद, शुकदेव और जनक आदि महात्मा ज्ञान और भक्ति के मिलन से कृतकृत्य हुए हैं। रामप्रसाद, तुलसी दास, गुरु नानक, रामकृष्ण परमहंस आदि महापुरुषों ने भी ज्ञान और भक्ति के मिलनानन्द का मधुर स्वाद प्राप्त किया है। शंकर और गौरांग का मिलन ही ज्ञान और भक्ति का समन्वय है। शंकर और गौरांग अर्थात् ज्ञान और

भक्ति का मिलन होने पर धर्म जगत से समस्त हिंसा, द्वेष, द्वन्द्व, कोलाहल दूर होकर शांति और प्रेम की पावन धारा प्रवाहित होगी।"

"शंकर और गौरांग का मिलन ही पूर्ण सत्य, सच्चा धर्म है। अतः प्रत्येक साधक को शंकर और गौरांग को एक ही आसन पर स्थापिथ करना चाहिये। हम किसी के हृदय में एक ही आसन पर शंकर और गौरांग को देखते ही बिना सोचे विचारे समझ लेंगे कि वह रामकृष्ण का भक्त है। कब ऐसा दिन आयेगा जब प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में शंकर और गौरांग ओतप्रोत भाव से विराजमान होंगे। शंकर और गौरांग अर्थात् ज्ञान और भक्ति का मिलन होते ही धर्म जगत से समस्त विद्वेष, द्वन्द्व. कोलाहल दूर होकर शांति और प्रेम की अमृत धारा प्रवाहित होगी। साधारण लोग भी उसकी छत्रछाया में आकर निर्विवाद स्थान प्राप्त कर कृतार्थ होंगे। जिसके हृदय में शंकर और गौरांग के लिये एक ही आसन स्थापित है, उसके हृदय में भक्ति रूपी गंगा ज्ञान रूपी सागर में सम्मिलित हुई है। वही व्यक्ति जीवन्मुक्त है।"

तेरहवां अध्याय

भाव जगत का स्वरूप

प्रभुश्री की वाणी

"पहले ब्रह्म निर्गुण थे। उनमें लीला करने की इच्छा हुई। लीला तो अकेले नहीं हो सकती। निर्गुण ब्रह्म की इच्छा मात्र से ही उनके शरीर से माँ का उद्भव हुआ। यही माँ सगुण ब्रह्म या ईश्वर हैं। इस माँ से एक पुरुष और एक नारी का उद्भव हुआ। बाद में इस पुरुष और नारी से जीवजगत की सृष्टि हुई। माँ ने देखा कि उनका सब कुछ है, पर स्वामी नहीं हैं। अतः उन्होंने तपस्या आरम्भ की। उनकी तपस्या से निर्गुण ब्रह्म गुरु बनकर साकार रूप में अवतरित हुए। माँ की साधना से निर्गुण ब्रह्म उनके सामने प्रकट हुए। निर्गुण और सगुण के संधिस्थल पर स्थित अप्राकृत भूमि पर माँ ने उन्हें लेकर संसार की रचना की। यह हुआ माँ का अपना संसार। इसे भावलोक या नित्यलोक कहते हैं।"

"अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के मूल में जो महाशक्ति या सगुण ब्रह्म हैं, वे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का सृजन कर भी तृप्त नहीं हो सके। उनके भीतर एक तरह का अभावबोध या अपूर्णता बनी रही। इसलिए उन्होंने तपस्या आरम्भ की। उनकी तपस्या से मुग्ध होकर निर्गुण ब्रह्म भी कुछ दूर उतर आए।"

"सगुण ब्रह्म ने निर्गुण ब्रह्म की सेवा करने के लिए इस भाव जगत में घर-बार, पशु-पक्षियों का सृजन किया। भाव जगत में नित्य

लीला होने लगी। भाव जगत में केवल भाव का अन्तर रहा अन्यथा वहाँ पर तत्त्वतः सब कुछ एक जैसा है।"

"जिस प्रकार इस जगत में पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े और पेड़-पौधे हैं, ठीक वैसे ही भाव जगत में सब कुछ हैं। भाव लोक के जो भगवान हैं, उनका शरीर तो चिन्मय है ही, साथ ही मनुष्यों, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों का शरीर भी चिन्मय है। सब उनकी लीला के सहयोगी हैं। कोई पार्षद, कोई उनकी शोभा बढ़ाने वाली वस्तु, तो कोई उनके चित्त में आनन्द पैदा करने के लिए आनन्ददायक स्थान में गा रहा है। द्वैतभाव अर्थात् साकार भाव के अभाव में लीला नहीं हो सकती।"

"यहाँ पर सब भावघन मूर्तियाँ हैं। मातृभाव कहने से मातृत्व के गुण अर्थात वत्सलता, कोमलता आदि गुणों के समष्टिभाव का बोध होता है। जिस समय यह मातृभाव मूर्ति धारण करेगा, उस समय उस मूर्ति को देखने से हिन्दू, ईसाई, मुसलमान आदि सभी के प्राणों में मातृभाव जागेगा। यह मूर्ति ऐसी सुन्दर और चित्ताकर्षक होगी कि इसे देखते ही प्रत्येक के प्राणों में, यहां तक कि हिंस्र आदि इतर जीवों के प्राणों में भी विमल मातृभाव जागेगा। अन्य सभी भावों के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। हम लोग संसार में जो मूर्तियां देखते हैं, ये मूर्तियां वैसी नहीं हैं। मद्रास के कृष्ण को देखकर बंगालियों के मन में श्रद्धा-भक्ति नहीं आती। फिर बंगालियों के कृष्ण को देखने से पश्चिम भारत के लोगों के मन में श्रद्धा-भक्ति नहीं आएगी, क्योंकि ये मूर्तियाँ उनके अपने-अपने भावों के अनुरूप बनाई गई हैं। परन्तु भावलोक के कृष्ण की मूर्ति इस प्रकार गठित है कि उसमें सभी लोगों, सभी जातियों और सभी प्राणियों का भाव रहता है अर्थात् जो भी उस मूर्ति को देखेगा, वह समझेगा कि वह मूर्ति उसके भाव के अनुरूप है। इस जगत में संगीत और रागिनियों की मूर्तियाँ नहीं हैं। परन्तु भाव लोक में सभी राग-रागिनी मूर्तिमान हैं। यहां किसी गान को सुनने से जो आनन्द मिलता है, वहां पर उस रागिनी की मूर्ति देखने से वैसा ही आनन्द मिलता है। यहां पर जिन-जिन चीजों की मूर्तियां हैं, भाव

लोक में वे सब अमूर्त हैं (अर्थात् उनकी मूर्तियां नहीं हैं)। यहां पर जो चीजें अमूर्त हैं, वहां भाव लोक में वे सब मूर्त हैं। भावलोक में दास्य, सख्य आदि भाव समूह मूर्तिमान है। भाव लोक किसी गुण के अधीन नहीं है। एक मात्र प्रेमिक ही वहां पर जा सकते हैं। योग अथवा किसी अन्य तत्त्व से भाव लोक की जानकारी नहीं मिलती है। भाव लोक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के ऊपर स्थित है। जगत के रहस्यों को अपने अधीन कर लेने पर भी भाव लोक का दिग्दर्शन नहीं होता। यहां तक कि समाधि में लीन योगियों को भी उसकी खबर नहीं रहती। एक मात्र भावग्राही प्रेमिक भक्तों की ही उस लोक तक गति है। नित्यलोक की मूर्तियाँ ऐसी भावघन और चिन्मय हैं कि अनुभव किए बिना उन्हें पूर्णतया नहीं समझा जा सकता। फिर ऐसा कोई शब्द नहीं जिसके द्वारा उन सब भावों को व्यक्त किया जा सके। इस भाव को समझने के लिए साधना आवश्यक है। एक मात्र दृढ़ विश्वास ही इसकी साधना है। मैंने जो कुछ कहा है विश्वास के अभाव में उसमें से कुछ भी नहीं समझ सकोगे। फिर मेरा कहना केवल अनुमान की बात नहीं हैं, वह सब प्रत्यक्ष सत्य है। यदि तुम लोग भाव लोक को समझ सकोगे, उसका अनुध्यान करोगे, तो मृत्यु के बाद वहां जाकर चिन्मय शरीर में चिन्मय प्रभुश्री के पास खड़े होकर जिस प्रकार यहां पर पंखा झल रहे हो ठीक वैसे ही चिन्मय पंखा झलोगे। यह सबसे ऊंचा भाव है। मैं तुम लोगों को इस भाव की साधना दे जाता हूं। इस प्रकार इस जगत में रहकर भाव को पुष्ट करते हुए अन्त में तुम लोग नित्य जगत में जाकर उस नित्य भाव में समा जाओगे। वहां पर चिरकाल तक यह लीला चलेगी।"

प्रभुश्री का चिन्मय भाव

"मेरा यह स्थूल शरीर चिन्मय नहीं है। एक दिन मेरा यह शरीर तुम लोगों के सामने नष्ट हो जायेगा। मैंने जिस चिन्मय शरीर को प्राप्त किया है, वह इस शरीर के भीतर है। स्थूल देहधारी होते हुए

भी मेरे भीतर युगपत केन्द्र और परिधि का ज्ञान है। इस देह में होते हुए भी मैं ब्रह्म हूं।"

"नित्य लोक में राधाकृष्ण के युगल मिलन की अवस्था नित्यभाव से विराजमान है। राधा पूर्ण प्रेम की मूर्ति और कृष्ण पूर्ण ज्ञान के घन विग्रह हैं। नित्य लोक पूर्ण ज्ञान और पूर्ण प्रेम के मिलन से गठित है।"

"ये सब तत्त्व बहुत ही गोपनीय और गूढ़ हैं। इन्हें हृदयंगम करने की चेष्टा करो। चित्त को स्थिर कर इन सबका चिन्तन करो। गुरु कृपा से धीरे-धीरे सब कुछ अनुभव कर सकोगे।"

"भाव बहुत ही गूढ़ तत्त्व है। ये पांच प्रकार के हैं—शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। जगत में इन पांच भावों के साधक हैं। भक्ति के साथ किसी भी भाव से भगवत साधना करने पर भी इन पांच भावों में से किसी एक भाव का अवलम्बन लेना होगा। मुनि-ऋषियों ने शांत भाव की, हनुमान ने दास्यभाव की, ग्वालबालों ने सख्य भाव की और गोपियों ने मधुर भाव की साधना की थी। फिर कोई कोई पांचों भाव में सिद्ध थे, जैसे राजा अम्बरीश। उनमें अष्ट सात्त्विक भाव और नवधा भक्ति प्रकट हुई थी। लेकिन ऐसे साधक विरले हैं। मधुर भाव सर्वश्रेष्ठ है। परन्तु सामान्य पति-पत्नी का भाव मधुर भाव नहीं है। यह मधुर भाव अव्यक्त है। राय रामानन्द आदि इस भाव के साधक थे। भक्ति में सिद्ध नहीं होने से किसी को सही-सही भक्त नहीं कहा जाता है। जिसको देखते ही भक्ति के सभी लक्षणों का उद्रेक होता है, वही भक्त है।"

भाव साधना के संकेत

"देखो, प्रेम-साधना कभी भी सिद्ध नहीं होती क्योंकि सिद्ध होने से सायुज्य की स्थिति आ जायेगी और साधक लय प्राप्त हो जाएगा। उस समय साधक का अहंभाव नहीं रहेगा। सिद्ध होने या न होने का उसे पता चलेगा भी कैसे?"

"एकमात्र परमपुरुष ही प्रेम साधना में सिद्ध हैं। केवल वे ही मूर्तिमान प्रेम के रूप में नित्यधाम में विराजमान हैं। ईश्वर का दर्शन

किए बिना यह प्रेम साधना नहीं हो सकती। पागल बने बिना यह साधना हो ही नहीं सकेगी। जिस समय वे बिजली की भांति क्षण भर के लिए दर्शन देकर अदृश्य हो जायेंगे, उस सयय साधक चौंक उठेगा और उन्हें पुनः देखने के लिए पागल बन जायेगा। ऐसा होने से पहले जो लोग प्रेम की साधना करते हैं, वे पाखंड के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। इष्टदेव को देखने से पहले प्रेम की साधना नहीं हो सकती, पर भक्ति की साधना हो सकती है। विजयकृष्ण गोस्वामी के जीवन में आता है कि इष्ट दर्शन के बाद पन्द्रह दिन तक उन्हें बाह्य ज्ञान नहीं रहा। मुझे भी तीन मास तक बाह्य चेतना नहीं रही थी। उसके बाद प्रेम उन्माद की अवस्था आई। यह बात तो मैं तुम लोगों को अनेक बार बता चुका हूं।"

भाव साधना की गुप्त बातें

"सच्चे ज्ञान में प्रतिष्ठित हुए बिना प्रेम प्राप्त करना असंभव है। जो अपना स्वरूप नहीं जानता है, भगवान का स्वरूप नहीं जानता है, वह भगवान के साथ प्रेम सम्बन्ध कैसे स्थापित कर सकता है। जीव भाव में रहकर सच्चिदानन्द घन विग्रह के साथ प्रेम करना क्या संभव है? समजातीय नहीं होने पर परस्पर भाव का आदान प्रदान नहीं हो सकता। प्रेम प्राप्त करने के अनेक उपाय या साधनाएं हैं। उनमें से सहज भाव या नारी और पुरुष के आपसी सहायता से साधना करना एक उपाय है। यह सार्वभौम पथ नहीं होने पर भी मैं इसकी उपेक्षा नहीं करता हूं। तब सर्वप्रथम इस पथ में अधिकार प्राप्त करना चाहिए। राय रामानन्द की तरह निर्विकार चित्त अथवा द्विज चण्डीदास की तरह प्रत्यक्ष आदिष्ट नहीं होने से इस पथ के अधिकारियों की बड़ी दुर्गति होती है। अधिकार प्राप्त न कर अथवा प्रत्यक्ष रूप से आदिष्ट न होकर इस पथ में साधना करना विपत्तिकारक है। इस सहज साधना पथ में दोनों में से किसी एक को सिद्ध होना चाहिए अन्यथा रसानन्द का भोग करने के स्थान पर अनन्त नर्क का भोग करना पड़ेगा।"

"एक के बाद दूसरी साधनाओं के बारे में मैंने जो कुछ बताया है मैंने अपने जीवन में उस सबका परीक्षण किया है। तुम लोगों को मैं और क्या बताऊं, तुम तो बच्चे हो।"

प्रेम लाभ का सार्वभौम पथ

"श्रीगुरु की कृपा से एक बार अपने अन्तर में डूबने से सब कुछ अपने अधीन हो जाएगा। सरल शास्त्रों द्वारा अनुमोदित वैराग्य के पथ पर चलो। साधना का मुख्य द्वार पार कर आनन्द लोक में प्रवेश करो। तब तुम देखोगे, सब भाव, सब तत्त्व तुम्हारे अधीन हो चुके हैं। ज्ञान-वैराग्य की प्रतिष्ठा के बिना गुप्त पथ में साधना नहीं की जा सकती। गुप्त पथ दुर्गम और संकीर्ण है।"

"गुप्त पथ की साधना व्यक्तिगत पथ है। वह प्रचार करने के योग्य सार्वभौम पथ नहीं है। ऋषियों द्वारा प्रदर्शित सदाचार और संयम का पथ सार्वभौम पथ है। हम लोग ऋषियों द्वारा प्रदर्शित सर्वसाधारण के लिए नियत मुख्य मार्ग पर चलेंगे। मठ और आश्रम इसी मार्ग का प्रचार कर रहा है। जो पथ सुगम है, वह काफी लम्बा होने पर भी सबसे अच्छा है। यदि इस जन्म में नहीं पहुंच सकोगे, फिर भी संस्कार अर्जित होकर बना रहेगा। परन्तु गुप्त पथ में एक बार पतन हो गया तो और उठने का कोई उपाय नहीं है। आम रास्ते पर जाते समय अनेक साधु और भक्त सहायक होते हैं। यदि तुम लोग विश्वास रखोगे तो कोई विशेष साधना भजन किए बिना भी श्रीगुरु की कृपा से एक दिन यह सब प्राप्त कर लोगे।"

वृन्दावन का सहज भाव

"वृन्दावन में श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का सहज भाव था। गोपियों के प्रेम में माहात्म्य ज्ञान नहीं था। माहात्म्य ज्ञान रहने से सहज भाव पैदा नहीं होता। श्रीकृष्ण सत्यस्वरूप थे। गोपियां उन्हें सहज मनुष्य के रूप में सोचती थीं, फिर भी उनके भीतर श्रीकृष्ण

का स्वरूप स्वतः ही खिल उठता था। जैसे मैं जीवन्मुक्त महापुरुष और सद्‌गुरु हूं। इस सबका विचार न करके यदि कोई मुझे शुद्ध मनुष्य के रूप में प्रेम करेगा तो भी उसका चित्त निश्चय ही उन्नत हो उठेगा। यदि कोई किसी साधारण मनुष्य को जी-जान से सही-सही प्रेम करेगा तो भी उसके भीतर भगवान खिल उठेंगे। चण्डीदास ने एक मामूली धोबिन से प्रेम किया था, परन्तु उनके सामने धोबिन का रूप किशोरी राधा का स्वरूप बनकर खिल उठा था। भाव की साधना में ज्ञान की चर्चा करने से भगवान नहीं मिलते हैं। एक कहानी इस प्रकार है—

"किसी समय एक भक्त के मन में भगवान के प्रति वात्सल्य भाव का उद्रेक हुआ। वह भगवान को पुत्र के रूप में चाहने लगा। उसके प्राणों के आकर्षण से भगवान एक शिशु बनकर आए और भक्त को पकड़ कर सो गए। इसी बीच एक बिल्ली ने म्याऊं की। बिल्ली की आवाज सुनकर भगवान थर-थर कांपने लगे और उन्होंने भक्त को और जोर से पकड़ लिया। उस समय भक्त ने सोचा कि यदि यह शिशु सचमुच भगवान होता तो क्या सामान्य बिल्ली की आवाज से डर जाता? मन में भक्ति भाव जागृत होते ही ज्ञान की चर्चा करने पर शिशु रूपी भगवान अदृश्य हो गए। उसके बाद आकाशवाणी हुई, "तुम्हारे मन में ज्ञान का विचार आ चुका है। अब तुम मुझे भाव के रूप में और नहीं पा सकोगे।" श्रीकृष्ण ने अपने मुंह के अन्दर माता यशोदा जी को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दिखाया। परन्तु यशोदा भगवान की विभूति से प्रभावित नहीं हुईं। यशोदा ने सोचा, बच्चा कहीं डर गया है। उसे भूत लगा हुआ है। इससे वात्सल्य भाव खंडित नहीं हुआ। माहात्म्य ज्ञान खिल उठने से महतज्ञान नहीं रहेगा। गोपियों ने श्रीकृष्ण का मनुष्य के रूप में भजन किया था। परन्तु सत्यस्वरूप का भजन करने के कारण उनका चित्त उन्नत हो उठा था।"

"मेरे शिष्य-भक्तों में से कुछ ऐसे भी हैं जो कि मुझे शुद्ध मनुष्य के रूप में प्रेम करते हैं। वे मुझे गुरु या भगवान न समझ कर मनुष्य के

रूप में प्यार करते हैं। फणी बाबू और बिहारी शर्मा इसी श्रेणी के हैं। प्रेम का पात्र अयोग्य या हीन होने पर भी दूसरे पक्ष के प्रेम की शक्ति से वह भी उत्कृष्ट हो जाता है। यदि भक्ति और विश्वास के बल पर सामान्य पत्थर की मूर्ति में ब्रह्म चैतन्य का विकास हो सकता है, तो तुम लोगों के मुझे भगवान समझने पर मेरे भीतर भी भगवद् शक्ति का विकास कैसे नहीं होगा। अतः मैं कहता हूं, शिष्यों की भक्ति और विश्वास के बल पर श्रीगुरु का गुरुत्व भी विकसित होता है। प्रेम करने से जो प्रेम करता है, उसकी जितनी उन्नति होती है, जिसको प्रेम किया जाता है, उसका चित्त उतना ही उत्कर्ष होता है। मेरे जीवन में ऐसा ही हुआ। मुझे अपनी पत्नी का सच्चा प्रेम मिला था। मैं उसके बाह्य रूप पर मुग्ध नहीं था। मैं उसके गुणों पर मुग्ध था। वह सारी रात बैठकर मेरी सेवा करती रहती। मेरे कहने पर वह सो जाती थी। मेरे सो जाने के बाद वह जागकर मेरी सेवा में लग जाती। मेरे कहीं अन्यत्र रहने पर वह सिर पर तेल नहीं लगाती थी। घर लौट कर जब मैं उसका कारण पूछता था तो वह कहती थी किसके लिए यह श्रृंगार करूं? जब वह इस शरीर को छोड़ चली गई तब मैं उसके स्नेह और श्रद्धा को समझ सका। उसके प्रेम की याद में मैं पागल बन गया। मैंने तब प्रतिज्ञा की कि और किसी को प्रेम नहीं करूंगा। यदि किसी दिन भगवान को पत्नी के रूप में पाऊं तो उन्हें प्यार करूंगा। मैंने ऐसी प्रतिज्ञा की थी, इसीलिए अनेक प्रलोभनों से गुजर कर भी मैं विचलित नहीं हुआ।"

"बड़े सौभाग्य से सच्चा प्रेम और स्नेह मिलता है। मैं इस स्नेह की बात का प्रचार करना चाहता हूं। मुझसे प्रेम करके मेरे शिष्य भक्तों को जो कुछ प्राप्त हो रहा है, साधना-भजन से भी वह सब कोई प्राप्त नहीं कर सका। अतः प्रेम करना ही मुख्य बात है। प्रेम की यह भावना सबके भीतर है। प्रत्येक व्यक्ति प्रेम करता है और ऐसी आशा भी रखता है कि दूसरे लोग भी उसे प्रेम करें। परन्तु सच्चा प्रेम शायद ही किसी-किसी के भाग्य में मिलता हो।"

प्रभुश्री के दर्शन और स्पर्श से किस प्रकार भाव का संचार होता है, इस पर हमने योगमाया देवी के प्रसंग के समय और प्रभुश्री के माणिकगंज आगमन के प्रसंग में चर्चा की है।

पाठको ! हिन्दू धर्म के चार तत्त्व जिस प्रकार से इस एक ही आधार में प्रकट हुए थे, वैसा आधार और नहीं मिलेगा। उनकी इस साधना का व्यक्तिगत प्रयोजन था अथवा भारत के विभिन्न संप्रदायों को गुरुवाद के माध्यम से एकता के सूत्र में जोड़ने के लिये आवश्यक था, वह हम बाद में देख सकेंगे।

चौदहवां अध्याय

प्रभुश्री निगमानन्द का गुरुभाव

सार्वभौम गुरु

प्रभुश्री किस प्रकार तंत्र, ज्ञान, योग और प्रेम की साधना में सिद्धि प्राप्त कर जगद्गुरु के आदेश से गुरुभार को वहन कर लोक समाज में आये, इसका वर्णन पहले किया जा चुका है। जिस समय प्रभुश्री निर्विकल्प भूमि से चरम सत्य को प्राप्त कर गुरु के रूप में बंगाल में पहुंचे, वह अत्यन्त दारुण समय था। समाज के मेरुदण्ड रूपी युवावर्ग में त्याग, संयम या वीर्य नहीं था। देश आचार रहित और ब्रह्मचर्य विहीन था, "नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:"। "ब्रह्मचर्य साधन" और "योगी गुरु" पुस्तकों के प्रकाशित हो जाने के बाद युवा वर्ग का चित्त नियम संयम की ओर आकृष्ट हुआ। प्रभुश्री की शिक्षा-दीक्षा और गुरु शक्ति देश के युवावर्ग की उच्छृंखलता के स्रोत को रोकने में विशेष सहायक बनी।

प्रभुश्री ने सभी लोकों के समाचार जानकर ही सार्वभौम गुरु का भार वहन किया। इसलिए वे सभी श्रेणियों के साधकों की साधना-पिपासा दूर करने में सफल हो पाए थे। उनके पास भारत के किसी भी जाति और सम्प्रदाय के लोग, ईसाई, मुसलमान आते थे, तो प्रभुश्री उन्हें साधना का कौशल सिखाकर उनमें शक्ति का संचार कर देते थे। फिर भी वे किसी जाति या संप्रदाय के व्यक्ति को अपना धर्म और मत

परिवर्तन कर दूसरे मत की साधना करने के लिए प्रोत्साहित नहीं करते थे। भारत के बाहर से विभिन्न देशों के लोगों ने भी उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था। प्रभुश्री ने उनमें गुरु शक्ति का संचार कर अपने सार्वभौम गुरुभाव की विशेषता को बनाए रखा। इसलिए बंगाल, बिहार, असम, उड़ीसा, श्रीलंका और ब्रह्मदेश में उनके शिष्य-भक्तों के घर पर अभी भी उनके श्रीविग्रह की पूजा की जाती है।

सदगुरु कौन हैं

"जिन्होंने निर्विकल्प समाधि प्राप्त की है, उन्हें सदगुरु कहा जाता है। केवल वे ही दूसरों पर कृपा करने में समर्थ हैं। जो स्वयं कृपासिद्ध हैं, वे फिर दूसरों पर कृपा करेंगे भी कैसे ? तब एक श्रेणी के सिद्धगुरु अपने शिष्यों के भीतर इस भाव को संचारित कर सकते हैं। परन्तु एक मात्र सदगुरु ही कृपा कर सकते हैं।

"सत शब्द गुरु का विशेषण नहीं है, सदगुरु एक बात है। भक्ति-पथ और योग-पथ में सिद्धगुरु को सदगुरु नहीं कहा जा सकता। ज्ञानपथ में सिद्धगुरु को ही सदगुरु कहते हैं। केवल ज्ञानपथ में हीं निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति होती है"

अवतार और सदगुरु

जब प्रभुश्री ने देखा कि उनके शिष्य-भक्त उनके लिए अवतार शब्द का प्रयोग कर रहे हैं तो उन्होंने सदगुरु और अवतार के अन्तर को समझाने के लिए अपने शिष्य भक्तों को लक्ष्य करके कहा, "अवतारगण अवतीर्ण होते हैं। तुम्हारे गुरु अवतार नहीं हैं। वे सदगुरु हैं। तुम लोग अवतार और सदगुरु को समपर्यायवाची समझते हो। यहां तक कि किसी किसी ने प्रचार कर दिया है कि मैं अवतार हूं। मैं इसका तीव्र विरोध करता हूं। तुम लोग सदगुरु को अवतार कहने की गलती मत करो। यह बात तो सच है कि एक दृष्टि से तुम सभी एक-एक अवतार हो। ब्रह्म से निकल कर कितनी लीलाएं कर रहे हो। परन्तु अवतार

का मुख्य अर्थ ऐसा नहीं है। जिस समय लीला अथवा युग के प्रयोजन के अनुसार जगद्‌गुरु की इच्छा मूर्त होकर स्थूल मनुष्य के रूप में जन्म लेती है, उस समय उन्हें अवतार कहा जाता है। लेकिन जब साधारण जीव जन्मजन्मान्तर की कठोर साधना से शेष जन्म में पूर्णत्व को प्राप्त करता है और उसके वासना और कामना से रहित शुद्ध आधार में जगद्‌गुरु की इच्छा प्रतिफलित होती है, तब उन्हें सदगुरु कहा जाता है। सदगुरु मनुष्य हैं, अवतार भी मनुष्य हैं। मनुष्य बने बिना मनुष्य का कोई हित नहीं किया जा सकता। अवतार जगद्‌गुरु की मूर्ति विशेष इच्छा है और सदगुरु उनकी साधारण इच्छा है। साधना से क्रमोन्नति प्राप्त कर साधारण जीव सदगुरुत्व प्राप्त करता है। जिनका व्यक्तित्व या वैशिष्ट्य पूरी तरह नष्ट हो जाता है, जिनकी अपनी कोई इच्छा नहीं रहती है, जिन्हें यंत्र बनाकर जगद्‌गुरु अपना कार्य करते हैं, उन्हीं को सदगुरु कहा जाता है।"

"जगद्‌गुरु की इच्छा जिस प्रकार स्थूल मनुष्य के रूप में जन्म लेती है, ठीक वैसे ही वह शुद्ध आधार में प्रतिफलित होती है। जगद्‌गुरु की इच्छा जब स्थूल मनुष्य के रूप में जन्म लेती है, तब उन्हें अवतार कहा जाता है और जब वह शुद्ध आधार में प्रतिफलित होती है तब उन्हें सदगुरु कहा जाता है। अतः सदगुरु को भी विशेष इच्छा का अवतार कहा जा सकता है। तत्त्वतः सदगुरु और अवतार के बीच कोई अन्तर नहीं रहने पर भी उनके कार्यों में अन्तर है। अवतार जिस समय आते हैं वे जगत की भावधारा में आमूलचूल परिवर्तन कर एक नई भावधारा प्रवाहित कर देते हैं। सदगुरु अवतार द्वारा प्रचारित मत और पथ को अपनी साधना से सर्वसाधारण में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करते हैं। कोई भी व्यक्ति किसी भी भाव में क्यों न रहे उसके भीतर अवतार की भाव धारा को उसी रूप में प्रस्फुटित करना सदगुरु का कार्य है। अवतार समष्टि के लिए आते हैं और सदगुरु व्यष्टि और समष्टि दोनों के लिए, विशेषकर व्यष्टि के लिए आते हैं। तुम्हारे गुरु अवतार नहीं, सदगुरु हैं।"

सदगुरु और जगद्‌गुरु

"भगवान ही जगद्‌गुरु हैं। फिर भगवान के भी विशेष-विशेष कार्य हैं। भगवान भी दो प्रकार के हैं, कर्ता भगवान और कारण भगवान। कर्ता भगवान ही अपने हाथों वास्तविक कार्य करते हैं। वे अपने हाथों सृजन आदि करते हैं और कारण भगवान केन्द्र में बैठ कर सब कुछ देखते हैं, पर स्वयं कुछ नहीं करते। जैसे एक मजिस्ट्रेट एक-एक जिले पर शासन करता है। उससे ऊपर के अधिकारी कमिश्नर, कमिश्नर पर शासक गवर्नर है। ये सब अपने अपने हाथ से कार्य करते हैं। परन्तु समूचे देश के कर्ता गवर्नर जनरल अपने हाथ से कुछ भी नहीं करता है। फिर भी सब पर उसका अधिकार है। ठीक वैसे ही व्यष्टि ब्रह्माण्ड के अधिपति कर्ता भगवान और समष्टि ब्रह्माण्ड के अधिपति कारण भगवान हैं। ये कारण भगवान सबसे बड़े हैं। भगवान और गुरु में भी अंतर है। गुरु भगवान की विशेष सत्ता हैं। ब्रह्म को जगद्‌गुरु कहा जाता है, परन्तु वे तो निश्चल हैं। उनके द्वारा कोई कार्य होगा भी कैसे ? अतः ब्रह्म ही कर्ता और कारण के रूप में प्रकट हुए हैं। इन्हीं कारण भगवान को गुरु कहा जाता है।"

"ब्रह्म जीव और जगत के रूप में प्रकट हुए हैं। जिस समय ब्रह्म में सृष्टि की कल्पना जाग उठी, "अहं बहुस्या प्रजायते" "एकोहं बहुष्याम्" अनेक बनने की इच्छा जागृत हुई, उस समय उन्होंने स्वयं को गुरु के रूप में, द्रष्टा के रूप में, सभी विकारों के अतीत के रूप में स्वतंत्र रखा और वे दूसरे रूप में जीव जगत में बदल गए। अतः ब्रह्म का प्रथम विकास ही गुरु है। परन्तु एक बार जीव बन जाने से लौटना सहज नहीं होता, क्योंकि उस समय स्वरूपज्ञान आवृत्त हो जाता है। अतः अनेक बन कर भी जिस प्रकार वे पुनः आत्मस्वरूप में लौट सकेंगे, उसके लिए उन्होंने पहले स्वयं को गुरु के रूप में विकसित कर स्वतंत्र रख दिया, अन्यथा जीव के लिए स्वरूप में लौटने का कोई उपाय नहीं रहता।"

"इस सम्बन्ध में एक कहानी सुनाता हूं, सुनो—यह उपमा बहुत ही सुन्दर है। बात से बात मेल खा जाती है। यशोर जिले के दो मित्रों

ने कामरूप में आकर शाकुंत विद्या की शिक्षा ली। शाकुन्त विद्या से मनुष्य किसी भी प्राणी का रूप धारण कर सकता है। यह विद्या सीख कर वे घर लौटे। उनमें से एक का नाम नदियाचांद था। उसने घर लौट कर अपनी पत्नी को उस विद्या के बारे में बताया। पूरी बात सुनकर पत्नी ने कहा, "देखो, मैंने कभी मगरमच्छ नहीं देखा है। तुम मगरमच्छ बनकर मुझे एक वार उसका रूप दिखाओ।" जब पत्नी ने अधिक जिद की तो नदियाचांद उसके अनुरोध को नहीं टाल सका और उसने अपनी पत्नी से कहा, "देखो, अब मैं मनुष्य हूं। इस विद्या से मैं इस अवस्था में किसी भी प्राणी का रूप धारण कर सकता हूं। परन्तु एक बार मगरमच्छ बन जाने के बाद मुझमें मनुष्य बनने की शक्ति बाकी नहीं रहेगी। इसलिए पहले ही उसका प्रबन्ध कर जाना होगा।" यह कहकर उसने एक घड़े में पानी भरकर उसे अभिमंत्रित कर दिया और अपनी पत्नी से कहा, "देखो, जब तुम जी भर कर मगरमच्छ को देख लोगी, इस अभिमंत्रित पानी को उस मगरमच्छ पर डाल देना, तब मैं पुनः मनुष्य बन जाऊंगा। यदि दुर्भाग्यवश वह पानी नष्ट हो जाता है तो मेरे मित्र को इसकी सूचना दे देने से वह इसका प्रबन्ध कर लेगा।" पत्नी इस पर सहमत हो गई। इसके बाद नदिया-चांद सिद्ध विद्या की सहायता से मगरमच्छ बन गया। नदियाचान्द की पत्नी ने जब उस भयंकर जीव को मुंह फैलाकर पूंछ हिलाते हुए देखा तो वह घबड़ा गई। भय के मारे वह शीघ्रातिशीघ्र कुर्सी पर चढ़ गई। इस घबड़ाहट में उसके पैर लगने से अभिमंत्रित पानी से भरा घड़ा टूट गया। इधर नदियाचांद घर और आंगन में इधर-उधर घूम कर आखिरकार भयभीत होकर पास में बह रही मधुमती नदी में चला गया। उस समय उसकी पत्नी को अपने सर्वनाशी कार्य का दुष्परिणाम समझ में आया और उसने दूर देश में रहने वाले नदिया-चांद के मित्र के पास संदेशा भेजा। मित्र के आने में चार-पांच दिन लग गए। उसने आकर सारी बातें सुनने के बाद कहा, "नदियाचांद का दुबारा मनुष्य बनने का कोई उपाय नहीं है। इस विद्या के नियमों के अनुसार मनुष्य जिस प्राणी का रूप धारण करेगा, जब तक वह उसका खाद्य नहीं खाएगा तब तक ही उसे मनुष्य बनाया जा सकता है। एक

तो चार-पांच दिन बीत चुके हैं। नदियाचांद क्या अब तक भूखा रहा होगा ? वह निश्चय ही मगरमच्छ का खाद्य खा चुका होगा। अतः वह फिर मनुष्य नहीं बन सकता।"

"ठीक वैसे ही ब्रह्म जीव बने हैं और उन्होंने अपने स्वरूप में लौट आने के लिए स्वयं को गुरु के रूप में प्रकाशित कर रखा है। लौकिक रूप में तुलना करें तो जगद्गुरु अभिमंत्रित जल हैं। मनुष्य गुरु के भीतर उनका विकास है। वे सदगुरु के भीतर प्रकट होकर जीव को अपनी ओर आकर्षित कर ले जाते हैं। मोटे तौर पर जो इस अभिमंत्रित जल को लेकर आते हैं, वे मनुष्य गुरु या सदगुरु हैं। उनसे जगत का कार्य होता है।"

"मैं तुम लोगों का गुरु हूं। मैं अभिमंत्रित जल हाथ में लेकर आया हूं। मैं पुनः तुम लोगों को तुम्हारे अपने पूर्व स्वरूप में पहुंचा दूंगा। सही अर्थ में जगद्गुरु से तुम्हारा, हमारा कोई कार्य नहीं हो सकेगा। कार्य होगा सदगुरु के द्वारा, क्योंकि मनुष्य नहीं बनने, छोटे आधार में अवतरित नहीं होने से हमारा, तुम्हारा कोई हित नहीं होगा। जगद्गुरु मनुष्य गुरु या सदगुरु के भीतर प्रकट होकर जीव का उद्धार करते हैं। मनुष्य गुरु ही तुम्हारे परम मित्र और उद्धारकर्ता हैं।"

गुरु और भगवान

"साधारणतया मनुष्य जिन्हें भगवान या देवता कहता है, वे गुणमय हैं। परन्तु हम जिन्हें भगवान समझते हैं, उनमें और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। गुरु और भगवान एक होने पर भी उनके कार्य भिन्न-भिन्न हैं। सृष्टि, स्थिति और लय के जो कर्ता हैं, वे भगवान हैं। उन्हें गुणमय भगवान कहा जाता है। परन्तु गुरु निर्गुण भगवान हैं। श्रीगुरु को भगवान कहने से उन्हें छोटा कर दिया जाता है। हमारे देश में लोग गुरु और भगवान को एक मानकर उनके सामने रोग-शोक का निवारण करने के लिए प्रार्थना करते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है। भगवान दयालु हैं। परन्तु वे इसलिए दयालु नहीं हैं कि वे हमारी बीमारी

ठीक कर देंगे, हमें पुत्र देंगे। तो भगवान को किस प्रकार दयालु कहा जाएगा ? पुत्र की मृत्यु होने पर माँ पुत्र के लिए भगवान के पास क्या कम प्रार्थना करती है ? परन्तु भगवान क्या कुछ सुनते हैं ? भगवान जिस प्रकार दयालु हैं, ठीक वैसे ही वे निष्ठुर और न्यायशील भी हैं। जिस बात से जीव का कल्याण होगा, भगवान उसी बात की व्यवस्था करते हैं। अतः उनके कार्य में अच्छा-बुरा सोचना, जीव के लिए घोर अन्याय और असीम दुस्साहस की बात है।"

गुरु कितने प्रकार के हैं ?

"गुरु चार प्रकार के हैं, जैसे—आदर्श गुरु, आचार्य गुरु, सदगुरु और जगद्गुरु। माता-पिता, अध्यापक आदि आदर्श गुरु हैं। जिनसे प्राथमिक शिक्षा मिलती है, वे आचार्य गुरु हैं। जो गुरु शिष्य में अपनी शक्ति संचारित कर सकते हैं, वे सदगुरु हैं। शक्ति का संचार करना सदगुरु का विशेष कार्य है। जगद्गुरु सब के आदि गुरु अथवा समूचे विश्व की मौलिक सत्ता हैं। जीव के रूप में रूपांतरित सच्चिदानन्द ब्रह्म को सृष्टि के आवर्त्त में से पुनः स्वरूप में लौटाना इनका कार्य है। इनकी सत्ता जगत के सभी सदगुरुओं में व्याप्त होकर कार्य करती है।"

इष्ट और गुरु

"इष्ट और गुरु अभिन्न तथा एक हैं। तब यह सब बहुत ही उच्च-भाव है। यह भाव अन्तर में से आना चाहिए। जिस प्रकार दूध और उसकी सफेदी में अभेद है, ठीक वैसे ही शक्ति और शक्तिमान में अभेद है।"

इष्ट मूर्ति के दर्शन करने की प्रणाली

"पहले आँखें बन्द करो। आँखें बन्द करने पर जो घना अन्धकार दिखाई देगा, वह अनन्त और असीम है। उसके भीतर एक ज्योतिर्मय मंडल की कल्पना करो। उसके भीतर एक ऐसे स्थान की कल्पना करो

जहां चिर वसन्त विराजमान है। वहां पर वृक्ष लताएं मनोहारी रूप में शोभित हैं, कोयल कुहू कुहू तान दे रही है, भौंरे मधुर गुंजन कर रहे हैं। प्राकृतिक शोभा से पूर्ण इस पवित्र स्थान में अपनी कल्पना से सुन्दरतम स्थान की स्थापना करो। उसके भीतर सुन्दर चोटी से सुशोभित मन्दिर देखो। उसके भीतर राधाकृष्ण की युगल मूर्ति की धारणा करो। युगल मूर्ति की धारणा इसलिए करनी होगी कि युगल न होने पर लीला नहीं हो सकेगी। ध्यान की गति कैसी होगी, वह कहता हूं, सुनो। पहले इष्टदेव की मूर्ति पर एकाग्र दृष्टि टिकाए रखो या उस पर मन की धारणा स्थापित करो। ऐसी धारणा करने के कुछ समय बाद मूर्ति हिलने-डुलने लगेगी। मन उस समय विक्षिप्त रहता है। अनेक प्रकार की चिंताओं से युक्त मन जब थोड़ा स्थिर होकर एकमुखी होगा, तब इष्टदेव की मूर्ति आँखों के सामने स्थिर होकर रहेगी। जब मन पूरी तरह स्थिर हो जाएगा, तब इष्टदेव की मृण्मय मूर्ति चिन्मय बन जाएगी। वे बिल्कुल जीवन्त मनुष्य की तरह हाथ पैर हिलाएंगे। उस समय तुम भावस्थ अवस्था में होगे। जिस समय प्राकृत अवस्था में चिन्मय मूर्ति को रात दिन देख और छू सकोगे और जिस समय उनके साथ बातचीत आदि करना सरल हो जाएगा, उस समय वह तुम्हारी साधना की चरम अवस्था होगी। इसके बाद तुम समझ सकोगे कि तुम जिस मूर्ति के साथ बातचीत कर रहे थे वह तुम्हारे मन का रूपान्तर मात्र था, तुम्हारा मन भाव के अनुरूप मूर्ति धारण कर रहा था। अब तुम्हारा भाव प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर होते ही वह मूर्ति धीरे-धीरे विलीन हो जाएगी। इस मूर्ति के दर्शन से वंचित होकर तुम्हारा भाव व्याकुल होकर प्रगाढ़तर हो उठेगा। इससे तुम्हें जिस मूर्ति के दर्शन होंगे, वह श्रीगुरु की कृपा से रचित है। तुम्हारे प्रति करुणा उपजने पर उन्होंने यह मूर्ति दिखाई है। यह मूर्ति अप्राकृत है। उस समय गुरु और इष्ट अभेद हैं। यह मूर्ति और विलीन नहीं होगी। अप्राकृत प्रेम की चरम अवस्था में मूर्ति का उपभोग किया जाता है। सच्चे भक्त का यही काम्य है। यह सब नित्यलोक की बात है। समझना हो तो विश्वास के सिवाय कोई अन्य उपाय नहीं है। इसे तर्क अथवा शास्त्र पाठ से

नहीं जाना जाता ह । तब ज्ञान के विचार से यह विश्वास परिमार्जित होना चाहिए ।"

इष्ट और प्रभुश्री

"यदि तुम इस इष्टदेव के स्थान पर अपने गुरुदेव को बिठाओगे तो और अच्छा है । यदि तुम अपने प्रभुश्री पर विश्वास रखोगे और उनके भाव में दत्तचित्त हो जाओगे तो तुम उनका समस्त ज्ञान प्राप्त कर सकोगे । केवल प्रभुश्री पर विश्वास रखने और उनका ध्यान करने से तुम लोग एक दिन प्रभुश्री जैसे ही बन जाओगे । तुम इष्ट मूर्ति का ध्यान भी कर सकते हो । क्योंकि यदि किसी को सन्देह हो कि प्रभुश्री तो मनुष्य हैं, तो वह इष्ट की मूर्ति का ध्यान कर सकता है । तथापि सच्चे ज्ञान के लिए श्रीगुरु के पास आना ही पड़ेगा, क्योंकि श्रीगुरु ही एक मात्र ज्ञानदाता हैं । श्रीगुरु किस प्रकार कृपा करते हैं, इस बारे में जब मैं अपने शिष्यों से उनकी अनूठी अनुभूतियां सुनता हूं तो मुझे आश्चर्य होता है । कोई शिष्य था। वह गुरु शक्ति को देख सकता था परन्तु, श्री-गुरु को नहीं देख सकता था । उसे मंत्र तो दिया गया था, पर इष्ट मूर्ति की ध्यान-धारणा नहीं दी गई थी । उसने मुझसे भेंट कर कहा, "प्रभो, आपने तो मुझे गुरु शक्ति की ध्यान-धारणा आदि कुछ नहीं दी है, पर मुझे किस लिए ऐसे दर्शन हुए हैं ? मैंने पूछा, "कैसे ?" इसके उत्तर में उसने जो कुछ कहा, वह सुनकर मैं अवाक रह गया । सच्चा भक्त समझ-कर मां ने उसे मेरी मनोमयी मूर्ति में दर्शन दिए हैं ।"

श्रीगुरु और मां

"मां और श्रीगुरु एक दूसरे से अभिन्न हैं । एक को छोड़कर दूसरा नहीं रह सकता । श्रीगुरु और माँ पति-पत्नी के रूप में विद्यमान हैं । श्रीगुरु परम शिव, उदासीन हैं । उन्हें किसी चीज में कोई प्रयोजन नहीं रहता या किसी भी चीज का अभाव नहीं है । वे सदैव इधर उधर चले जाना चाहते हैं। मां ने उन्हें अपने प्रेम के वशीभूत कर रखा है । मां ने उन्हें प्रेम से और उन्होंने माँ को ज्ञान से वशीभूत कर परस्पर को

आकृष्ट कर रखा है। ईश्वर सर्वमय कर्ता होकर भी उदासीन और मां भिखारिन होकर भी राजराजेश्वरी हैं। मां के पास समूचा भण्डार है। वे सब कुछ दे सकती हैं, परन्तु मुक्ति प्रदान करना श्री गुरु के हाथ में है। मां श्रीगुरु के इशारे पर और उनकी अनुमति से मुक्ति दे सकती हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि कुँजी श्रीगुरु के हाथ में है। यदि वे देने के लिए कहेंगे तो मां देंगी, वरना नहीं। श्री गुरु के आदेश के विना मां ज्ञान या मुक्ति नहीं दे सकतीं। इसलिए मैं कहता हूं, मेरे साथ छल करने से तुम लोग धोखा खा जाओगे। मेरे तुम्हारी चाल न देखने पर भी मेरे भीतर जो अन्तर्यामी गुरु हैं, वे सब कुछ देखते हैं। फल देते समय वे सोच विचार कर फल देंगे। यही मां सदैव इस बात का ध्यान रखती हैं कि उनके पति को कोई किसी भी प्रकार धोखा न दे। यदि कोई उनके पति को धोखा देता है तो वे उसका धोखा पकड़ा देती हैं और इस बात की चेष्टा भी करती है कि श्रीगुरु के भण्डार की रक्षा हो। यही मां महामाया हैं। यदि यही मां रास्ता नहीं छोड़ेंगी, तो श्रीगुरु की कृपा प्राप्त नहीं हो सकती है। मां द्वार रोक कर बैठी हैं। श्रीगुरु के इशारे के बिना वे द्वार नहीं छोड़तीं। श्रीगुरु के चरणों में विश्वास रखने और श्रीगुरु का कृपापात्र बनने से मां उसे गोद में लेकर श्रीगुरु के पास पहुंचा देती हैं।"

"यदि साधक मां को प्यार करता है, मां को चाहता है, तो मां उनके पास जो शक्ति है उसे देकर साधक को भुलाने की चेष्टा करती हैं। यहां तक कि मां प्यार से बच्चे को पति की गोद में बिठा देती हैं, परन्तु ऐसा होने पर भी श्रीगुरु कृपा नहीं भी कर सकते। क्योंकि वे स्वयं भोलेनाथ हैं। इस पर उनकी दृष्टि नहीं पड़ सकती। फिर यदि कोई मां की ध्यान धारणा न करके श्रीगुरु को पाना चाहता है, तो मां पहले इसके बारे में श्रीगुरु को अवगत करा देती हैं। वह मां की सिफारिश लेकर श्रीगुरु के पास पहुंच सकता है। परन्तु हो सकता है मां बच्चे को वहां तक नहीं भी ले जा सकती। वे अपने अपार भण्डार की चीजें देकर बच्चे को भुलाने की चेष्टा करती हैं। यदि कोई मां के सम्बन्ध में

कोई धारणा न कर केवल श्रीगुरु को ही चाहता है, तो श्रीगुरु स्वयं उसका भार वहन कर मां को द्वार छोड़ देने का इशारा करते हैं ।"

गुरु निगमानन्द

"जिस समय मैंने साधना भजन करने के बाद पूर्णज्ञान प्राप्त कर जीवन को पूर्ण किया और हृदय में पूर्ण आनन्द लेकर उसे जगत में वितरित करने आया, उस समय मेरे समक्ष जगत के सब नर-नारी सुन्दर दिखाई देते थे । मैं मुग्ध होकर खुशी से उन्हें निहारता था और आत्मविभोर हो जाता था । सब को उस आनन्द का वितरण करना ही मेरा लक्ष्य था । तृषित-तापित लोगों के प्राणों में शांति की अमिय धारा उण्डेल देना ही मेरा उद्देश्य है । मेरे अन्तर से सदैव यही बात निकल रही थी कि कहीं भी कोई तृषित-तापित लोग हों, मेरे पास चले आओ, मैं सबका भार ले लूंगा और सबके लिए शांति की व्यवस्था करूंगा । जब मैं गुरु हूं, तो मेरे पास अभक्त, पाखंडी, चाहे कोई भी क्यों न आए, मैं किसी को नहीं लौटाऊंगा ।"

"मैं कोई निश्चित कार्य (मिशन) लेकर नहीं आया हूं । मैं जगत में मठ, आश्रम या ऋषि विद्यालय की स्थापना करने के लिए नहीं आया हूं । मैं गुरुभाव में अधिष्ठित रह कर शिष्यों के प्राणों में ज्ञान का आलोक प्रज्वलित करने और उनके शुष्क हृदय में आनन्द की लहर प्रवाहित करने गुरु के रूप में जगत में लौट आया हूं । ये सब मठ और आश्रम अपने आप बनते गए हैं । यदि आनन्द नहीं है तो मठ और आश्रम से क्या प्रयोजन ? सब कुछ तोड़ कर चलो, पेड़ के नीचे बैठकर आनन्द मनाएंगे ।"

"मठ और आश्रम मैंने अपनी इच्छा से बनाए हैं । परन्तु मैं जो गुरु बना हूं, वह भगवान की इच्छा से बना हूं । यदि मुझे मठ और आश्रम संबंधी कार्य में इतना ध्यान नहीं देना पड़ेगा तो मैं अपनी गुरु शक्ति से तुम लोगों का यथेष्ट हित कर सकूंगा ।"

श्रीगुरु और उनकी शक्ति-संचार की शक्ति

"देखो ! श्रीगुरु शिष्यों के भीतर अनेक प्रकार से शक्ति का संचार कर सकते हैं। यदि श्रीगुरु चाहेंगे, तो वे अपने दर्शन, स्पर्श अथवा बातचीत आदि प्रक्रियाओं के माध्यम से अपनी शक्ति को उस शिष्य के भीतर संचारित कर सकते हैं। अतः जो इच्छा शक्ति के द्वारा शक्ति का संचारण कर सकते हैं, उन्हें सदगुरु कहा जाता है। बंगाल के लोकनाथ ब्रह्मचारी के गुरु स्वर्गीय भगवान गांगुली बहुत बड़े विद्वान थे। लोकनाथ ने अपने गुरु से पुछा, "स्वयं इतने बड़े ज्ञानी होते हुए भी आपने मुझे मूर्ख बनाकर क्यों रखा, कोई शिक्षा क्यों नहीं दी?" इसके उत्तर में गुरु ने कहा, "पुस्तकें पढ़ कर शिक्षा प्राप्त करने से मन में तरह-तरह के संशय पैदा होते हैं, अभिमान आता है, श्रीगुरु के वाक्य में संदेह होता है। तुम्हें पुस्तकें नहीं पढ़नी पड़ेंगी। केवल मेरा ध्यान करने से तुम मेरा समस्त ज्ञान प्राप्त कर सकोगे।" ठीक वैसे ही तुम लोग मेरे स्वरूप का ध्यान करने से मेरा समस्त ज्ञान प्राप्त कर सकोगे। थोड़ा अन्तर्मुखी होने पर धीरे-धीरे ये सब तत्त्व समझ सकोगे "

शिष्यों की अद्भुत अनुभूतियाँ

"मुझसे जो लोग दीक्षा लेते हैं, उनमें से कोई-कोई दीक्षा लेते समय ही खुशी के मारे रो उठता है। यहां तक कि दीक्षा लेते समय अनेक लोग बेहोश हो जाते हैं। किसी-किसी की दैनन्दिन स्थिति ऐसी हो जाती है कि वह अपने कार्य के भीतर सदैव प्रभुश्री को देख सकता है। ऐसे शिष्य कहते हैं जब वे नहाने जाते हैं तो अपने साथ-साथ प्रभुश्री को भी जाते हुए देखते हैं। उनके स्नान करते समय प्रभुश्री तट पर खड़े रहते हैं। स्नान समाप्त कर घर लौटने पर प्रभुश्री भी साथ-साथ घर लौटते हैं। वे महसूस करते हैं कि प्रभुश्री सुदर्शन चक्र की तरह उनके साथ-साथ घूम कर उनकी रक्षा करते हैं। एक बार मैंने तीस-चालीस लोगों को एक साथ बिठा कर कह दिया, "जाओ, तुम लोगों का यही मंत्र है।" यही हुई उन लोगों की दीक्षा। उनमें से किसी-किसी की ऐसी अवस्था हो जाती थी कि वह व्याकुल हो पड़ता था। सदगुरु की यही

विशेषता है। वे दीक्षा किसी भी तरह क्यों न दें शिष्यों के भीतर निश्चय ही शक्ति का संचार होगा।"

श्रीगुरु चिंतन का फल

"देखो, इष्ट के चिंतन से श्रीगुरु चिंतन का फल अधिक है। क्योंकि इष्ट को तो देखा नहीं जाता, पर श्रीगुरु प्रत्यक्ष विद्यमान हैं। अतः तुम लोग श्रीगुरु के स्वरूप का चिंतन करो। भौंरा कीड़े को पकड़ कर लाता है। कीड़ा भौंरे के रूप का चिंतन करते-करते भौंरा बन जाता है।"

"यदि किसी को बाघ पकड़ता है तो बाघ के भीषण स्वरूप का चिंतन करते-करते वह स्वयं भी बाघ बन जाता है। ठीक वैसे ही यदि तुम लोग प्रभुश्री की मूर्ति का चिंतन करोगे तो मृत्यु के बाद प्रभुश्री का स्वरूप प्राप्त करोगे। तुम लोग सदैव प्रभुश्री के बारे में सोचो तो देखोगे कि तुम लोग उनका असीम ज्ञान प्राप्त कर चुके हो, तुम लोग प्रभुश्री बन चुके हो। इस बात में कोई संदेह नहीं है। केवल दृढ़ विश्वास होना चाहिए।"

प्रभुश्री का आत्म परिचय

"गुरु अवतारगण स्वेच्छा से अवतरण करते हैं जैसे—आचार्य शंकर और श्रीमन महाप्रभु गौरांग देव। परन्तु मैं साधारण मनुष्य हूं। मैंने पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि जीवनों का अतिक्रमण कर जन्म-जन्मान्तर की साधना के बाद इस जन्म में भगवान को जाना है। मुझे ब्रह्म का ज्ञान हुआ है। मेरा व्यक्तित्व मिट जाने से मुझमें जगद्गुरु की इच्छा लीलायित हो उठी है। तुम लोग मुझे सदगुरु समझो। साधना करके मैं स्वयं मुक्त हुआ हूं। तुम लोगों को मुक्ति-पथ प्रदर्शित करना ही मेरा कार्य है। जिन लोगों ने मुझ पर निर्भर कर रखा है, मैं उनका हाथ पकड़कर उन्हें मुक्तिधाम में ले जाऊंगा। जिन्होंने सदगुरु की पाठशाला में प्रवेश ले रखा है, वे जरूर सफल होंगे।

इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। केवल इतना ही विश्वास होना पर्याप्त है कि तुम्हारे गुरु सदगुरु हैं।"

"गीता की मां" कहने से नराकार परब्रह्म (श्रीकृष्ण या गुरु) को समझना होगा। अवतारगण आत्मविस्मृत होते हैं, परन्तु सदगुरु आत्मविस्मृत नहीं हैं। इस हिसाब से सदगुरु अवतार से बड़े हैं। आत्मविस्मृत नहीं होने से लीला अच्छी नहीं हो सकती। सब में कुछ न कुछ आवरण है। मुझमें भी गुरुत्व का एक आवरण है। मुझमें गुरु का अभिमान है, इसलिए मैं शिष्य बनाता हूं। यह भी एक लीला है। परन्तु यह लीला करते समय मैं आत्मविस्मृत नहीं होता हूं। यह ज्ञान मुझमें है कि गुरुआई करना एक अभिनय है।"

जगत लीला का अभिनय

"तुम लोग अभिनय करने के लिए जगत में आए हुए हो। तुम लोग यहां पर दूसरी बहुत सी बातों का ज्ञान प्राप्त कर सकोगे। परन्तु इस जीवितावस्था में स्वरूपज्ञान प्राप्त नहीं हो सकेगा। जिस दिन स्वरूपज्ञान खिल उठेगा, उस दिन यह शरीर नहीं रहेगा। यदि अभिनय के बीच ज्ञान खिल उठेगा तो काम कैसे चलेगा। मान लो कोई पुरुष सीता की भूमिका निभा रहा है। इस बीच यदि वह दर्शक मंडली को बता देगा कि वह नारी नहीं पुरुष है, तो वह अभिनय एक दम नष्ट (Murder) हो जाएगा। तुम लोगों की अवस्था भी ठीक वैसी ही है। तुम लोगों का अभिनय शेष होता जा रहा है, इसमें और अधिक देर नहीं है। अभिनय शेष होते ही स्वरूपज्ञान प्राप्त करोगे।"

जब प्रभुश्री से प्रश्न किया गया कि यदि अभिनय शेष होते ही स्वरूपज्ञान खिल उठेगा, तो गुरु की क्या आवश्यकता है, तो प्रभुश्री ने कहा, "अनेक दिन से अभिनय करने-करते तुम लोग अपना वास्तविक स्वरूप भूल चुके हो। अभिनेता के स्वरूप को ही अपना स्वरूप समझ रहे हो। मैं तुम लोगों की इस भूल को दूर करने और यह अमृतवाणी सुनाने के लिए आया हूं कि अभिनय शेष होता आ रहा है। सही अर्थ

में सब इस जगत में अभिनय करने के लिए ही आए हैं। परन्तु किसी को इस बात का ख्याल नहीं है कि यह अभिनय है। ख्याल रहेगा भी कैसे ? रामकृष्ण देव के शब्दों में कहना हो तो "पंचभूतेर फांदे, ब्रह्म पड़िया कान्दे" (पांच भूतों के फंदे में पड़ कर ब्रह्म रोता रहता है)।"

"एक बार श्राप से ग्रस्त होकर देवराज इन्द्र ने सूअर की योनि में जन्म लिया था। सूअर बनने पर देवराज इन्द्र यह बात भूल गए कि वे इन्द्र हैं। उधर स्वर्ग में इन्द्र का सिंहासन खाली पड़ा रहने से स्वर्ग का प्रबन्ध बन्द हो गया। विष्णु ने इन्द्र की भूल समाप्त करने के लिए नारद को भेजा। नारद ने जाकर देखा कि इन्द्र सूअर के रूप में बाल बच्चों के साथ रतालू की जड़ें खाकर खुशी से जीवन-यापन कर रहे हैं। नारद ने जाकर कहा, "अहो वराहश्रेष्ठ ! स्वरूप में तुम सूअर नहीं हो, तुम देवराज इन्द्र हो। तुम्हारे अभाव में इस समय स्वर्ग का सिंहासन सूना पड़ा है। तुम स्वर्ग में लौट आओ। वहां पर कितनी खुशियां और कितना सुख मिलेगा।" सूअर रूपी इन्द्र ने कहा, 'पंडित जी, मैं तुम्हारी चाल समझ सकता हूं। तुम शायद मेरा मांस खाना चाहते हो, इसलिए ऐसा कह रहे हो। मैं यहां पर जैसे सुख में हूं, उनकी तुलना में तुम्हारे स्वर्ग का सुख कुछ नहीं है।" कोई दूसरा उपाय न देख नारद लौट गए और उन्होंने विष्णु को इसके बारे में अवगत कराया। नारद से सारी बातें सुनने के बाद विष्णु स्वयं सुदर्शन चक्र हाथ में लिए सूअर रूपी इन्द्र के पास उपस्थित हुए। विष्णु ने पहले इन्द्र की पूर्वस्मृति लौटाने की काफी चेष्टा की, परन्तु किसी से कोई लाभ नहीं हुआ। अंत में इन्द्र का मोह तोड़ने के लिए विष्णु ने सूअर के बच्चे को मार दिया। उस समय सूअर ने भयंकर चीत्कार किया। उसके बाद विष्णु जब सूअरी को मारने के लिए उद्यत हुए, तो सूअर विष्णु का वध करने के लिए तेजी से दौड़ा आया। विष्णु ने उस समय सुदर्शन चक्र से सूअर का सिर काट दिया। तत्काल सूअर के शरीर से देवराज इन्द्र निकल आए। सूअर रूपी इन्द्र अब सब कुछ समझ गए और इतने दिनों तक अपना स्वरूप विस्मृत होने से ऐसे व्यवहार करते रहने के कारण उन्हें बड़ा अफसोस हुआ।"

"जीव जिस दिन श्रीगुरु की कृपा से स्वरूपज्ञान प्राप्त करता है, उस दिन वह समझता है कि उसने कितना समय व्यर्थ में बिता दिया है।"

प्रभुश्री का ध्यान और धारणा

"एक ज्योतिर्मय मण्डल के भीतर मेरा चिन्तन करो। यह सबसे ऊंची साधना है। यह बात मैंने सबको बता रखी है। अब तुम लोग यही साधना करो, अर्थात् चित्त को एकदम निरालंब बना दो। ऐसा न हो सके तो मेरे ध्यान में चित्त का लय करो। किसी उच्च भाव का अवलंबन न करके यदि केवल मेरे इस सड़े-गले स्थूल शरीर का ध्यान भी करोगे तो इसी ध्यान के परिणामस्वरूप एक दिन मेरा स्वरूप तुम्हारे भीतर खिल उठेगा।"

'और देखो, इस भाव में मेरा ध्यान करने से जो ब्रह्मज्ञान संन्यास का लक्ष्य है, वह तुम्हें प्राप्त हो जाएगा। यदि तुम लोग सगुण ब्रह्म के द्रष्टा बन सकते हो, यदि सगुण ब्रह्म दृश्य के रूप में तुम्हारे समक्ष प्रकट होते हैं, तो तुम्हारे लिए श्रेष्ठ ज्ञान का अभाव भी कहां रहा ? अतः यह भाव सबसे ऊंचा है। तुम लोग इस भाव में मेरा ध्यान करो, तुम्हारा सर्वार्थ सिद्ध होगा।"

मनुष्य गुरु की विशेषता

"अर्जुन को कितने ही प्रकार से समझाने के बाद वह श्रीकृष्ण का शरणापन्न बना। ठीक वैसे ही मुझे भी अधिकारियों के भेद से तुम लोगों को साधना के पथ दिखाने पड़ते हैं। यदि मैं कृपा सिद्ध होता तो कहता कि सब कुछ श्रीगुरु की कृपा है। परन्तु मैंने स्वयं साधना भजन करके सभी पथों के लक्ष्य को देखा है। इसलिए मैं अधिकारी समझ कर साधना पथ की बात बता सकता हूं। यह बात मैं स्वीकार करता हूं कि विभिन्न क्रियाओं के भीतर मैंने श्रीगुरु की कृपा में निहित गूढ़ अर्थ को समझा है। छिन्न कंठ कबूतर की तरह मैं कितना घूमा हूं, परन्तु भगवान ने आकर

मेरी खोज-खबर नहीं ली । जिस दिन से मैंने मनुष्य गुरु की कृपा प्राप्त की उस दिन से मेरी कितनी ही अवस्थाए खुल गईं । इसके अतिरिक्त मैंने स्वयं प्रत्यक्ष किया है, एक एक क्रिया को लगातार तीन वर्ष तक करने के बाद भी मुझे कोई लाभ नहीं हुआ था। परन्तु गुरुदेव के पास आते ही उन्होंने भी वह प्रक्रिया प्रदर्शित की। जब मैंने पूछा, "प्रभो, इसका फल कितने दिन में मिलेगा, तो गुरुदेव ने कह दिया, जाओ, एक मास के भीतर इसका फल मिलेगा । साधना करके मेंने २८-२६ दिन में उसका फल पाया। अतः साधना भजन और क्रिया-कर्म के भीतर श्री गुरु की कृपा होनी चाहिये।"

गुरु बनने का दायित्व

"गुरु शक्ति तीन पुश्तों तक क्रिया करती है। मेरी बात ही लो। मेरे बाद जो गुरु बनेंगे, क्या वे मेरी तरह साधना सिद्ध होंगे ? तब गुरु शक्ति उनके भीतर क्या क्रिया करेगी ? अधिकांश गुरुओं के उत्तराधिकारी कृपा पात्र हैं। गुरु बनने का दायित्व है। यदि मैं जीवित रहते किसी को गुरु शक्ति देकर नहीं जा सकूंगा तो मैं मुक्त नहीं हो पाऊंगा मुझे सूक्ष्म लोक में किसी ऋषि के शरीर के आश्रय में रहना पड़ेगा। उसके बाद जब मैं किसी योग्य आधार में अविष्ट हो जाऊंगा तब मेरी शक्ति उनके भीतर खिल उठेगी। उस दिन मेरा निर्वाण होगा । अतः गुरु बनना कम विपत्ति की बात नहीं है।"

गुरु और गुरु शक्ति

"मेरे शिष्यों को मुझसे अनेक अनुभूतियां मिलती हैं और अनेक लोग मुझसे सूक्ष्म में मंत्र प्राप्त करते रहते हैं। ऐसी अनेक बातें हो जाती हैं जिनके बारे में मुझे कुछ पता नहीं चलता । पर मेरी शक्ति के द्वारा यह सब हो जाता है। मैं "साक्षीश्चेता केवलं निर्गुणश्च" हूं । मैं और मेरी शक्ति, ये दो बातें कहने से तुम लोग दुविधा में पड़ जाते हो। मूलतः गुरु और गुरु शक्ति कोई पृथक तत्त्व नहीं है । फिर एक हिसाब से मैं सब कुछ करता हूं। जैसे पति-पत्नी, हर पार्वती । कोई

शिवजी को प्यार करता है, उनके प्रति भक्ति रखता है, तो उसके प्रति शक्ति की विशेष दृष्टि रहती है। शक्ति भक्त को गोद में लेकर शिवजी या गुरु के पास पहुंचा देती हैं। वास्तव में शिवजी या गुरु कुछ नहीं करते हैं, सब कार्य शक्ति करती हैं। अतः तुम लोग चाहो, तो मुझे धोखा दे सकते हो, परन्तु फलदेने वाली शक्ति की दृष्टि तुम लोगों पर रहेगी ही। फल देने वाली शक्ति है, मैं नहीं हूं। मेरा एक स्वभाव है कि मैं कभी विभूति प्रकट नहीं करता। मैं सब कुछ जानता और सुनता रहता हूं, पर जब तक तीसरे पक्ष की ओर से व्यक्त नहीं किया जाता, तब तक मैं कुछ नहीं करता। शक्ति सब कुछ करती हैं सही, परन्तु श्रीगुरु की सहायता के कारण ही उनका शक्तित्व है, वरना, शक्ति जड़ है। जैसे किसी भिखारिन की कन्या ने सौभाग्यवश किसी राजा से विवाह कर लिया। उस समय वह राजराजेश्वरी बन गई। पहले उसका कोई मूल्य नहीं था, अब उसका कितना सम्मान, कितना आदर, कितनी क्षमता है। जिस प्रकार श्रीगुरु से प्रेम करने से उसके प्रति शक्ति की दृष्टि रहती है ठीक उसी प्रकार शक्ति को प्यार करने से शिवजी भी उसके प्रति प्रसन्न रहते हैं।"

शिष्यों द्वारा महाशक्ति की कृपा प्राप्त करने का सुयोग

"मेरे भीतर जो शक्ति है, तुम लोगों के प्रति उनकी दृष्टि है। नराकार परब्रह्म रूपी गुरु को पा सकने से यही सुविधा है। अनन्त-कोटि ब्रह्माण्ड की जो महाशक्ति है उनका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उनके पास समय नहीं है। उग्र तपस्या और कठोर साधना के अतिरिक्त उनकी दृष्टि आकर्षित करना सर्वथा असम्भव है। परन्तु मेरे भीतर जो शक्ति है, उससे तुम लोग विशेष रूप से उनकी कृपा प्राप्त कर सकोगे। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की मां के पास इतना समय नहीं कि वे तुम्हारे प्रति दृष्टि देंगी। परन्तु मेरी शक्ति तुम्हारे जैसे इन कतिपय शिष्यों के लिए नियुक्त है। वृत्त बड़ा न होने के कारण तुममें से प्रत्येक पर मेरी शक्ति की दृष्टि है।"

सदगुरु और शिष्य

'देखो , सदगुरु के शिष्यगण भगवान के अधिकार क्षेत्र के बाहर हैं। उनका भार सदगुरु पर है। यदि सदगुरु चाहेंगे तो वे क्रममुक्ति के पथ पर जाने वाले शिष्य को भी इच्छा शक्ति से इस स्थूल जगत में लाकर उसे एक ही जन्म में मुक्ति दे सकते हैं। हो सकता है क्रमोन्नति के पथ पर मुक्ति प्राप्त करने में हजारों वर्ष लग जाएं, यहां तक कि लाख लाख युग भी लग सकते हैं, परन्तु वे दया परवश होकर मात्र एक ही जन्म की व्यवस्था करके उसकी निर्वाण मुक्ति का उपाय कर देते हैं। यह सदगुरु की विशेष इच्छा है। इच्छा करने पर वे शिष्य को मुक्ति पथ में ले जा सकते हैं और चाहें तो श्राप देकर हमेशा के लिए दुखी बना सकते हैं। परन्तु वे कभी दुखी नहीं बनाते, क्योंकि वे शिष्य को अपने प्राणों से अधिक स्नेह करते हैं। श्रीगुरु शिष्य को छोड़कर एक पल भी नहीं रह सकते। तुम लोग मुझे सब समय पा सकोगे। मेरे देहत्याग के बाद भी तुम लोग मुझे देख सकोगे। इस समय जैसे देख रहे हो उस समय भी वैसे ही देख सकोगे। परन्तु अन्तर यह है कि यह मूर्ति खाती पीती है, तुम लोंगों के साथ घूमती-फिरती है, तुम लोग उसे छू कर प्रणाम करते हो, परन्तु उस मूर्ति के साथ वह सब नहीं हो सकेगा। बस, तुम लोग उस मूर्ति को देख सकोगे। गुरु और शिष्य, दोनों सही हों, तो एक दूसरे को छोड़कर नहीं रह सकता। श्रीगुरु शिष्य का रुदन और व्याकुल प्रार्थना सुनकर आए बिना नहीं रह सकते। यदि कोई भक्त श्रीगुरु का चिन्तन करेगा तो गुरु तत्काल जान जायेंगे और उनका मन बेचैन हो जायेगा। यदि कोई शिष्य किसी भारी विपदा में पड़कर चिंतन करेगा तो श्रीगुरु का मन चंचल हो उठेगा। उसके बाद जब तक श्रीगुरु सोचकर उसका प्रतिकार नहीं करेंगे तब तक उनके मन की बेचैनी दूर नहीं होगी। इसलिए उनके स्थूल शरीर को कष्ट होगा। यदि गुरु जीवन्मुक्त हैं, तो शिष्य का चिन्तन स्पर्श करते ही तत्काल ही उसका प्रतिकार हो जायेगा। उनका मन बेचैन नहीं होगा।"

गुरु कृपा और शास्त्र पाठ

"शास्त्र पाठ विशेष आवश्यक है। यदि पहले शास्त्र पाठ किया होगा, तो बाद में श्रीगुरु की कृपा से तत्त्वसमूह अन्तर में खिल उठेगा।

उसके बाद कौन क्या तत्त्व है, उसके बारे में और नहीं सोचना पड़ेगा। शास्त्र पाठ न करने पर तत्त्वों में तालमेल बिठाने में विशेष असुविधाओं का सामना करना पड़ेगा। मुझे भी योगसाधना करते समय परेशानी हुई थी, क्योंकि मैंने पहले शास्त्र पाठ नहीं किया था। इसलिए तत्त्वों को समझने में असुविधा हुई थी। पहले एक दिन, उसके बाद दो दिन, अंत में जब नहीं हुआ, तो सात दिन समाधिस्थ होकर सभी तत्त्वों को अच्छी तरह समझ लिया। उसके बाद शास्त्र पाठ कर देखा तो पाया कि तत्त्वों के साथ आत्मानुभूति मेल खा जाती है।"

"तुम लोगों में विद्या और बुद्धि न होने पर भी केवल मुझ पर विश्वास रहने से तुम लोगों के भीतर ब्रह्म, आत्मा और भगवान, ये तीनों अवस्थाएं खिल उठेंगी। परन्तु शास्त्रों का ज्ञान न रहने पर दूसरों को नहीं समझा सकोगे। यह किसी बुद्धू के सपना देखने की तरह होगा। श्री गुरु की कृपा से तत्त्वसमूह को अनुभव कर स्वयं असीम आनन्द पाओगे, पर दूसरों को नही समझा सकोगे। शास्त्रों का पाठ कर उन पर जितनी चर्चा करोगे, सभी बातें उतनी ही स्पष्ट होती जायेंगी। ग्रंथों को लिखते समय मैंने स्वयं इसका सारमर्म समझा। भगवान ने मुझे इतना अधिक समय जीवित रखा, इसलिए मैं सभी बातों को हृदयंगम कर पाया। मैं इतने अधिक दिन जीवित रहा, इसी कारण मैंने इतनी पुस्तकें पढ़ीं और जगत की विभिन्न भावधाराओं से परिचित हो पाया। उससे मैंने बाह्य जगत के संबंध में बहुत सी अभिज्ञता प्राप्त की। परन्तु जिस समय मैं साधना जगत से लौटा, उस समय मुझे बाह्य जगत के बारे में कुछ भी पता नहीं था। पढ़ने-सुनने से अच्छा उपदेश दे सकोगे, स्वयं अच्छी तरह समझ कर दूसरों को भी समझा सकोगे। उस समय मुझे भी जान सकोगे और समझ सकोगे। जो भी हो, मैं तुम लोगों के भीतर एक ऐसी अवस्था ला दूंगा, जिससे कि तुम लोग इसी जीवन में ये सब अवस्थाएं देख सकोगे या समझ सकोगे। इसलिए मैं तुम लोगों को उसी रास्ते पर ले जा रहा हूं। इससे तुम लोग प्रभुश्री बन जाओगे। प्रभुश्री की अवस्था, उनकी कर्मधारा का ध्यान करने से तुम लोग उनका समस्त ज्ञान अपने अधीन कर सकोगे और धीरे-धीरे तुम लोग प्रभुश्री को भी जान सकोगे।"

"यदि तुम लोग मन से समझते हो कि कोई सदगुरु हैं, तो उनकी शरण में जाकर साधना-भजन की शिक्षा लो। इससे मुझे कोई दुःख नहीं होगा। परन्तु नारी गुरु को बाघ या साँप जैसा समझकर उनसे दूर रहना। शास्त्रों, पुराणों और देश-विदेश के इतिहास में कितने ही महापुरुषों और सदगुरुओं का उल्लेख है, परन्तु किसी नारी के गुरु होने के बारे में कोई नहीं जानता। निर्विकल्प समाधि से लौट कर आए बिना कोई सदगुरु नहीं बन सकता। नारी प्रेमिका और सेविका के रूप में पूजनीया है। निर्विकल्प समाधि में उनका कोई अधिकार नहीं है। अतः जगज्जननी स्वयं गुरु न बनकर जगद्गुरु की दासी के रूप में वरेण्य और पूजनीया बनी हैं।"

"भारत के सदगुरु मात्र मुझे निश्चय ही पहचानेंगे। उस समय तुम लोगों का अहंकार चूर-चूर हो जाएगा। तुम लोग अपनी गलती समझ सकोगे। मैं आज दावे के साथ कहता हूं कि मेरी कृपा के बिना इस जन्म में तुम लोगों के लिए कोई दूसरा उपाय नहीं है। तुम लोगों पर कृपा करने के लिए भगवान ने मेरे अन्तर में तुम लोगों का भार लेने की प्रेरणा दी है। यदि यह बात झूठ निकलेगी और तुम लोग किसी दूसरे की कृपा से सिद्धि प्राप्त करके लौटोगे, तो मैं तुम लोगों को कंधे पर बिठाकर नाचूंगा। वरना अपनी गलती मानकर यदि तुम लोग मेरी जीवितावस्था में लौटकर मेरी शरण में आते हो, तो मैं प्रेम से तुम लोगों को आश्रय दूंगा। यदि तुम लोग सत्य पथ पर रहते हो, तो मैं निश्चय ही तुम्हारी रक्षा करूंगा।"

प्रभुश्री के मुखारविन्द से निसृत और उनके अपने हाथों से लिखित उपर्युक्त वाणी से पाठकगण उनके गुरुभाव की बात जान सकेंगे।

●

पंद्रहवां अध्याय

अलौकिक अनुभूतियां

प्रभुश्री को अलौकिक रूप से पाना

जिस प्रकार व्याकुलता की चरम सीमा में पहुंच कर प्रभुश्री को आश्चर्यजनक रूप से गुरु प्राप्त हुए थे, ठीक वैसे ही उनके अनेक शिष्य-भक्तों ने उन्हें पाया था। जिन लोगों के साथ पहले कभी भी योग सम्पर्क नहीं था, उन्होंने भी उनसे साक्षात् किया था। उनमें से कुछ प्रमुख शिष्य-भक्तों का विवरण नीचे दिया गया है।

बस्तर के राजा साहेब—बस्तर के राजा साहेब मन ही मन गुरु की बहुत खोज करने पर भी ठीक तरह ज्ञात नहीं कर पाए कि उनके गुरु कौन हैं, जिनके पास जाने से उनका अभीष्ट सिद्ध होगा। इसलिए वे अपने राज्य की इष्टदेवी दंतीकेश्वरी के सामने दण्डवत पड़े रहे। कुछ दिन बाद आकाशवाणी हुई, "तुम्हारे गुरु बंगाल के स्वामी निगमानन्द हैं।" उसके वाद उन्होंने बहुत खोज-बीन कर प्रभुश्री से भेंट की। राजा और रानी ने उनसे दीक्षा ली।

बी० बी० पाटक—वे इन्दौर की गायकवाड़ स्टेट के राजस्व अधिकारी थे। वे व्याकुल हो उठे कि किसके पास जाने से तत्व प्राप्त कर सभी बातें जानी जा सकेंगी, सभी तत्त्वों की मीमांसा हो सकेगी। यह जानने के लिए कि कौन सच्चे तत्त्वज्ञ हैं, उनके प्राणों में तीव्र आकांक्षा जागृत हुई। एक दिन वे नदी तट पर बैठ कर इसी बात पर सोच रहे थे कि उनके समक्ष आकाश मण्डल के भीतर एक दिव्य ज्योतिर्मय मूर्ति खिल उठी। वे समझ गए कि यही व्यक्ति निश्चय ही

तत्त्वज्ञ हैं। परन्तु ये कौन हैं, इसका निश्चय न कर सकने के कारण उनका मन और अधिक व्याकुल हो उठा। कुछ दिन व्याकुलता में बीत जाने के बाद फिर एक दिन उसी स्थान पर वह मूर्ति खिल उठी। मूर्ति के नीचे स्वर्णाक्षर में लिखा था "स्वामी निगमानन्द परमहंस"। उसके बाद वे खोजते-खोजते प्रभुश्री के पास आकर दीक्षित हुए।

तांत्रिक साधक

एक ब्राह्मण तंत्रोक्त कर्णपिशाची की साधना कर सफल हुआ था। जब वह मन ही मन प्रश्न करता, तो देवी तत्काल उसका उत्तर दे देतीं। उसने एक बार देवी से प्रश्न किया कि मैं किस प्रकार आपके साक्षात् दर्शन कर सकूंगा? देवी ने कहा, "तांत्रिकमत में पूर्णाभिषेक होने पर ही तुम्हारी यह मनोकामना पूरी होगी।" उसने पुनः प्रश्न किया, "मैं ऐसे गुरु को कहां पा सकुंगा?" देवी ने कहा, "तुम पुरी जाओ, वहां पर स्वामी निगमानन्द परमहंस जी के दर्शन पाओगे। वे तुम्हारा पूर्णाभिषेक कराने में समर्थ होंगे।" उसके बाद उसने पुरी में प्रभुश्री से भेंट कर अनेक तत्त्वों की मीमांसा कर ली थी।

●

सोलहवां अध्याय

आध्यात्मिक अनुभूतियां

इष्ट के दर्शन

गुरु और भगवान एक हैं, यह बात गुरु ने स्वयं एक शिष्य को समझा दी । फिर भी वह शिष्य समझ नहीं पाता था कि इष्ट और श्रीगुरु के बीच क्या अन्तर है । यह शिष्य पहाड़ों से भरे एक जंगल में नदी के किनारे एक स्थान पर जप कर रहा था । ध्यान करते समय गुरु ने इशारे से बताया, "वत्स ! ये हैं तुम्हारी इष्टदेवी ।" इसके कुछ क्षणों बाद श्रीगुरु स्वयं इष्ट की मूर्ति में समा गए । शिष्य ने गुरु और इष्ट को अभेद जान कर आनन्द प्राप्त किया ।

असंयमी नारी

इस सम्बन्ध में प्रभुश्री के श्रीमुख की वाणी यथावत् नीचे दी गई है ।

"हमारी शैल को तो जानते हो, उसे मैंने भगवान का पति के रूप में भजन करने का उपदेश दिया था । ऐसा देखा जाता है कि कहीं पुरुष असंयमी होता है, तो कहीं-कहीं नारी असंयमी पाई जाती है । एक असंयमी नारी मध्यरात्रि में आकर अपने पति को उत्तेजित करने लगी । उस घर में मेरा आसन था । आसन पर मेरी फोटो भी थी । अन्त में पति ने कहा, "क्या तुम्हारी अकल मारी गई है ? इस आसन पर प्रभुश्री (फोटो को दिखा कर) बैठे हुए हैं । तुम ऐसा क्यों

कह रही हो ?" पति से यह बात सुनकर पत्नी जब देखती है तो पाती है कि प्रभुश्री सचमुच स्थूल शरीर में विराजमान हैं।

उस समय लाज के मारे उसे कहीं जाने का रास्ता नहीं मिला। इस प्रसंग में प्रभुश्री ने कहा था, "मैंने लक्ष्य कर देखा है कि जो महिलाएं प्रभुश्री से प्रेम करती हैं, वे सती साध्वी हैं। वे मुझे और पति, दोनों को प्रेम करती हैं। अंत में वे मुझे अपने अपने पतियों के भीतर देख पाती हैं। मेरे जीवन में ऐसी ऐसी घटनाएं हुई हैं, जिन्हें व्यक्त नहीं किया जा सकता, पर उन्हें व्यक्त करने से अनेक लोग लाभान्वित हो सकते हैं। आज कल के युवक युवती उच्छृंखल हो जाते हैं, परन्तु मैं ऐसे उपाय जानता हूं जिनसे दाम्पत्य जीवन शांति से अतिवाहित हो सकता है।

श्रीमूर्ति का पूरियां खाना

प्रभुश्रो की श्रीमूर्ति कई बार बात करती और कुछ एक को हाथ उठा कर आशीर्वाद भी देती है। प्रभुश्री की एक शिष्या उनकी श्रीमूर्ति के सामने भोग में कुछ पूरियां रख कर आँखें मूंद कर बैठ गई। आंखें खोल कर उसने देखा तो पाया कि श्रीमूर्ति आगे हाथ बढ़ाकर पूरियाँ ले रही है। विस्मित होकर उसने जब पूरियां गिनी तो पाया कि उनमें से एक पूरी कम थी। ये सब बातें तर्क से समझना कठिन है।

चेचक की देवी

चेचक के दौरान अनेक लोगों को यह कहते सुना जाता है कि इसमें माता प्रकट होती हैं। प्रत्येक स्थान पर मां हैं, परन्तु प्रत्येक वस्तु का जो स्थूल अंश है, वह मां नहीं है, केवल सूक्ष्म अंश को ही मां कहा जाता है। प्रत्येक रोग में माता प्रकट होती हैं सही, पर जिस रोग का प्रकोप अधिक है उसमें माँ का प्राकट्य महसूस किया जाता है।

कुछ दिन पहले प्रभुश्री के एक शिष्य को चेचक हुई। वह रोग की यंत्रणा से अधीर होकर मन ही मन अनवरत प्रभुश्री का ध्यान करने

लगा। एक दिन स्वप्न में लाल कपड़े और विभिन्न आभूषण पहने एक देवी ने प्रकट होकर उससे कहा, "इस पर तुम्हारे गुरु का कोई अधिकार नहीं। इस पर मेरा पूरा अधिकार है। परन्तु तुम्हारी गुरु भक्ति देखकर मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुई।" यह कह कर वे चेचक के सारे घावों को पोटली में बांध कर चली गईं। सुबह जागकर वह अपने को पूरी तरह स्वस्थ पाया। प्रभुश्री के शिष्यों के जीवन में ऐसी अनेक घटनाएं हुई हैं।

गृह दाह

प्रभुश्री के एक उड़िया शिष्य के घर में अचानक आग लग गई। उस घर में प्रभुश्री के आसन और दूसरे देवी-देवताओं के चित्रों के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। आग इतनी तेज हो गई कि किसी में उसे बुझाने का साहस नहीं हुआ। आग बुझाने जाये तो पास में स्थित धान के ढेर के जल जाने का डर था। इसलिये भारी हानि से बचने के लिये सब ने यही उचित समझा कि उस कमरे को जलने दिया जाए। इस बीच वहां पर खड़ी एक शिष्या को याद आई कि प्रभुश्री का आसन तो नहीं आया। लोगों ने देखा कि दरवाजा भीतर से बन्द है। वहां से आसन लाने का कोई उपाय नहीं था। शिष्या के मन में आसन के जल जाने का भय बढ़ता गया। वह बहुत ही दुखी हो मन ही मन प्रभुश्री से प्रार्थना करने लगी। बाद में देखा गया कि उस कमरे में दूसरे सभी चित्रों सहित सारी चीजें जल चुकी थीं, परन्तु कुर्सी के साथ प्रभुश्री की श्रीमूर्ति जैसी की तैसी थी। वह फोटो अभी तक उस शिष्या के पास है।

मंत्र जप की प्रणाली दिखाना

इस संबंध में एक शिष्य का विवरण नीचे दिया गया है। "बचपन में मेरा मन संसार में बिल्कुल नहीं लग रहा था। आधा आलोक और आधा अंधेरा, करुण पर अस्पष्ट पीड़ा की वेदना मेरे बाल हृदय को मथ देती थी। आज मैं मन के योग्य मनुष्य को खोज पाया हूं। इस खुशी से मेरा मन नाच उठा कि वे तो दूर नहीं हैं। आज मैं

यह बात सब को बता कर निराश प्राणों में आशा की ज्योति जला दूंगा। मेरे अन्दर मानों कोई सदैव कहता रहता था कि अपने लोग को ढूंढ निकालो, वरना तुम्हें कौन रास्ता बताएगा। इसलिये मैं घर छोड पागलों की तरह अपने गुरु की खोज करने निकल पड़ा। कई दिन वाद मुझे प्रभुश्री का आश्रय मिला। दीक्षा लेने के बाद मैं साधना भजन करने ऋषिकेश पहुंचा। वहां पर कुटी बना कर अपने भाव से निर्जन वास करने लगा। कुछ दिन बीत गए। इस कुटी के सामने एक पहाड़ था। उस पहाड़ की चोटी पर एक मंदिर था। मंदिर तक जाने का रास्ता दुर्गम था। इसलिये कोई साहस कर ऊपर नहीं जाता था। एक दिन मैं गुरुदेव का स्मरण कर कुटी से निकल कर बड़ी कठिनाई से पहाड़ पर पहुंचा। रात हो जाने के कारण अकेले लौटना संभव न था। इसलिये मैं अकेले ही मंदिर में ठहर गया। रात की दो पहर बीत चुकी थी। उस समय मैंने सुना कि रात के सन्नाटे को तोड़ कर प्रभुश्री का गुरु गंभीर स्वर बहुत दूर से लहराता हुआ आ रहा है। मैं चौंक उठा। धीरे घीरे वह स्वर और निकट आता गया और मैंने देखा कि मंदिर के मध्य भाग को प्रसन्न मुद्रा में उद्भासित कर गुरुदेव सामने खड़े हैं। उनके दीर्घ और उन्नत शरीर से बिजली की हजारों मालाएं झर रही हैं। प्रभुश्री ने कहा, "वत्स, तुम जिस प्रकार से जप कर रहे हो, वह अशुद्ध है। तुम ऐसे जप करो।" यह कह कर वे मंत्र जप की प्रणाली प्रदर्शित कर अन्तर्हित हो गए। मैं वहां पर मूर्छित सा पड़ा रहा। उनका कण्ठ स्वर सुन कर और दिव्य रूप को देखकर मैं अपनी बाह्य चेतना खो बैठा। उसके बाद जो कुछ हुआ, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उसके बाद मेरा हृदय दर्पण की तरह स्वच्छ हो गया। एक तीव्र प्रत्युत स्निग्ध आलोक छटा से समूचा जगत भर गया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि निखिल विश्व अनन्त, निर्विकार, विज्ञानघन और आनन्दस्वरूप है। कितने दिन इस तरह बीत गए पता ही नहीं चला। अन्त में मेरे दो परिचित साधुओं ने चारों ओर ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मुझे कहीं भी न पाकर अंत में मन्दिर का द्वार तोड़ कर देखा कि मेरी मरणासन्न अवस्था है। उन साधुओं ने काफी सेवा-सुश्रुषा करके मुझे बचाया था।"

शक्ति का संचार

एक और शिष्य का विवरण निम्न प्रकार है : "काल का प्रवाह अविराम गति से चलता जा रहा है। हम सब भी अपने-अपने को काल के स्रोत में बहा कर निश्चेष्ट बैठे हुए हैं। हमने किसी दिन यह नहीं सोचा कि जीवन की परिणति कहां पर है ? क्या जीवन का प्रवाह ऐसे ही चलता रहेगा ? इस तरह के सैकड़ों प्रश्नों ने मुझे झकझोर दिया। सोचते-सोचते मैं इसकी कोई मीमांसा नहीं कर पाया। मन ही मन निश्चय कर लिया कि भोग ही मनुष्य जीवन की परिणति और परिपुष्टि है। मैं उत्साहित होकर अन्धों की तरह चलने लगा। रास्ते की धूल से मेरी आंखें भर गईं। अनेक तरह के मैल से उज्ज्वल रत्न आवृत्त हो गया। प्रवृत्ति को लेकर उन्मत्त होकर खेलते-खेलते जब मैं पथ विमुख हो गया, तो उस समय किसी की अनुभूति पाकर मेरा मन स्थिर हो गया। मेरा मन पछतावे के कारण टूट सा गया। अब कहां जाऊं, क्या करूं ? मैं जो चाहता हूं, वह तो नहीं मिला। वरन् मैंने अनुभव किया कि सब को कुछ न कुछ अभाव है, सब विषादग्रस्त हैं।

बिल्कुल इसी दौरान प्रभुश्री से मेरी भेंट हुई। जीवन का तार अभिनव स्वर से झंकृत हो उठा। वह अक्षय तृतीया का दिन था। मैं सोते-सोते तरह-तरह की बातें सोच रहा था। मुझे ऊंघ सी आने लगी। अचानक देखता हूं कि कोई भिखारी भीख मांग रहा है। पता नहीं क्यों, मुझे थोड़ा डर सा लगा। मैं पास के घर में घुस गया। अचानक वहां पर प्रभुश्री को देख मेरा मन खुशी से नाच उठा। मैंने पूछा "बाबा, यह कैसे होता है ?" प्रभुश्री ने कहा, "नहीं जानते, मेरे पास आओ, सीधे होकर बैठो।" मैं वैसे ही बैठ गया।

प्रभुश्री के मेरे माथे को उंगली से छूते ही मेरे शरीर में बिजली सी कौंध गई और साथ ही एक सरल ज्योति पथ खुल गया। उसके बाद प्रभुश्री ने मेरी नाक को हाथ से दबा लिया। मेरी सांस तेजी से ऊपर उठने लगी। इसके बाद मेरी सांस रुकती गई। मेरी चेतना खोने के साथ-साथ अन्तर्दृष्टि खुल गई। मैं अपने शरीर रूपी यंत्र की सभी क्रियाएं देख पाया। परन्तु मेरी सांस लेने की चेष्टा में कोई कमी नहीं

आई। मेरी हालत देखकर प्रभुश्री ने हंसते-हंसते नाक को छोड़ कर कान को पकड़ लिया। इसके साथ ही मेरे शरीर में बिजली का प्रवाह प्रवाहित हो गया। मैंने देखा कि मेरे भीतर एक प्रचण्ड शक्ति प्रविष्ट हो रही है। उस शक्ति के प्रवाह से मेरा शरीर हल्का होकर मानों ऊपर उठ रहा है। मेरे कान के नीचे की दो नसें फूल उठी हैं। उन नसों के भीतर होकर मूलाधार की सभी शक्तियां आकर मस्तिष्क में जमा होने लगी हैं। मुझे असीम आनन्द के भीतर भयंकर वेदना महसूस करते देख कर प्रभुश्री ने पुनः हंसते-हंसते कान को थोड़ा दबा दिया। इससे मेरी पीड़ा कम होने लगी। अब की बार मैं केवल आनन्द सागर में ही तैरने लगा और इष्ट मंत्र का जप करने लगा। प्रभुश्री यह कहते हुए कि यह शक्ति संचार है, अदृश्य हो गए। मैं उठ पड़ा। कान के नीचे की नसों में मुझे थोड़ी पीड़ा महसूस होने लगी। परन्तु मेरे कुछ दिन खुशी से बीत गए।"

दिव्य अनुभूति

एक और शिष्य का विवरण इस प्रकार है: "मेरे पैर में आपरेशन करने की आवश्यकता हुई। आपरेशन करने से पहले वेहोश करने के लिए क्लोरोफार्म का प्रयोग किया गया। धीरे-धीरे मेरी बाह्य चेतना चली गई। बाहर से वेहोश होने पर भी मैंने देखा कि मेरे भीतर पूरा होश है। धीरे-धीरे मुझे ऐसा लगा कि मेरी नाभि से नीचे का भाग निश्चेष्ट हो गया है और उससे ऊपर का भाग सचेष्ट है। मैं यह भी नहीं कह सकता कि वह मेरा स्थूल शरीर का ज्ञान था। इसके वाद मेरे शरीर का ज्ञान लोप हो गया।

इस समय मैंने देखा मेरे भीतर एक आश्चर्यजनक ज्योतिर्मय पिण्ड में मानों बड़ी तेजी से कम्पन और आवर्त्तन हो रहा है। मैं उस ज्योति पिण्ड के भीतर हूं। धीरे-धीरे वह ज्योति पिण्ड उज्ज्वल और तरल आलोक में बदल कर चारों ओर फैल गया। वह आलोक चाँद, सूरज, पेड़-पौधों को ढक रहा है और एक ग्रह से दूसरे ग्रह में फैल रहा रहा है। धीरे-धीरे वह निखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो गया है। मेरा अहंत्व-बोध भी उस आलोक के भीतर व्याप्त हो गया। मैंने देखा

मैं ही चारों ओर हूं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मेरी सत्ता में प्रवेश कर चुका है। फिर केन्द्र में जो ज्योतिपुंज है, उसके भीतर भी मैं हूं। मुझे लगा कि मैं केन्द्र और परिधि, दोनों स्थानों में हूं। उस अवस्था में जो आनन्द मिल रहा था, वह जैसा असीम और अनिर्वचनीय था, वैसा ही शांत और समहित। किसी भी पार्थिव वस्तु से उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

अचानक मुझे ऐसा लगा कि इस ज्योतिपुंज में से निकलने का कोई रास्ता नहीं। ऐसा सोचते ही मैंने देखा कि उस गोल आकृति के भीतर एक छेद है। प्रभुश्री उस पर खड़े हैं। मैं चाहूं तो उस रास्ते से बाहर आ सकता हूं। मेरे निकलते ही वह वस्तु पिघल जाएगी अथवा सामान्य भाषा में मेरी मृत्यु हो जाएगी।

कुछ देर के बाद मेरी चेतना लौट आई। परन्तु मैं जिस आनन्द-धाम में था, वहां से लौट आने के कारण व्याकुल होकर मैं रो उठा। उस दिव्य अनुभूति से मेरे प्राण रोमांचित हो उठे।"

गुरु शक्ति के दर्शन

एक साधक शिष्य की अनुभुति नीचे दी गई हैं – "मैंने अभि-षिक्त होकर प्रभुश्री के आदेशानुसार योग क्रिया आरम्भ कर दी। क्रिया आरम्भ करने के छः मास बाद मेरे जीवन की दिशा बदल गई। मुझे क्रिया का फल मिलने लगा। एक रात बिस्तर पर बैठ कर ध्यान करते करते मुझे ज्ञात हुआ कि मैं किसी वाह्य शक्ति द्वारा आविष्ट हो चुका हूं। मुझे पूरा होश है, पर मैं हिल नहीं सकता। मैंने प्रभुश्री से सुना था कि शतदल कमल के भीतर शक्ति के साथ श्रीगुरु का ध्यान किया जाता है। मैंने प्रभुश्री को स्थूल शरीर में तो देखा है, पर उनसे गुरु शक्ति के सम्बन्ध में कुछ नहीं सुना था। ध्यान करूं भी, तो कैसे? मन ही मन गुरु शक्ति के दर्शन करने की प्रबल आकांक्षा को लेकर श्रीगुरु का ध्यान करता रहा। कुछ दिन बाद चित्त स्थिर होते ही मैंने श्रीगुरु के आसन पर रूप लावण्य संपन्न एक दिव्य और सुन्दर नारी मूर्ति को देखा। जब

मैं श्रीगुरु की मूर्ति को नहीं देख पाया तो मुझे ऐसा लगा कि यह मूर्ति मुझे छलने आई है। जब मैंने इस मूर्ति को मन ही मन चली जाओ कहा, तो वह मूर्ति म्लान मुख होकर चली गई। कभी कभी वह मूर्ति विभिन्न पकवानों से भरी थाली लेकर आती थी और मुझसे खाने का अनुरोध करती थी। जब मैं उसे अनुमान से भगा देता था कि वह माया है, तो वह मूर्ति गायब हो जाती थी। मैंने एक दिन भी उसका आदर नहीं किया। तथापि वह मूर्ति मुझे नहीं छोड़ती थी। कुछ दिन के बाद जब मैंने यह बात प्रभुश्री को बताई, तो वे इसका कोई उत्तर दिए बिना हंसने लगे और उनके इशारे से मैंने समझा कि यह शक्ति गुरु शक्ति है। मुझे सच्चा भक्त समझ कर मां ने मुझे प्रभुश्री की मनोमयी मूर्ति में दर्शन दिए हैं।

उस दिन से मैं शक्ति के साथ श्रीगुरु का ध्यान करने लगा और प्रभुश्री के पास मां को प्रत्यक्ष रूप से देख पाया। इस तरह से एक दिन क्रिया करते-करते मैंने देखा कि घोर अन्धेरा है। यह देखकर मुझे डर लगा। कुछ देर बाद मैंने देखा कि मुझ पर एक तरह की अनोखी आलोक रश्मि पड़ रही है। यह सोचते हुए कि आलोक कहां से आ रहा है, मैंने चारों ओर देखा तो पाया कि एक ज्योतिर्मयी नारी के शरीर से वह आलोक रश्मि निकल रही है। मैं इस नारी मूर्ति को देख कर पहचान पाया कि वे हमारी गुरु शक्ति, माँ ब्रह्ममयी हैं। मैंने उनसे हंसते हुए पूछा, "माँ, प्रभु कहां हैं?" माँ ने उंगली से ऊपर की ओर इशारा कर दिया। मैंने देखा कि श्वेत वर्ण के प्रभा मण्डल के भीतर प्रभुश्री भी विराजमान हैं। मैंने यह भी महसूस किया कि माँ प्रभुश्री के आलोक से आलोकित हैं और माँ के आलोक से मैं आलोकित हूं। प्रभु और माँ को इस रूप में देख कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। जब मैंने यह बात अपने गुरु भाइयों को बताने के लिए मन ही मन प्रभुश्री से प्रार्थना की, तो उन्होंने मुझसे कहा, "सावधान, तुम्हें यह बात किसी को नहीं बतानी है, क्योंकि इस पर किसी को विश्वास नहीं होगा।" जब मैंने पुनः पुनः जिद पकड़ी तो उन्होंने मुझ पर ऐसी तीक्ष्ण दृष्टि डाली कि मैं भय के मारे चिल्लाकर माँ की गोद में कूद पड़ा। अचानक

ध्यान टूटने पर मैंने देखा कि सवेरा हो चुका था। प्रभुश्री को सारी बातें बताने पर उन्होंने कहा कि यह सृष्टि तत्त्व है।"

प्रभुश्री के दर्शन

एक अन्य शिष्य की अनुभूति निम्न प्रकार है। "मैंने सपत्नीक प्रभुश्री से दीक्षा लेकर नियमानुसार साधना क्रिया आदि आरम्भ कर दी। एक दिन क्रिया कर रहा था कि अचानक मेरा शरीर स्पन्दनहीन हो गया। इस अवस्था में मैंने सफेद रंग की एक उज्ज्वल और श्वेतवर्ण की कंपनशील ज्योति देखी। धीरे-धीरे वह ज्योति घनीभूत होकर मानव शरीर में बदल गई। तब तक भी कंपन हो रहा था। उसके भीतर मैंने देखा कि उस ज्योति में सिंहवाहिनी दसभुजा दुर्गा की मूर्ति है। मैंने प्रभुश्री से सुना था कि श्रीगुरु अथवा इष्ट का दर्शन होने से पहले विभिन्न देवी-देवता, यक्ष, राक्षस आदि दिखाई देते हैं। उस समय भयभीत न होकर, उन्हें विदा कर ध्येय मूर्ति के लिए प्रार्थना करनी होती है। मैं मातृमंत्र का उपासक नहीं था। इसलिए मैंने उस मूर्ति से कहा कि मैं श्रीगुरु को देखना चाहता हूं। जब मैंने यह बात मन ही मन सोची तो वह मूर्ति लीन हो गई। उसके बाद विभिन्न देवी-देवताओं, राक्षसों आदि की मूर्तियां प्रकट हुईं। मैंने भी पहले की तरह उन सभी को विदा कर दिया। सबसे अन्त में मैंने देखा कि एक गोलाकार और उज्ज्वल श्वेतवर्ण की ज्योति के भीतर श्वेत राजहंस पर हमारे प्रभुश्री विराजमान हैं। यह देखकर मैं अपनी बाह्य चेतना खो बैठा। कुछ समय बाद जब सुबह की मन्द हवा प्रवाहित हुई, तो मेरी नींद टूट गई और मैंने देखा कि मैं बिस्तर पर सोया हुआ हूं।"

सत्रहवां अध्याय

मृत्यु और परलोक तथा प्रभुश्री

प्रभुश्री निगमानन्द परमहंस देवजी ने जगतवासियों के लिए आध्यात्मतत्त्वों की जो अमूल्य सम्पदा संजो कर रखी है वह युग-युग तक अध्यात्म रस के पिपासुओं की प्यास मिटा सकेगी और निराश प्राणों में आशा की ज्योति जलाएगी। प्रभुश्री ने विविध विषयों पर लिखित और मौखिक रूप सें जो अमृत वितरित किया हैं उसकी कोई सीमा नहीं। वह मनुष्य को उसके कर्त्तव्य में प्रवृत्त कराने, अज्ञान रूपी अन्धकार से आवृत्त उसकी आँखें खोल कर उसे ज्ञान के आलोक से उद्भासित कर प्रेम के प्रवाह में निमग्न करने में अद्वितीय है। उन्होंने अनेक विषयों पर अनेक बातें लिपिवद्ध की थीं, फिर भी मृत्यु के सम्बन्ध में उन्होंने जो वर्णन किया है, वह वास्तव में अमूल्य है। उन्होंने मृत्यु और परलोक के सम्बन्ध में जो नूतन आलोक प्रसारित किया है, उससे पथ विमुख अनेक लोग मार्ग दर्शन प्राप्त कर सकेंगे और हंसते-हंसते मृत्यु का वरण कर लेंगे। उनके लिए मृत्यु त्रास और भय का कारण नहीं रहेगी।

परलोक तत्त्व में अधिकार

मृत्यु तत्त्व पर उनका इतना अधिकार होने का कारण यह है कि उन्होंने मृत्यु का अवलंबन लेकर संसार का त्याग किया था। मृत्यु के

बाद जीव का अस्तित्व रहता है या नहीं, रहने पर भी उसके साथ भाव का आदान-प्रदान किया जा सकता है या नहीं, यह सब जानने, समझने और उसे प्रयक्ष करने के लिए ही उन्होंने भोग का सुख त्याग कर सब कुछ खो दिया था। एक समान विद्या का अर्जन करते हुए भी जिस प्रकार विभिन्न चिकित्सकों को एक-एक रोग की विशेष जानकारी रहती है, ठीक वैसे ही मूल तत्त्व में समान रूप से अधिकारी होते हुए भी अध्यात्म जगत में भिन्न-भिन्न महापुरुषों का भी एक-एक आनुषंगिक विषय पर विशेष वैशिष्ट्य रहता है। प्रभुश्री मृत्यु और परलोक विषय के विशेषज्ञ थे। यथोपयुक्त साधना के बल पर उन्होंने उन सब तत्त्वों को अपने जीवन में हस्तगत कर रखा था। उनकी दृष्टि स्थूल परदे को बेध कर सूक्ष्म, कारण और तुरीय धाम तक भी चली गई थी।

पारलौकिक शक्ति

प्रभुश्री दिवंगत आत्मा के साथ बातचीत कर सकते थे। इच्छा करने पर वे किसी भी आत्मा को बुला कर उसे निर्देश दे सकते थे। दिवंगत आत्मा भी प्रकट होकर उनसे बातचीत कर सकती थी। इच्छा करने पर वे किसी भी विदेह आत्मा को योग के आकर्षण से बुलाकर स्वयं उससे बातचीत कर सकते थे और प्रार्थी को दिखा भी सकते थे। इह लोक और परलोक का संयोंग उनके पूर्णवश में था। इच्छा करने पर वे भविष्य और परलोक के समाचार संगृहित कर तत्काल बता सकते थे। किसी प्रकार के ऐश्वर्य प्रदर्शित करने के पक्षपाती न होते हुए भी शिष्यों के अत्यंत आग्रहवश उन्हें बाध्य होकर अनेक आश्चर्य जनक और अमानवीय कार्य करने पड़ते थे। प्रभुश्री ने मृत्यु के संबंध में जो अमूल्य संपदाएं परत दर परत संजो कर रखी हैं, उनमें से कुछ एक का विवरण संक्षेप में नीचे दिया गया है। उनकी कृपा, उनकी शक्ति इस कार्य को पूरा करने में सहायक हो, यही प्रार्थना है।

मृत्यु चिंतन

संसार में जो लोग कुछ भी स्वीकार नहीं करते, जो लोग घोर नास्तिक और पाखन्डी हैं, वे भी मृत्यु को स्वीकार करते हैं। हम लोग

प्रतिदिन अपनी आंखों से मृत्यु का ताण्डव देखते हैं। मृत्यु प्राणी मात्र का अवश्यम्भावी परिणाम है। इस बात को और स्पष्ट करते हुए प्रभुश्री ने अपनी 'ब्रह्मचर्य साधन' पुस्तक के 'साधना प्रणाली' अध्याय में लिखा है—आज हो या कल अथवा दस वर्ष बाद हो, एक दिन सब को उस सर्वग्रासी यम सदन में जाना होगा। अगणित सैनिकों द्वारा रक्षित एवं लोकसंहारकारी सम्राट से लेकर वृक्ष के नीचे जीवन यापन करने और चिथड़ों को सब कुछ मानने वाले भिखारी तक को भी एक दिन मृत्यु की गोद में जाना होगा। मृत्यु किसी की प्रतीक्षा नहीं करती। मृत्यु किसी के धन वैभव को नहीं देखती। कितने उद्दण्ड और प्रतापी महारथियों ने इस संसार में जन्म लेकर अपने बल वीर्य से धरती को प्रकम्पित किया था, परन्तु उनमें से कोई भी तो जीवित नहीं बचा। वास्तव में मनुष्य में ऐसी कोई शक्ति नहीं जिससे कि वह दारुण और विभीषिकापूर्ण मृत्यु को रोक सकेगा।"

मृत्यु की गति को रोकने की शक्ति चाहे मनुष्य में नहीं है पर उसमें मृत्यु का तत्त्व जानकर अमृतत्व प्राप्त करने की शक्ति है। मृत्यु चिंतन अमृतत्व प्राप्त करने में विशेष सहायक है। मृत्यु का चिंतन कर अनेक साधु जनों ने संसार के प्रति आसक्ति का त्याग कर अमृत लोक का दिग्दर्शन पाया है। प्रभुश्री ने अपनी ग्रंथावली में मृत्यु चिंतन की निम्नलिखित प्रणाली लिखी है।

मृत्यु चिंतन की धारावाहिक प्रणाली

"सदैव सब अवस्थाओं में इस बात का स्मरण रहे कि मुझे मरना होगा। किस क्षण मृत्यु का नगाड़ा बज उठेगा, यह निश्चित नहीं है। अच्छा बुरा कोई भी कार्य करने से पहले मुझे मृत्यु की बात का स्मरण रखना होगा। मृत्यु का स्मरण रहने पर मन इस मरणशील जगत में काम वासना पूरा करने का अभिनय करने नहीं दौड़ेगा। सदैव मृत्यु का चिंतन कर कार्य करने से मन में पाप को स्थान नहीं मिलेगा। मन दुर्बलों पर अत्याचार करने नहीं जाएगा। विषय, वैभव, आत्मीय स्वजनों की माया सैकड़ों बाहें फैलाकर आसक्ति की जंजीर से और

नहीं बांध सकेगी। कर्मसूत्र के स्रोत में संसार के विषय और सम्पत्ति पड़ी रहेगी। अनादि, अनन्त काल से यह सब पड़ा रहता आया है। मेरी तरह कितने लोगों ने इस संसार में आकर घर संसार, पत्नी, पुत्र के स्नेह के बंधन से स्वयं को बांध रखने की चेष्टा की थी, परन्तु काल के प्रवाह में वे सब कहीं जा चुके हैं। जिसके अक्षय भंडार की वस्तुएं उसके अक्षय भण्डार में पड़ी रही हैं। मैं भगवान के संसार का नौकर मात्र हूं। इस संसार में मृत्यु का परवाना मिलते ही मुझे इस जगह को छोड़ चले जाना होगा। इस बात का निरन्तर स्मरण रहे कि धन-सम्पदा का अंहकार, विद्या-बुद्धि का घमंड, सब कुछ व्यर्थ है। एक दिन सब कुछ नष्ट हो जायेगा। मृत्यु के सामने शारीरिक बल, वीर्य, धन, जन, संपदा, प्रताप, प्रभुत्व आदि का घमंड छोटा पड़ जायेगा। सदा याद रहे, आज तुम पार्थिव सम्पदा के अहंकार से किसी निराश्रित, दुर्बल को पैर से धकेल रहे हो, परन्तु एक दिन ऐसा आयेगा जिस दिन कि कुत्ते, सियार श्मशान में शव के रूप में पड़े तुम्हारे शरीर को पैरों से कुचलते जायेंगे। उस दिन चुपचाप सब कुछ सहन करना पड़ेगा। इस प्रकार के चिंतन से धीरे धीरे पार्थिव वस्तुओं की निस्सारता हृदयंगम होगी। उस समय आसक्ति का बंधन शिथिल हो जायेगा।"

"जो लोग सही अर्थ में घोर आसक्त हैं, जो संसार को नित्य समझ कर अस्थाई धन जन को लेकर प्रमत्त हैं, जो लोग देहात्मबुद्धि संपन्न हैं, उनका मोह तोड़ने के लिए मृत्यु चिंतन की उपयुक्त प्रणाली निश्चित की गई है। वरना जिन्होंने सामान्य तत्त्वज्ञान प्राप्त कर रखा है, जिन्हें संसार की अनित्यता का स्पष्ट ज्ञान है, उनके लिए मृत्यु आनन्द, शांति और प्रीति की सीढ़ी है। उन्हें मृत्यु का भय नहीं है।"

प्रभुश्री ने अपने एक शिष्य को उसका मृत्यु भय दूर करने के लिए जो पत्र लिखा था, वह नीचे दिया गया है।

"जीव को मृत्यु लोक के उस पार की खबर नहीं है जिसके कारण वह मृत्यु के नाम से डरता है। आज हो या कल, जब निश्चय ही मरना होगा, तो मृत्यु से डरने से कैसे काम चलेगा ? विशेषकर जिन्होंने सद-

गुरु के श्रीचरणों में आश्रय ले रखा है, वे रोगशोक से पूर्ण इस दुःखपूर्ण संसार को छोड़ मृत्यु के बाद श्रीगुरु के पास शांतिपूर्ण आनन्दधाम में जायेंगे। मृत्यु उस धाम का द्वार है। अतः मृत्यु से न डरकर खुश होना चाहिए। संसार में प्रारब्ध का भोग कर कर्त्तव्य करते जाओ, पर मन को मृत्यु के पार स्थित उस आनन्द धाम के चिंतन में लगाए रखो।"

मृत्यु का भय दूर करना

"देखो, तुम लोग यहाँ पर हमेशा हमेशा के लिए नहीं रहोगे। एक न एक दिन सब को मृत्यु के मुंह में जाना होगा। मृत्यु के लिए पहले से तैयार रहने, मृत्यु और परलोक क्या है, मृत्यु के बाद आत्मा की कैसी गति होती है, इन सब बातों पर चर्चा करते रहने से मृत्यु का भय मनुष्य को और कमजोर नहीं कर सकेगा। तुम लोग मृत्यु और परलोक पर चर्चा करके देखो कि इससे तुम लोगों के जीवन में पर्याप्त उन्नति होगी। वास्तव में मृत्यु से भयभीत होने का कोई कारण नहीं। मनुष्य केवल कुसंस्कारवश मृत्यु से डरता है।"

"मानव इतिहास के निम्न स्तर की पर्यालोचना करने से पता चलेगा कि मनुष्य ने मृत्यु के मुख पर चूना और कालिख पोत कर बिना कारण ही उसे विचित्र और भयंकर बना रखा है। जो जाति जितनी असभ्य है, उसने उतना ही अधिक भयभीत होकर मृत्यु की छवि अंकित करने की चेष्टा की है। यहां तक कि उन्नत ईसाई ब्रह्म विद्या में भी मृत्यु को अन्धकारपूर्ण घाटी बताया गया है। परन्तु सच्चाई छिपने की चीज नहीं है। योग के बल पर अथवा आध्यात्मिक शक्ति के बल पर हो, महापुरुषगण ऐसी शक्ति लेकर जन्म लेते हैं कि वे सामाजिक संकीर्णता को पार कर जन्म-मृत्यु का रहस्य उद्घाटित करने में समर्थ होते हैं।"

प्रभुश्री ने साधना की सहायता से यौगिक और आध्यात्मिक, दोनों शक्तियां प्राप्त कर मृत्यु तत्त्व के जिस गूढ़ रहस्य का उद्घाटन किया है, "तत्त्वमाला" पुस्तक के "मृत्युतत्त्व" में उसका कुछ भाग प्रकाशित किया गया है। प्रभुश्री ने लिखा है—

"मृत्यु का अर्थ है परिवर्तन। लोग कहते हैं कि अमुक व्यक्ति की आयु पूरी हो गई, इसलिए वह मर गया है। भोग्य तेज को आयु कहा जाता है अर्थात् लिंग शरीर की सत्ता का नाम आयु है। हम मृत्यु कहने से स्वभाव का परिवर्तन समझते हैं। वह परिवर्तन शरीरगत अथवा व्यक्तिगत नहीं, वह परिवर्तन आध्यात्मिक है। मनुष्य के स्थूल शरीर के भीतर जो अध्यात्म तत्त्व है, मृत्यु के बाद उसमें परिवर्तन होता है।"

मृत्यु का स्वरूप

अनेक लोग समझते हैं कि मृत्यु होने से सब कुछ समाप्त हो जाता है। वास्तव में ऐसा नहीं होता है। इस सम्बन्ध में प्रभुश्री ने कहा है, "यह मत समझो कि मृत्यु इस जगत की चरम सीमा है। मृत्यु होते ही सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता। मृत्यु का अर्थ परिवर्तन होने पर भी वह परिवर्तन सम्पूर्ण नहीं है। उससे व्यक्तिगत चरित्र एकदम नष्ट नहीं हो पाता है। याद रखो कि गुलाब की कली के खिलने से फूल की अवस्था और स्थिति में जो परिवर्तन होता है, मनुष्य के मरने से उसमें आत्मगत जो परिवर्तन होता है, वह उससे अधिक कुछ नहीं है। इसलिए साधुजन कहते हैं कि आत्मा द्वारा अनन्त जीवन प्राप्त करने का नाम मृत्यु है।

मृत्यु का आक्रमण

मनुष्य किस प्रकार धीरे-धीरे मृत्यु की गोद में चला जाता है, किस प्रकार मृत्यु आकर मनुष्य का हाथ पकड़ कर उसे ले जाती है, इसका वर्णन करते हुए प्रभुश्री ने कहा है, "जिस क्षण मनुष्य के शारीरिक अवयवों का पूर्ण विकास हो जाता है उसी क्षण से परिवर्तन आरम्भ हो जाता है। प्रतिदिन, प्रतिपल मनुष्य की मनोवृत्तियां मर कर अपने-अपने अधिकार क्षेत्र से हटती जाती हैं। यह परिवर्तन पहले-पहल बहुत ही अलक्षित रूप से चलता है। परन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यह परिवर्तन निरन्तर बढ़ता रहता है।

मनुष्य की आयु में जितनी वृद्धि होती रहती है, उसके साथ ही साथ उसकी आत्मा भी चैतन्य क्षेत्र में उतनी ही अधिक परिस्फुट होती जाती है। सूक्ष्म से भी और सूक्ष्म, सर्वत्रगामी आत्मा के सामने लालसा युक्त और मल-मूत्र से परिपूर्ण यह अशुद्ध शरीर बहुत ही स्थूल, गति-हीन और जड़भावापन्न प्रतीत होता है। उस शरीर में सूक्ष्म आत्मा का कोई भी कार्य नहीं हो पाता। उसके बाद मृत्यु का समय आने पर आत्मा स्थूल शरीर के सूक्ष्म उपादानों से एक सूक्ष्म शरीर का गठन कर चिर विदाई लेने के लिए तैयार होती है। परन्तु हृदय, धमनियां, मस्तिष्क आदि शरीर के विभिन्न अंग आत्मा को छोड़ना नहीं चाहते। स्थूल शरीर प्राणप्रण से आत्मा को पकड़े रखना चाहता है। इसी संघर्ष (या धर पकड़) में मृत्यु के समय देही के शरीर में अनेक लक्षण दिखाई देते हैं। साधारणतया हम समझते हैं कि यह सब कष्ट के लक्षण हैं, परन्तु इसमें कष्ट का कोई कारण नहीं है। यह सब इस बात का निदर्शन है कि आत्मा हमेशा के लिए शरीर का संग छोड़ रही है। उस समय मनुष्य के भीतर जो आनन्द होता है, वह वर्णनातीत है। हम लोग बाहर से देखते हैं कि जीव को मृत्यु की यंत्रणा हो रही है। परन्तु वह अन्तरात्मा के आनन्द का परिचायक है। अत्यंत सुख और अत्यंत दुःख का बाह्य विकास एक जैसा है। स्वाभाविक मृत्यु में कोई क्लेश नहीं है। रोग और दुर्घटना के कारण होने वाली मृत्यु के अतिरिक्त मृत्यु एक तरह की अटूट, जागरणहीन और सुषुप्ति अवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य थकावट के बाद सो जाता है, स्वाभाविक मृत्यु बिल्कुल उसी प्रकार की है। उस समय मनुष्य में किसी के साथ बातचीत करने की इच्छा नहीं होती। उस समय उसमें सांसारिक विषयों के प्रति एक तरह की उदासीनता या वैराग्य भाव आ जाता है। उस समय मनुष्य को सुखपूर्वक मरने देना चाहिए। परन्तु कुसंस्कारवश हम लोग जोर-जोर से रोना-धोना शुरू कर मृत्यु पथ के यात्री को विविध कष्ट देते रहते हैं। किसी आकस्मिक दुर्घटना से मृत्यु होने पर उसके लिए तैयार न रहने के कारण सूक्ष्म शरीर के गठित होने में विलंब होता है। लंबे समय तक रोग से पीड़ित होने के बाद जो मृत्यु होती है, वह भी स्वाभाविक

मृत्यु है। आकस्मिक मृत्यु पल भर में स्थूल शरीर को आत्मा के रहने के अनुपयुक्त बना देती है।"

स्थूल शरीर का त्याग

"जिस किसी समय या जिस रूप में मृत्यु क्यों न हो, मृत्यु के समय सब लोगों की मानसिक स्थिति और उत्क्रान्ति लगभग एक जैसी होती है। मनुष्य किस प्रकार देह का त्याग करता है, इस सम्बन्ध में प्रभुश्री ने कहा है, "जीवन के अन्तिम क्षण में जीव का आध्यात्मिक ज्ञान और अनुभूति बढ़ जाती है और उस समय उसके सामने भविष्य के आवास स्थल का अनन्त ऐश्वर्य प्रतिफलित होता है। उस समय मृत्यु का समय आते ही मृत्यु पथ के यात्री के मस्तिष्क के चारों ओर एक तरह का सूक्ष्म, कोमल, ज्योतिष्मान मण्डल प्रकट होता है। उसके प्रमस्तिष्क (Cerebrum and Cerebellum) के अत्यन्त भीतर का भाग विकसित हो उठता है। जीवितावस्था में जो बिजली और चुम्बक शक्तियां शरीर की निम्न वृत्तियों को अनुप्राणित कर रही थीं, वे उस समय सौ गुना बढ़ कर केवल मस्तिष्क में जमा हो जाती हैं। अर्थात् स्वस्थ और जीवन्त अवस्था की तुलना में उस समय वृत्तियां सौ गुना बढ़ जाती हैं। शरीर के नष्ट होने के थोड़े समय पहले सब जीवों में ऐसी बुद्धि और वृत्तियां दिखाई देती हैं। यथार्थ मृत्यु होने के समय अथवा जिस समय आत्मा शरीर को पूरी तरह त्याग करती है उस समय मस्तिष्क सब इन्द्रियों और वृत्तियों से विद्युत और चुम्बकीय शक्तियों तथा जीवन की अनुभूतियों को खींच लेती है। इसके परिणाम-स्वरूप सिर के बाहरी हिस्से में एक ज्योतिष्मान मण्डल का विकास होता है। शरीर का निम्न भाग जितनी मात्रा में शीतल और अंधेरे से आच्छन्न होता जाता है, उस ज्योति की लौ उतनी ही मात्रा में बढ़ती जाती है। उस मण्डल में मस्तिष्क के चारों ओर उस सूक्ष्म आकाश में एक और मस्तिष्क की एक अस्पष्ट रेखा धीरे-धीरे स्पष्ट होती जाती है। धीरे-धीरे वह ज्योतिष्मान आकाश घनीभूत होकर उसे एक घनीभूत आलोकमण्डल में बदल देता है। जिस समय इस मस्तिष्क का गठन कार्य चलता रहता है, उस समय शरीर से

आलोक छटा की परमाणुमण्डली में एक तरह का कंपन पैदा होता है। ऐसे ज्योतिष्मान उपादानों से मृत शरीर के कंधे, भौं आदि के अनुकरण में एक पूर्ण सूक्ष्म शरीर का गठन होता है। इस सन्दर्भ में स्मरण रखना होगा कि जिन व्यक्तियों में योग अथवा आध्यात्मिक शक्ति का विकास नहीं हुआ है, उनके लिए ऐसी अतीन्द्रिय अनुभूति प्राप्त करना सर्वथा असम्भव । यदि स्थूल शरीर में कोई अपंगता रहती है, तो उस सूक्ष्म शरीर में ऐसी कोई कमी दिखाई नहीं देती। इसलिए जीवितावस्था में जो कमियां आत्मा के पूर्ण विकास में बाधा बनी हुई थी, मृत्यु के बाद वे सब नहीं रहती। आत्मा सतत् उन्नति के पथ पर अग्रसर होती है।''

आत्मा का उज्ज्वल ज्योतिर्मय शरीर

"इस प्रकार आत्मा उज्ज्वल ज्योतिर्मय शरीर धारण कर मृत शरीर के मस्तिष्क पर खड़ी हो जाती है। शरीर और आत्मा के इतने दिन से एकत्र रहने और इतने दिन के स्नेह और अनुराग को छोड़ कर भी आत्मा शरीर को छोड़ना नहीं चाहती। शुन्य में स्थित अतिबह्यिक शरीर के पैरों और जमीन पर पड़े मृत शरीर के मस्तिष्क के बीच जीवनी तड़ित का एक सूक्ष्म बन्धन सूत्र देखने को मिलता है। उससे स्पष्ट पता चलता है कि मनुष्य जिसे मृत्यु कहता है, वह एक नव जन्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जन्म लेते समय मनुष्य गर्भनाल के साथ धरती पर आता है। ठीक वैसे ही मृत्यु पथ पर अतीन्द्रिय धाम में इस सूक्ष्म, ज्योतिर्मय जीवनी सूत्र अथवा सूक्ष्म तड़ित् तंतु को लेकर अतिबाह्यिक शरीर का जन्म होता है। यह जीवनीसूत्र या सूक्ष्म तड़ित थोड़ी देर तक मृत शरीर और अतिबाह्यिक शरीर को एक दुसरे से जोड़े रखता है। इसलिए मृत्यु के तत्काल बाद दाह संस्कार नहीं करना चाहये। सूक्ष्म शरीर का यह अशरीरी नाभि रज्जु काफी देर तक अलग नहीं हो पाती है। उसके द्वारा सूक्ष्म और स्थूल शरीरों के बीच एक दूसरे की अनुभूति और अभिज्ञान का आदान प्रदान चलता है।"

सूक्ष्म नाभि रज्जु

"इसी कारण से समाधि या योगनिद्रा आदि योगात्मक प्रक्रियाओं में मनुष्य को अप्रत्यक्ष या अतीन्द्रिय बातों की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। इसलिए इस धरती पर बैठ कर भारत के पुण्यमूर्ति ऋषि-मुनि इस रज्जु की सहायता से सप्तर्षिमण्डल के भीतर की जानकारी दे सकते थे। मुनि-ऋषियों ने इसी की सहायता से चन्द्र, सूर्य आदि ग्रहों और उपग्रहों तथा लोक-परलोक में विचरण कर अनेक तत्त्व और सृष्टि, स्थिति और प्रलय की अनेक कल्पनातीत स्थितियों के वर्णन इस देश के साहित्य में समाविष्ट कर रखा है। इस सूक्ष्म नाड़ी के क्षुद्र छिद्र के भीतर होकर मनुष्य प्रकृति के असीम रहस्यमय क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है।"

आत्मा का शरीर त्याग

"जब आत्मा इस स्थूल शरीर से बिल्कुल अलग हो जाती है, तो वह अतिबाह्यिक शरीर सांस लेने के लिए इस स्थूल वायु को ग्रहण नहीं करता। उसे वायुमण्डल की आभ्यन्तरीण वायु का सेवन करना पड़ता है। इस आध्यात्मिक वायु में सांस लेने में आत्मा को पहले कुछ समय थोड़ा कष्ट होता है। परन्तु पल भर में ही वह असुविधा दूर हो जाती है। उस समय आत्मा खूब आराम से सांस ले सकती है। इस परिवर्तन के समय देही के अहंत्व का पूर्ण विनाश तथा उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता।"

"मृत्यु के समय कष्ट के जो लक्षण दिखाई देते हैं, वह आत्मा के निकलने के लिए पथ को परिष्कृत करने के द्योतक हैं। यदि आत्मीय स्वजनों में से किसी में अन्तर्दृष्टि होगी, तो वह निश्चय ही देख सकता है कि जिसकी मृत्यु पर वे सब व्याकुल हैं; वह मृत व्यक्ति किस प्रकार उज्ज्वल ज्योतिर्मय शरीर में उनके बीच खड़ा है।" क्षुद्र और सीमाओं से बंधे जीवन को लेकर मानव संतान के धरती पर आने के समय जहां इतना शुभ माना जाता है कि असीम खुशियां उमड़ पड़ती हैं, वहां उस संतान की मृत्यु के दिन भी अर्थात जिस दिन वह अनन्त जीवन के क्षेत्र में पदार्पण करता है, धरती पर स्थित उसके घर पर बेहद खुशियां

मनाई जानी चाहिए। परन्तु माया से आबद्ध मनुष्य यह बात नहीं समझ पाता। यह दोष हमारे समाज में चली आ रही शिक्षा के स्वरूप का है।

मृत्यु के बाद की अवस्था या प्रेत शरीर

मनुष्य के मरने के साथ साथ आत्मा का प्रकृत शरीर उपर्युक्त प्रकार से गठित होने पर भी साधारण मनुष्य यह बात नहीं समझ पाता है। केवल अतीन्द्रिय शक्ति सम्पन्न योगीजन ही वह देख पाते हैं। साधारण विदेह आत्मा की अवस्था कैसी होती है, वह प्रभुश्री की निम्नवाणी से स्पष्ट है।

"साधारण मृत्यु या स्वाभाविक मृत्यु में मनुष्य मरने के साथ साथ अचेतन की स्थिति में पहुंच जाता है। उस समय आत्मा में सुख-दुख का ज्ञान नहीं रहता है। पहले श्राद्ध के दिन पूरक पिण्ड हो जाने से वह प्रेत शरीर प्राप्त करती है और कर्मफल का भोग करती है। बच्चों और पशु-पक्षियों के अतिरिक्त सब को प्रेत शरीर का भोग करना पड़ता है। प्रेत शरीर जिस लोक में रहता है, उसे भुवलोक कहते हैं। मृत्यु आनन्द पूर्ण अवस्था होने पर भी मृत्यु के बाद आदमी को उसके अहंभाव का स्मरण नहीं रहता है, अर्थात "मैं मर चुका हूं" इस बात का स्मरण नहीं रहता है। इस विस्मरण अवस्था को प्रेत-अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में लोग तरह तरह के कष्ट भोगते हैं।"

प्रेत का कष्ट

"यमपुर नाम से कुछ भी नहीं है। परन्तु इस प्रेत अवस्था का कष्ट यमपुर के वर्णन से कहीं अधिक भयंकर है। प्रेत रूपी जीव यह बिल्कुल नहीं समझ पाता कि वह मर चुका है। जिस समय प्रेत देखता है कि उसका पुत्र उसके द्वारा कष्टों से कमाये गये सारे जीवन के संचित धन को उससे पूछे बिना ही खर्च कर रहा है, उस समय वह क्रोध से अंधा होकर उसे रोकने के लिए दौड़ता है। परन्तु स्थूल इन्द्रियां न होने के कारण वह कुछ क्षति नहीं कर पाता। अतः वह दुगुने क्रोध से जलता रहता है।

भगवान हमें इस अवस्था के बारे में प्रतिदिन समझा रहे हैं। सोने के लिए लेटते ही हम किस समय सो जाते हैं, हमें उसका पता ही नहीं चलता। सो जाने के बाद हमारे सामने स्वप्न जगत आ जाता है। स्वप्न में तुम जो कुछ करते या देखते हो उस समय यह नहीं सोचते कि जो कुछ देख या कर रहे हो, वह सब स्वप्न में हो रहा है। स्वप्न में भूख लगने पर तुम खाते हो, पर उससे तृप्ति नहीं होती है। तुम यदि उस समय सोच सकते कि ये सब स्वप्न है, तो धोखा नहीं होता। प्रेत की अवस्था बिल्कुल ऐसी ही है। यदि उस समय मृत्यु का ज्ञान होता या अहंभाव का स्मरण रहता, तो तत्काल उस अवस्था से उन्नति हो जाती। परंतु भोग की वासना रहने के कारण अज्ञानी जीव स्वयं को भुलाकर भयंकर कष्ट भोगता है। स्वप्न क्षणस्थायी है, परन्तु प्रेत-अवस्था लंबी अवधि तक विद्यमान रहती है। यह अवस्था किस की कितने दिन रहेगी, यह बताना कठिन है। भोग की वासना पूरी न होने तक कोई इस अवस्था का अतिक्रमण नहीं कर पाता। संयम के बिना इस संजीवनी पुर को पार करना कठिन है। स्वप्न के समय किसी के द्वारा जगा दिए जाने से जिस प्रकार स्वप्न टूट जाता है, ठीक वैसे ही प्रेतात्मा को उसकी अज्ञानता का बोध करा कर यदि कोई उसे यह स्मरण करा दे कि वह मर चुका है, तो उसकी अवस्था में परिवर्तन हो जाता है और वह ऊपर चली जाती है। परन्तु सदगुरु के अतिरिक्त इस समय सहायता करने की सामर्थ्य किसी और में नहीं है। सदगुरु उसे इस अवस्था का ज्ञान करा कर उन्नति के पथ पर ले जाते हैं। अन्यथा कर्म फल का भोग करने के अतिरिक्त प्रेत लोक में कोई दूसरी गति नहीं है।''

परलोक में अविश्वासी

''बहुत से लोग परलोक में विश्वास नहीं करते। ऐसे एक अविश्वासी की बात कहता हूं, सुनो। यह व्यक्ति कुमिल्ला का एक वकील था। १३०४ बंगाब्द में उसने सपना देखा कि भूकम्प आ रहा है और वह बहुत ही भयभीत होकर अपने घर की छत से सीढ़ियों से नीचे उतर रहा है। इसी बीच सीढ़ियां टूट जाती हैं और सारी ईंटें उसके

ऊपर गिरती जाती हैं। वह ईंटों के ढेर के नीचे दब जाता है। ईंटों से दब जाने के कारण वह अव्यक्त यंत्रणा का भोग करने लगता है, पर उसकी मृत्यु नहीं होती। वह स्वप्न में गों-गों की आवाज करने लगता है। उसके पास उसकी पत्नी सोई हुई थी। पति की गों-गों की आवाज से उसकी नींद टूट गई और उसने स्वप्न देख रहे पति को जोर से जगा दिया। जागने के बाद वकील बाबू चौंका। वह सोचने लगा, यदि यह स्वप्न महास्वप्न होता और मनुष्य सचमुच ऐसी किसी अवस्था का सामना करता, तो उसका क्या उपाय है ? यदि परलोक में इस महास्वप्न जैसी स्थिति आ जाए तो उस समय तो कोई पत्नी नहीं जगा सकती ? शायद गुरु बनाने की प्रथा मनुष्यों को इसी महास्वप्न से जगाने के लिए ही है। इस बात पर काफी सोच-विचार करने के बाद उसने मेरे पास आकर दीक्षा ली और मृत्यु के सम्बन्ध में व्यापक अनुसंधान कर अनेक पुस्तकें लिखीं।"

पितृ लोक

भुवलोक दो भागों में विभाजित है—प्रेत लोक और पितृ लोक। इस लोक में कुछ दिन ठहरने के बाद जीव क्रम मुक्ति के पथ में महर्लोक तक जाता है और वहां से अज्ञान होकर पुनः जन्म लेता है। कौन आत्मा कितने दिन बाद जन्म लेगी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कोई-कोई जीव तो वार्षिक श्राद्ध के बाद ही जन्म ले लेता है, किसी-किसी का एक पुश्त के बाद जन्म होता है। इसकी कोई निश्चितता नहीं रहने के कारण हिन्दू शास्त्रों में चार पीढ़ी तक श्राद्ध करने की व्यवस्था की गई है। चार पीढ़ी की इस अवधि के दौरान दिवंगत आत्मा का पुनः जन्म हो जाता है। श्राद्ध के द्वारा दिवंगत आत्मा के मुक्ति पथ में विद्यमान कुछ बाधाएं दूर हो जाती हैं। परन्तु स्वयं चेष्टा न करने पर मुक्ति नहीं होती। यदि कोई पत्ता नदी के स्रोत में समुद्र की ओर बहते हुए जल भंवर में गिर जाता है अथवा कहीं पर रुक जाता है, तो उसे वहां से थोड़ा सहारा देकर निकाल देने से जिस प्रकार वह पुनः अबाध गति से बहने लगता है और समुद्र में पहुंच जाता है, ठीक उसी तरह श्राद्ध के द्वारा मुक्तिपथ में विद्यमान

कुछ बाधाएं ही दूर हो पाती हैं। इसके साथ ही श्राद्ध से दिवंगत आत्मा को अपने अहंभाव का स्मरण होता है। उसे स्मरण हो जाता है कि वह मर चुका है।"

"योगी, ज्ञानी और सहज भाव से जीवन-यापन करने वाले लोगों के लिए श्राद्ध आदि का कोई विशेष प्रयोजन नहीं रहता। साधु-महापुरुष तथा उन्नत आत्माओं के देहत्याग के साथ-साथ ही उनके सूक्ष्म शरीर का गठन हो जाता है।

मृत्यु के प्रकार

मृत्यु चार प्रकार की हैं—ज्ञानपूर्वक मृत्यु, स्वाभाविक मृत्यु, अकाल मृत्यु आत्महत्या। योगियों की ज्ञानपूर्वक मृत्यु होती है। वे देह के अवसान के पश्चात् निर्वाण प्राप्त करते हैं। अनेक दिन तक रोग से पीड़ित रहने अथवा बुढ़ापे के कारण जो मृत्यु होती है, वह स्वाभाविक मृत्यु है।

स्वाभाविक मृत्यु में गति

स्वाभाविक मृत्यु के बाद सत और असत के भेद के अनुसार उपर्युक्त रूप से पहले भुवलोक और उसके बाद अहं भाव का स्मरण होते ही आत्मा स्वर्लोक में जाती है और अपने कर्मफल के अनुसार सुख और दुःख भोगती है। बाद में महर्लोक में जाकर भोग शरीर के अभाव में पुनः जन्म लेने के लिए बाध्य होती है। यह सब एक अद्भुत रहस्य है। जिनकी कामना वासना नष्ट हो चुकी है, जो लोग सदगुरु या भगवान के आश्रित हैं लेकिन उन्हें अपरोक्ष अनुभूति या ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई है, वे महर्लोक होकर जन, तप और सत्य लोक में पहुंचते हैं और प्रलय के समय तक वहां रहकर ब्रह्माण्ड पति के साथ ब्रह्म निर्वाण प्राप्त करते हैं। इसका नाम क्रम मुक्ति है। साधारण जीव महर्लोक में आकर अचेतन हो जाता है, परन्तु क्रम मुक्ति पथ के यात्री जब महर्लोक में पहुंचते हैं, उनका आत्मज्ञान तत्काल प्रस्फुटित हो जाता हैं।

आकस्मिक मृत्यु में गति

"मनुष्यों में जिन लोगों की मृत्यु प्राण वायु हृदय में रुक जाने के कारण होती है, उनकी उत्क्रान्ति नहीं होती। इसलिए दुर्घटना जन्य अथवा आकस्मिक मृत्यु में मनुष्य को पशु का जन्म लेना होता है, क्योंकि उस समय उसका मन सभी भावों अथवा सभी प्रकार के संस्कारों से शून्य रहता है। किसी प्रकार की आशा या आकांक्षा अथवा कामना वासना न रहने के कारण उसका मन अचानक तम से प्रभावित हो जाता है। वह स्वयं को जागृत रखने का कोई भी अवलंबन न पाकर प्रकृति का खिलौना बन जाता है। कभी-कभी ऐसा भी माना जाता है कि अकाल मृत्यु प्रारब्ध का फल है। परन्तु जो लोग युद्ध के दौरान मारे जाते हैं, उनकी मृत्यु को अकाल मृत्यु नहीं कहा जाएगा। वे पहले ही मरने के लिए तैयार होकर युद्ध में जाते हैं। वे एक तरह के संस्कार में बंधे रहते हैं कि "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जीत्वा वा भोक्ष्यसे महीं।" अतः युद्ध में होने वाली मृत्यु स्वाभाविक मृत्यु से अच्छी है।"

आत्महत्या

"आत्महत्या महापापों में गिनी जाती हैं। इसका फल प्रेत लोक में बड़ा भयानक होता है। प्रभुश्री ने आत्महत्या के संबंध में जो वाणी सुनाई थी, वह नीचे दी गई है :—

"एक दिन मैं धलेश्वरी के तट पर फूलवाडिया नामक स्थान पर घूम रहा था तो अचानक एक पेड़ पर मेरी दृष्टि गई। मैंने वहां पर देखा कि एक प्रेतात्मा पेड़ पर रस्सी से झूल रही है। बाद में पूछने पर मुझे पता लगा कि वह उदरशूल की बीमारी से पीड़ित था। रोग की यंत्रणा से तंग आकर उसने बहुत दिन पहले इस पेड़ पर रस्सी का फंदा गले में डालकर आत्महत्या कर ली थी। आज तक वह उस पाप के फल से मुक्त नहीं हुआ है।"

'आत्महत्या करने वालों को भगवान का नाम भी स्मरण नहीं रहता। यदि स्मरण रहता तो वे आत्महत्या नहीं कर पाते। पहले जिस दुख को भोगते थे उससे मुक्ति पाने के लिए आत्महत्या करते हैं। परन्तु

मृत्यु के समय अज्ञानवश वे नहीं जान पाते हैं कि वे मर चुके हैं। इस लिए उन्होंने जिस दुख से तंग आकर आत्महत्या की थी, मृत्यु के बाद भी वे अनेक समय तक उस दुख को भोगते रहते हैं। उनके प्रेत शरीर बनने में अनेक वर्ष लग जाते हैं। वे अपने अज्ञान के कारण एक तरह का कष्ट भोगते रहते हैं।

१३४१ बंगाब्द के कार्त्तिक मास में बगुड़ा के मालती नगर में प्रभुश्री सुरेन भाई के घर पर गए हुए थे। इससे कुछ दिन पहले सुरेन भाई की एक बूढ़ी नौकरानी ने गले में रस्सी का फंदा डाल कर आत्महत्या कर ली थी। उस दिन से अड़ौस-पड़ौस के लोग इतने भयभीत हो गए थे कि वे रात को सो नहीं सकते थे। थोड़ी सी आवाज होते ही वे मारे डर के चौंक उठते थे। प्रभुश्री के सुरेन भाई के घर पर आकर बैठते ही सभी ने कहा, "प्रभो, हम लोग कालीदासी मां के डर से परेशान हैं।" यह सुन कर प्रभुश्री ने कहा, "देखो, मनुष्य के मरने के बाद भूत बनने में भी समय लगता है। जो लोग निम्न स्तर के हैं अर्थात जो आत्महत्या करते हैं, वे अनेक दिन तक स्तब्ध या मोहग्रस्त रहते हैं। "वे मर चुके हैं" यह ज्ञान होने में अनेक लोगों को दो-तीन वर्ष लग जाते हैं। काली दासी मां के भूत बनने में भी बहुत देर है। देखो, भूत मनुष्य को कोई क्षति नहीं पहुंचा सकता। उसमें क्षति पहुंचाने की सामर्थ्य भी नहीं रहती। संसार के अनेक लोग दुःख, कष्ट और यंत्रणा से बचने के लिए आत्महत्या कर बैठते हैं।" उससे यंत्रणा कम न होकर किस प्रकार वह और बढ़ जाती है, उस सम्बन्ध में प्रभुश्री ने एक पत्र में लिखा है –

"आत्महत्या महापाप है। स्वेच्छा से मरने पर भी कोई अभाव के प्रभाव से नहीं बच सकता। यदि मरने से ही सब कुछ दुःख चला जाता तो ज्ञानी मात्र ही आत्महत्या करते। वे जानबूझ कर रक्त मांस के इस सड़े-गले शरीर में पड़े नहीं रहते। ज्ञानी लोगों को पता है कि विधाता का विधान तोड़ने से दुःख बढ़ेगा ही, घटेगा नहीं। जेल तोड़ कर भाग जाने से कैदी सजा से बच नहीं सकता, वरन् उसकी सजा बढ़ जाती है। जो जैसा प्रारब्ध लेकर आया है, उसे वह भोगना ही पड़ेगा। किसी भी अवस्था में इस बात को मत भूलो। जो संसार में निराश होकर

मर सकता है, वह चेष्टा करके भगवान के लिए क्यों नहीं मरता ? दु:ख कष्ट से प्रभावित होकर मरने के संकल्प को मन में स्थान मत दो। आत्मा अमर और सर्वशक्तिमान होने पर भी उसमें मरने की सामर्थ्य नहीं है। जो मरते हैं, वे सचमुच नहीं मरते, अपितु कर्मफल के को आवरण बढ़ा देते हैं।"

अनेक लोग ऐसे हैं जो कि अपने द्वारा किए गये पाप के प्रायश्चित के रूप में लोक लाज से बचने के लिए आत्महत्या का सहारा लेते हैं। इस सम्बन्ध में प्रभुश्री ने एक पत्र में लिखा है—

"आत्महत्या के विचार को भी मन में स्थान मत दो। आत्महत्या से कभी भी उन्नति नहीं होगी। वरन् आत्महत्या करने का विचार नरक की ओर खींच लेता है। अतः जीवित रह कर भीषण कष्ट उठाते हुए, अपने किए गए पाप का प्रायश्चित किया जा सकता है। परन्तु आत्म-हत्या से वह हो पाना संभव नहीं है। आत्महत्या करने वाले व्यक्ति का उद्धार नहीं है, यह बात ठीक नहीं है। सत्य यह है कि आत्महत्या करने वाले व्यक्ति को परलोक में लंबी अवधि की यंत्रणा भोगनी पड़ती है। बाद में प्राकृतिक नियमानुसार जन्म लेने पर आत्मघाती आत्मा की उन्नति हो सकती है। अतः शास्त्र में आत्महत्या का निषेध किया गया है।"

"आकस्मिक मत्यु भी विभिन्न प्रकार की है। इस मत्यु से अपने स्वरूप में जागने में विलम्ब होता है। यहां तक कि जिस घटना को लेकर आकस्मिक मृत्यु होती है चित्त बहुत दिन तक वैसा ही आकार धारण किए रहता है।"

प्रभुश्री के एक प्रिय भक्त के भाई की बाघ के हमले से मृत्यु हो गई। इस सम्बन्ध में प्रभुश्री ने उन्हें एक पत्र में लिखा है—

"मृत्यु के समय जीव का मनोभाव कैसा था, जब तक उसका पता नहीं चलता, तब तक यह बता पाना कठिन है कि उसकी क्या गति हुई है। तब तुम्हारा भाई दो तीन घंटे के बाद मरा, इसलिए यह अपेक्षाकृत अच्छा ही हुआ। बाघ या मगरमच्छ के पकड़ने से मन तदाकाराकारित

हो जाता है। तब कुछ देर के बाद मृत्यु होने के कारण बाघ की योनि में जन्म न होने पर भी कम से कम कुछ दिन तक बाघ सम्बन्धी कार्यक्षेत्र में अवश्य घूमेगा, यह अनिवार्य है। जीवन्मुक्त के अतिरिक्त किसी और के लिए इस नियम से छुटकारा नहीं है।"

आत्महत्या रोकना

१३३७ बंगाब्द के भक्त सम्मेलन में एक शिष्य ने आकर प्रभुश्री से प्रश्न किया, "प्रभो, सांप के शरीर में मणि है। यदि उस मणि को प्राप्त करने के लिए सांप के पास जाने और उसके द्वारा काटे लिए जाने से किसी की मृत्यु होती है, तो क्या उसे आत्महत्या कहा जाएगा ?" प्रभुश्री ने कहा, "नहीं, उसे आत्महत्या नहीं कहा जाएगा।" उस समय प्रभुश्री नहीं समझ पाए कि उनका भक्त किस मणि की बात कर रहा है। बाद में वे समझ पाए कि सत्य की प्राप्ति न होने पर वह प्राण त्याग करने के लिए तैयार है। अतः वह चालाकी से प्रभुश्री से उसकी अनुमति ले गया। प्रभुश्री ने सोचा, देखते हैं, मामला कहाँ तक जाता है। प्रभुश्री के आदेशानुसार इस शिष्य ने आपबीती घटना का यथावत वर्णन किया। उसका विवरण नीचे दिया गया है।

"मैं कितने दिन तक बिना खाये रहा यह मुझे ठीक याद नहीं है। शायद चार-पांच दिन से कम नहीं होगा। उसके बाद मैंने हरिद्वार जाकर गंगा में छलांग लगा कर मरने का निश्चय किया। उस रात को मैंने स्वप्न में देखा कि मैं गंगा के स्रोत में बहते हुए पुरी में प्रभुश्री के चरणों में पहुंच चुका हूं। इसके बाद मैंने सोचा, नहीं, स्वप्न में पाने से काम नहीं चलेगा, सचमुच में पाना होगा। मैं गंगा में छलांग लगाऊंगा, इससे या तो शरीर नष्ट होगा या फिर सत्य लाभ होगा। मैं गंगा के तट पर बैठे हुए सोचने लगा कि मैं गंगा में छलाँग लगाऊं और देखूं कि प्रभुश्री मुझे गोद में लेते हैं या नहीं। अचानक मेरे मन में भावन्तर आ गया। मैंने सोचा प्रभुश्री तो अवश्य ही दर्शन देगें। यदि वे दर्शन नहीं देगें तो मेरी आत्महत्या की वजह से चारों ओर उन्हीं की बदनामी होगी। सब कहेंगे कि प्रभुश्री ने अपने भक्त का अभीष्ट पूरा नहीं किया, इसलिए

उसने आत्महत्या कर ली। नहीं, मैं इसे सहन नहीं कर सकूंगा। मैं आत्महत्या नहीं करूंगा। इस प्रकार मेरा मरना नहीं हुआ। मैं क्रमशः वहाँ से वृन्दावन पहुंचा। वहां पर एक कुंजवन है। वह स्थान घने जंगल से घिरा हुआ है। प्रति रात को भगवान वहाँ पर रास लीला करते हैं, परन्तु वहां रात में किसी को ठहरने नहीं दिया जाता। इससे पहले वहां रात बिताने गए अनेक लोगों की मृत्यु हो चुकी है। लोगों से यह बात सुनकर मेरे मन में पहले का भाव लौट आया। मैंने सोचा कि कुंज वन में रात बिताते हुए यदि मुझे भगवान के दर्शन प्राप्त हुए तो वह सौभाग्य होगा और यदि मृत्यु होती है, तो वह तो मेरा अभिप्राय है ही। किसी दूसरे के देखे बिना दिन में ही मैंने कुंजवन में प्रवेश किया। शाम होने तक मैं निश्चिंत था, पर बाद में मेरा मन घबड़ा उठा। मैं वहां से निकल आने के लिए व्यग्र हो उठा। परन्तु लता-पत्रादि से मेरे दोनों पैर ऐसे जकड़ गये थे कि वहां से भाग आने का कोई उपाय नहीं था। मैंने वहां से निकल आने की जी जान से चेष्टा की, पर सब कुछ बेकार गया। कुछ समय बाद मैंने अचानक देखा कि मेरे पैरों में बंधे लता पत्रादि पता नहीं कहाँ गायब हो चुके हैं ओर मैं कुंजवन के बाहर खड़ा हूं। उस दिन से मैंने प्रतिज्ञा की कि अब कभी आत्महत्या करने की चेष्टा नहीं करूंगा। उसके बाद तो आपके श्री चरणों में लौट आया हूं"

उपर्युक्त प्रसंग में प्रभुश्री ने कहा, "स्वयं चाहने पर भी कोई मर नहीं सकता। मैं एक साधु को जानता हूं जिन्होंने जीवन में सत्य लाभ न होने पर घनी अंधेरी रात में लक्ष्मण झूले से गंगा के प्रवाह में छलांग लगा ली थी। उस समय उन्हें बाह्य चेतना नहीं थी। चेतना लौटने पर उन्होंने देखा कि वे स्रोत के बीच स्थित एक पत्थर पर सोये हुए हैं।"

मृत व्यक्ति के साथी और अवस्था

मृत्यु के बाद सूक्ष्म शरीर का कार्य पूरा होने और शरीर से तडित-सूत्र अलग हो जाने पर आत्मा शून्य से नीचे उतरती है। उस समय उसके कर्म और ज्ञान के अनुसार दो-चार प्रेतात्मा साथी के रूप

में उससे मिलती हैं। उस समय वह धीरे-धीरे उनके साथ मिल कर अपने कर्मफल के अनुसार उसे जिस लोक में जाना होता है वहां चली जाती है। पापी लोग अंधों की तरह प्रेत लोक में घूमते रहते हैं।

मृत्यु के संबंध में अब तक जितनी चर्चाएं की गई है, वह स्थूल नेत्रों के विषय क्षेत्र से बाहर होने के कारण अनेक लोगों को उन पर विश्वास नहीं हो सकता। हो सकता है किसी-किसी के मन में आए कि यह कवि की कल्पना से प्रसूत अद्‌भुत कहानी है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। सच्चे साधकों के साधना नेत्र के समक्ष यह सूक्ष्म तत्त्व और घटनाएं किस प्रकार स्पष्ट रूप से उद्‌भाषित हो उठती हैं, उसके संबंध में प्रभुश्री ने कहा है—

"साधना शक्ति के बल पर जिन लोगों के अध्यात्म नेत्र खुल चुके हैं, वे प्रत्यक्ष देख सकते हैं कि मृत्यु के समय प्रत्येक जीव में कैसे-कैसे परिवर्तन होते रहते हैं। उनके समक्ष मृत्यु प्रत्यक्ष घटना है। अतः साधकों के समक्ष यह कवि की कल्पना प्रसूत कथा नहीं, अपितु अन्तर राज्य की नित्य घटना है। जन्म मृत्यु की चिन्ता से भयभीत होने का कोई कारण नही है। मृत्यु का स्वरूप और उसके नियमों को समझकर जीवन में उसकी साधना करने से वह मधुर और शांतिपूर्ण प्रतीत होगी।"

प्रेत की सुविधा

प्रेत शरीर का गठन होते ही दिवंगत आत्मा को केवल यह ज्ञान नहीं रहता है कि वह मर चुकी है। परन्तु इसके अतिरिक्त बाकी अनेक बातों में उसे विशेष सुविधा होती है। इस दौरान उसे किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट महसूस नहीं होता, बिजली गिरने अथवा तूफान से उत्पन्न भय नहीं रहता। वह पक्के घर की छत को वेध कर अनायास घर के भीतर प्रवेश कर सकती है।

वह लोहे की बंद सन्दूक के भीतर रखी चीजें देख सकती है और उसके भीतर अनायास प्रवेश कर सकती है। उसकी इन्द्रिय वृत्तियां हजारों गुना बढ़ जाती हैं, परन्तु स्थूल इन्द्रियों के अभाव में उसे उनकी पूरी उपलब्धि नहीं होती। इसलिए वह बड़ा कष्ट महसूस करता है। दूरी का बोध बिल्कुल

नहीं रहता है। अनेक प्रेतात्मा और महापुरुष मूसलाधार वर्षा के समय पार्थिव जगत के आत्मीय स्वजनों के बुलावे पर पक्के घर के बन्द कमरे में प्रवेश कर दर्शन देते हैं और बातचीत करते हैं। हम लोग यथा स्थान इसके अनेक दृष्टान्त देख सकेंगे।"

परलोक

"इहलोक और परलोक के बीच जो अन्तर है, उसे दूर कर सकने से कितना आनन्द और कितना सुख है, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। परलोक है। जिस प्रकार इहलोक में किसी आत्मीय स्वजन के विदेश में रहने पर दो-तीन वर्षों बाद उससे मिलने की सम्भावना रहती है, वहां पर भी हमारे आत्मीय स्वजनों से भेंट होगी—इसी विश्वास और चिंतन से धीरज मिलता है और आनन्द प्राप्त होता है। यदि जीवित रहते हुए मनुष्य इसी चिंतन का अभ्यस्त हो जायेगा तो किसी आत्मीयस्वजन की मृत्यु से वह शोकाभिभूत नहीं होगा।"

"मृत्यु और कुछ नहीं है, वह लम्बी अवधि के लिए परलोक प्रवास मात्र है। मृत्यु का तत्त्व और परलोक का रहस्य जान लेने पर तुम लोग और अनेक तत्त्वों का रहस्य उदघाटित कर सकोगे। जिस प्रकार जंजीर की कड़ियां एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं, ठीक वैसे ही परलोक तत्त्व के साथ शेष सभी तत्त्व जुड़े हुए हैं। जिनमें स्वाभाविक रूप से भगवान अथवा ईश्वर के प्रति विश्वास है, यदि उनकी बात जाने दी जाए, तो जो लोग अनुशीलन कर धर्म लाभ करना चाहते हैं, मैं उनसे कहता हूं कि पहले मृत्यु तत्त्व को लेकर धार्मिक चर्चा आरम्भ करो। मृत्यु का रहस्य जानने की चेष्टा करने पर देखोगे कि परलोक चिंतन के साथ भगवान, ईश्वर और ब्रह्म अपने आप आ पहुंचेंगे। एक मात्र परलोक चिंतन से सब कुछ प्राप्त हो सकेगा। इसीलिए परलोक के प्रति हिन्दुओं का विश्वास इतना दृढ़ है। यदि कोई भगवान को न माने तो उसे नास्तिक नहीं कहा जायेगा। हमारे छः दर्शनों में से कुछ दर्शन तो भगवान को बिल्कुल स्वीकार नहीं करते हैं, फिर भी उन्हें आस्तिक दर्शनों में स्थान मिला है।

जो यह कहता है "परलोक नहीं है" वही घोर नास्तिक है। उसे बार बार मृत्यु यंत्रणा भोगनी पड़ती है। मृत्यु तत्त्व का चिंतन अध्यात्म तत्त्व प्राप्त करने के इच्छुक लोगों का परम मित्र है। हमारे देश में ऐसी बात का प्रचलन है कि संन्यासी लोग श्मशान में रहते हैं। इसका कारण यह है कि वे रात दिन मत्यु चिंतन में लीन रहते हैं। श्मशान क्षेत्र में रहने से मृत्यु चिंतन सदैव जागृत रहता है और संसार की नश्वरता का सहज ज्ञान हो जाता है।"

भूत और प्रेत

स्थूल शरीर में रहते समय जिन लोगों के साथ आत्मिक भाव और घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है, यदि वे विदेह अवस्था में सूक्ष्म शरीर में हमारे पास आते हैं तो उन्हें हम लोग भूत कहकर अस्थिर चित्त हो जाते हैं। भूत के प्रति इस भय के सम्बन्ध में प्रभुश्री ने कहा, "हमारे देश में सर्वसाधारण में भूत के बारे में एक तरह की अद्भुत धारणा है। भूत का यह भय हमारे संस्कारों के साथ ऐसा जुड़ चुका है कि भूत शब्द को सुनते ही हमारे मन में डर समा जाता है। मरने के बाद सभी भूत बनते हैं। मर जाने के बाद हम भी भूत बनेंगे। भूत का अर्थ है अतीत या बीता हुआ। तब साधारणतया मनुष्य के मरने के बाद भूत बनने में भी समय लगता है। क्योंकि जो लोग निम्नस्तर के हैं, वे अनेक दिन तक स्तब्ध या मोह से ग्रस्त रहते हैं।"

"मैं मर चुका हूं, यह ज्ञान होने में कुछ लोगों को दो-तीन वर्ष लग जाते हैं। इसलिए मनुष्य के लिए भूत से डरने का कोई अर्थ नहीं है। यह चित्त की दुर्बलता या कुसंस्कार है। विशेषकर भूत (दिवंगत आत्मा) मनुष्य का कोई अनिष्ट नहीं कर सकता, क्योंकि भूत या प्रेतात्मा के लिए मनुष्य शरीर धारण करना भी सहज नहीं है। बहुत चेष्टा करने पर वे वाष्पीय शरीर धारण कर सकते हैं। वाष्प घनीभूत होने पर मनुष्य का आकार ले लेता है। परन्तु वह शरीर सामान्य कारणों से विलीन हो जाता है। हो सकता है, किसी कारणवश कोई दिवंगत आत्मा कोई जरूरी बात बताने के लिए अपने आत्मीयजनों के

समक्ष शरीर धारण करती है। इस साक्षात से प्रेतात्मा ओर आत्मीय स्वजन दोनों का मंगल होने की संभावना रहती है। परन्तु मनुष्य में ऐसा संस्कार रहता है कि वह प्रेतात्मा की बात सुनना तो दूर की बात, ऐसे शरीर देखकर वह भूत-भूत कर चिल्ला उठता है। इस चीत्कार से भूत चौंक उठता है और उसका शरीर तत्काल विलीन हो जाता है। इसलिए बातचीत नहीं हो पाती है। जिनके साथ वह इतने समय तक घर संसार करता आया था, विदेह अवस्था में उनसे ऐसी दुत्कार पाना दोनों के लिए भीषण दुख का कारण बन जाता है। यह अज्ञानता और कुसंस्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

इस जगत में जो किसी के साथ अपराध करता है, वह उससे प्रतिशोध लेने के लिए उस जगत में घात लगाये बैठा रहता है। उसे देखते ही उस के अपराध की बात का स्मरण दिला कर प्रतिशोध लेना चाहता है। प्रेत भी भय के मारे भागता रहता है। वह जहां भी जाता है देखता है कि शत्रु उसका पीछा कर रहा है। इससे वह भीषण यंत्रणा भोगता है। यही कर्म की भोगावस्था है। इस जगत में अपराध पर विचार करने के लिए किसी दूसरे के सामने प्रार्थी बनना पड़ता है, परन्तु उस जगत में जिसके साथ व्यक्ति ने अपराध किया है, वही उसका विचार करता है।

दिवंगत आत्मा को आकर्षित करना

जिस प्रकार दिवंगत आत्मा किसी विशेष प्रयोजन से दर्शन देने योग्य शरीर धारण कर आत्मीय स्वजनों के समक्ष प्रकट होती है, ठीक वैसे ही चेष्टा करने पर मनुष्य भी दिवंगत आत्मा को आकर्षित कर यहां ला सकता है। साधारणतया आत्मा मीडियम के भीतर आती है। मीडियम के अतिरिक्त किसी और साधन से दिवंगत आत्मा को आकर्षित करना योग सिद्ध महापुरुषों के अतिरिक्त साधारण मनुष्य के लिए सम्भव नहीं। प्लांचेट, हिप्नोटिज्म, तिपाया टेबल, भौतिक चक्र आदि विभिन्न उपायों से दिवंगत आत्मा को आकर्षित किया जाता है। उनमें प्रभुश्री भौतिक चक्र के विशेष पक्षपाती थे। किसी स्थान विशेष पर उन्होंने किसी शिष्य के परिवार के पांच सात लोगों के साथ मिलकर

भौतिक चक्र बनाकर दिवंगत आत्मा को आकर्षित कर उसके साथ वार्तालाप, चर्चा कर अपना सम्बन्ध बनाये रखने का उपदेश दिया है। प्रभुश्री को प्लाँचेट पर विश्वास नहीं था। मुक्त पुरुष, उन्नत आत्मा और जिन्होंने जन्म ले रखा है, उनकी आत्मा को आकर्षित करना साधारण लोगों के वश की बात नहीं है। इसलिए असम्भव है।

दिवंगत आत्मा को लाना

साधारण लोगों के लिए साध्यातीत होनें पर भी योगी महापुरुषों के लिए किसी उन्नत आत्मा को आकर्षित करना असंभव नहीं। यह बात हमने प्रभुश्री के जीवन में प्रत्यक्ष की है। जिन लोगों ने उनकी "ज्ञानी गुरु" पुस्तक पढ़ रखी है. वे जानते हैं कि "धर्म के संबंध में शिक्षित व्यक्तियों का अभिमत" निबंध लिखने के बाद प्रभुश्री को थोड़ी बेचैनी महसूस हुई। इसलिए उन्होंने स्वर्गीय बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय की आत्मा को योग के आकर्षण से बुलाकर उनसे अनेक विषयों पर चर्चा की थी।

प्रभुश्री ने इस योगनिद्रा की सहायता से अनेक दिवंगत आत्माओं को आकर्षित कर दीक्षा प्रदान कर उन्हें उन्नत कर दिया था। इस संबंध में प्रभुश्री के साथ जो प्रश्नोत्तर हुआ था, उसका विवरण नीचे दिया गया है।

शिष्य ने पूछा, "क्या किसी दिवंगत आत्मा को योग निद्रा के बल से बुला कर और दूसरे के सामने उसे प्रकट कर दीक्षा दी जा सकती है ?"

प्रभुश्री ने कहा, "हाँ, इस योगनिद्रा की सहायता से दिवंगत आत्मा को लाया जाता है और जिस प्रकार तुम मुझे देख सकते हो, उसे भी वैसे ही देखा जा सकता है। थोड़े दिन हुए मेरे एक शिष्य की पत्नी का देहान्त हुआ था। इस शिष्य का अपनी पत्नी से बेहद लगाव था। उसे विश्वास है कि पत्नी के देहान्त के बाद भी अब उसकी उन्नति होगी। इसलिए वह अपनी पत्नी की आत्मा को बुलाकर दीक्षा देने की जिद कर रहा है, क्योंकि उसके साथ उसकी पत्नी की दीक्षा नहीं हुई

थी। आत्मा जितने दिन तक प्रेत लोक में रहेगी, तब तक उसे ले आना बहुत ही सहज है। परन्तु ऊपर उठ जाने पर थोड़ा श्रम करना पड़ता है और उसमें समय लगता है। तब उन्नत आत्माओं की सही-सही दीक्षा नहीं हो पाती है, उन्हें उपदेशों आदि से उन्नत कर दिया जाता है।"

श्रद्धेय गोविन्द बाबू की दिवंगता पत्नी की आत्मा को लाना

प्रभुश्री एक समय बगुड़ा में रहते थे। उस समय गोविन्द बाबू की भतीजी के भारी अनुरोध करने पर उन्होंने उसकी दिवंगता चाची की (गोविन्द बाबू की पत्नी) आत्मा को लाकर दिखाया था। उस बच्ची ने देखा कि उसकी चाची पहले जैसे कपड़े पहने हुबहू वैसी ही दीख रही है। इस पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ था।

हरि प्रसाद जी की आत्मा को लाना

एक बार प्रभुश्री तीर्थ भ्रमण के समय हरिद्वार में ब्रह्मकुण्ड के पास स्थित जम्मू वालों की धर्मशाला में रहते थे। उस समय ढाका के डाक्टर श्री नृपेन्द्र चन्द्र राय के ऐकान्तिक अनुरोध से उन्होंने उनके स्वर्गीय ससुर हरिप्रसाद जी की आत्मा को बुलाकर उनसे भेंट करा दी थी। डाक्टर नृपेन्द्र चन्द्र राय अपने ससुर को आकाश में स्थित चन्द्र मण्डल के समान ज्योतिर्मय मण्डल के भीतर देख सके थे। बाद में उनके ससुर का सूक्ष्म शरीर छत को वेध कर उक्त धर्मशाला के बन्द कमरे में आया था और नृपेन्द्र भाई के साथ विभिन्न विषयों पर बातचीत कर पुनः चला गया था। पक्की छत सूक्ष्म शरीर के आने में कोई बाधा नहीं बनी थी।

प्रभुश्री के लिए परलोक सूक्ष्म लोक और इहलोक के बीच कोई दूरी नहीं रह गई थी। सूक्ष्म लोक पर उनकी असाधारण क्षमता का एक और दृष्टांत नीचे दिया गया है।

पुष्कर प्रेत

१३३७ बंगाब्द में प्रभुश्री कूच बिहार के कुछ भक्तों के विशेष अनुरोध पर एक शिष्य के घर गए हुए थे। वे वहां पर जिस शिष्य के

घर पर रह रहे थे, उसमें डेढ वर्ष के भीतर दो-चार लोग मर गए थे। यह देख कर सभी ने कहा कि उस घर में पुष्कर प्रेत लगा हुआ है। सभी ने उस शिष्य को परामर्श दिया कि वह उस घर को छोड़ कर चला जाए और शांति-स्तुतिपाठ से उसका उपचार करे। एक अन्य शिष्य ने प्रभुश्री को पूरी स्थिति से अवगत करा कर उनसे प्रश्न किया, "अनेक लोगों की ऐसी धारणा है कि इस घर में पुष्कर प्रेत लगा हुआ है। उस पुष्कर प्रेत के अत्याचार से इस घर में अनेक उत्पात हो रहे हैं। अब आपका यह शिष्य इस घर को छोड़ अन्यत्र चला जाए या उसके लिए शांति पाठ स्वस्तयन करे? उनकी ऐसी धारणा है कि पुष्कर प्रेत घर के पश्चिम कोने में स्थित आम के वृक्ष पर है। आप जैसा कहेंगे, वह वैसा ही करेगा।"

प्रभुश्री ने कहा, "अच्छा, मैं कल इसका उत्तर दूंगा।"

उससे अगले दिन जब प्रश्नकर्ता शिष्य ने प्रभुश्री को प्रणाम किया तो उन्होंने उससे कहा, "अरे, पुष्कर प्रेत सचमुच उस आम के वृक्ष पर है। उसकी दृष्टि भी इस घर पर है। मेरे आने से उसे असुविधा हुई है। इसलिए उसने मुझसे नाराज होकर कल सारी रात मेरे पास ऊधम मचाकर मुझे सोने नहीं दिया। मुझे भगा देने की चेष्टा में कोई कसर नहीं छोड़ी। इसलिए आज सारा दिन मुझे सिरदर्द हो रहा है।"

शिष्य ने पूछा—प्रभो, तब क्या ये लोग इस घर को छोड़ कर चले जाएं या शांति के लिए हवन करें।

प्रभुश्री ने कहा, "नहीं, उन्हें कुछ नहीं करना होगा। पुष्कर प्रेत में जो कुछ प्रभाव था, वह मेरे आने से क्षीण हो चुका है। वह अब शक्तिहीन हो चुका है। अब उसमें कुछ करने की सामर्थ्य नहीं है। इसलिए उन्हें बता दो कि वे इस संबंध में बिल्कुल चिंतित न हों।"

सूक्ष्म लोक पर चर्चा

प्रभुश्री की ऐसी बातें सुनकर शिष्य ने प्रश्न किया, "प्रभो, भूत, प्रेत, ब्रह्मदैत्य, यक्ष, रक्ष आदि सचमुच हैं अथवा यह सब मनुष्य की कल्पना मात्र है।"

प्रभुश्री ने कहा, "सब हैं, परन्तु यह बात पूर्णतया असंभव है कि दिवंगत आत्मा भूत बन कर किसी के शरीर में आएगी । तब एक श्रेणी के सूक्ष्म जीव हैं जो मनुष्य पर हिंसा करते हैं और उनका अहित भी कर सकते हैं। वे कई बार ऐसा करते भी हैं। उन्हें भूतयोनि कहा जाता है। अनेक समय वे टूटे-फूटे मकानों और जंगलों में रहते हैं। उनका विवाह आदि होता है और विवाह के समय बाजे-गाजे बजते हैं। उनके बच्चे भी होते हैं और मरते हैं। उनके बाल बच्चे, घर-संसार सब है। कई बार वे मनुष्य पर अत्याचार करते हैं। मनुष्य उनके लिए प्रेत-आत्माओं को दोष देता है, परन्तु यह ठीक नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य अपने समाज में रहता है, वे भी समाज बनाकर रहते हैं।

उनका अधिकार क्षेत्र पृथक है। वे सूक्ष्म और स्थूल, दोनों शरीर में राज करते हैं। मनुष्य स्थूल देह धारी है, परन्तु उनमें कोई सूक्ष्म देह धारी तो कोई कोई स्थूल और सूक्ष्म मिश्रित है। पूर्वकाल में वे समूचे देश में फैले हुए थे। वे मनुष्यों से सेवा और पूजा पाते थे। परन्तु वर्तमान युग में शिक्षा का जितना विस्तार हो रहा है, देश ज्ञान के आलोक से जितना उद्भासित हो रहा है, मनुष्य में उनके प्रति उतनी ही अश्रद्धा और अविश्वास आ रहा है। वे विवश होकर नगरों व जनस्थानों को छोड़कर जंगलों का आश्रय ले रहे हैं। कूच विहार आदि क्षेत्र में उनके अत्याचार अभी तक कम नहीं हुए। श्मशान चण्डी, यक्षिणी आदि उनके भिन्न भिन्न रूप हैं। ऐसी बात भी नहीं है कि वे मनुष्य का भला नहीं करते हैं, लेकिन मौका मिलने पर वे अहित करने में पीछे नहीं रहते हैं।भगवान के राज्य में कितने प्रकार के जीव हैं, इसकी कोई सीमा नहीं है। हम लोग स्थूल देहधारी हैं, इसलिए स्थूल के अतिरिक्त सूक्ष्म पर विश्वास नहीं कर पा रहे हैं।"

शिष्य ने पूछा, "तब तो क्या स्थूल जगत की तरह सूक्ष्म जगत के नाम से कुछ है ?"

प्रभुश्री ने उत्तर दिया, "हां, अवश्य है। जिस प्रकार इस जगत में तरह तरह के जीव हैं, उस जगत में भी हैं। वहां भी तरह तरह के

वैषम्य हैं। फिर उस जगत को एक पृथक जगत क्यों कह रहे हो ? वह जगत इस जगत के भीतर ही मौजूद है। स्थूल जगत सूक्ष्म पर आधारित और उससे संचालित है। प्रत्येक वस्तु के भीतर उसकी अधिष्ठात्री देवी या सूक्ष्म शक्ति का अस्तित्व विद्यमान है। केवल स्थूल की बात नहीं हैं, ये सब जो रोग होते हैं, प्रत्येक रोग की एक एक अधिष्ठात्री देवी हैं। एक बार मैंने हैजे की देवी को देखा है। मैंने देखा है कि घूंघट डाले एक स्त्री बड़ी तेजी से चली जा रही हैं। उनके सामने लाल रंग का एक गोला छुटता जा रहा है। यह नारी हैजे की अधिष्ठात्री देवी हैं और यह लाल गोला उनकी शक्ति है।

शिष्य ने पूछा, "रोग की अधिष्ठात्री देवियां क्या करती हैं, शरीर में किस प्रकार रोग पैदा होता है? "प्रभुश्री ने कहा, "रोगों की अधिष्ठात्री देवियां आकर देही की समूची शारीरिक प्रक्रिया को उलट पुलट कर देती हैं। इसलिए रोगी के शरीर में अस्वाभाविक लक्षण (जिसे रोग कहते हैं) प्रकट होते हैं।"

शिष्य ने पूछा, "तब रोग कैसे ठीक होता है ?"

प्रभुश्री ने कहा, "औषधों के प्रयोग से वह असंयत प्रणाली (Ab-normal System) संयत स्थिति (Normal Condition) में लौट आती है। परन्तु बे जिसे ले जाना चाहती हैं, उसे किसी भी उपाय से नहीं बचाया जा सकता। सैकड़ों औषधियों से भी कोई प्रभाव नहीं होता है। रोग की अधिष्ठात्री देवियाँ भगवान की संहारिणी शक्ति का कार्य पूरा करती हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी स्थान पर महामारी होने से वह स्थान एकदम उजड़ जाता है। इसे रोकना किसी के हाथ में नहीं है। यह भी निश्चित नहीं है कि वे सब रोग कैसे और कहां से आक्रमण करते हैं। यह भगवान की अदभुत लीला का रहस्य है। वे किस दिशा से क्या करते हैं, मनुष्य में उसे समझने की सामर्थ्य नहीं है।

शिष्य ने पूछा, "मैं यहां पर एक बात पूछूं ? पहले से ही मैं सुनता आया हूं कि प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कर्मफल से मृत्यु का सामना

करता है। टाईटेनिक जहाज में इतने लोग थे। क्या एक ही दिन में उनकी मृत्यु का समय निश्चित हुआ था ? क्या उनका जीवन-सूत्र एक ही स्थान पर गूंथा हुआ था ?"

प्रभुश्री ने कहा, "हां, केवल टाईटेनिक जहाज के इने गिने लोग ही क्यों, इस विश्व ब्रह्माण्ड का अनन्त जीवसमूह एक ही सूत्र में गूंथा हुआ है। जिस दिन, जिस क्षण यह संयोग सूत्र टूट जाएगा, उसी क्षण यह विश्व ब्रह्माण्ड टुकड़े टुकड़े होकर गिर जाएगा। उसका अस्तित्व नहीं रहेगा। जिस दिन तुम लोगों की अध्यात्म दृष्टि खुल जाएगी, उस दिन तुम लोग ये सब रहस्य देख सकोगे। वह दिन बहुत आनन्द का दिन होगा।"

शिष्य ने पूछा, "प्रभो, क्या यह सब देखा जा सकता है ?"

प्रभुश्री ने कहा, "हां अवश्य देखा जाता है। अध्यात्म दृष्टि के खुल जाने से यह सामान्य सी चीज ही क्यों, इस भगवत राज्य के अनेक अद्भुत रहस्य उस दृष्टि के सामने उदघाटित हो जाते हैं। जो इन सब रहस्यों के मालिक हैं, उन्हें जान लेने से तो ओर कुछ जानना बाकी नहीं रहता।"

परलोक पर प्रभुश्री का प्रभाव

दिवंगत आत्मा को देखने के लिए प्रभुश्री को किसी प्रक्रिया का अवलम्बन नहीं लेना पड़ता था। क्योंकि वे इस परलोक तत्त्व के इतने अभ्यस्त हो गए थे कि वे इन स्थूल आंखों से सब कुछ देख सकते थे। प्रभुश्री भूतों से साक्षात करते थे और बातचीत भी करते थे। भूत भी उनसे साक्षात कर उन्हें अपनी व्यथा और वेदना से अवगत कराते थे। उनके पास प्रत्येक आत्मा की जानकारी रहती थी। अनेक समय प्रभुश्री कहा करते थे—

"जिस प्रकार तुम लोग मेरे पास खड़े होकर मुझसे बातचीत कर रहे हो, अनेक जटिल प्रश्नों का समाधान कर लेते हो, ठीक वैसे ही तुम्हारे दिवंगत गुरु भाइयों में से अनेक भाई आकर मुझसे बातचीत

कर और उपदेश सुनकर अपनी-अपनी समस्या का समाधान कर लेते हैं। अब भी तुम लोगों के दिवंगत गुरुभाइयों की आत्माएं मेरे सामने खड़ी हैं। एक बार चट्टगांव का स्मृति भूषण सूक्ष्म शरीर में मेरे सामने बैठ कर उपदेश सुन रहा था। उसकी पत्नी सीता देवी वह देख कर फूट-फूट कर रो पड़ी।"

केवल मौखिक रूप से ही नहीं, प्रभुश्री ने लिखित रूप में भी दिवंगत आत्माओं के अस्तित्व के बारे में जानकारी दी है। वे किस प्रकार साक्षात् करके उनसे बात करते हैं, वह सब वे स्वर्णाक्षरों में लिख गए हैं। उन घटनाओं में से कुछ घटनाएं पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दी गई हैं। इससे दिवंगत आत्माओं पर प्रभुश्री की शक्ति किस सीमा तक थी, यह बात समझी जा सकती है।

(१) "गोपाल स्वर्ग का परिजात और श्राप भ्रष्ट देव शिशु है। तुम्हारे घर पर आकर उसका प्रारब्ध क्षय होते ही वह अपने धाम में चला गया है। उसके लिए शोक करना व्यर्थ है। वरन् तुम लोगों के शोक के कारण वह अपने धाम में लौट कर भी शांति नहीं पा रहा है। अतः तुम लोग व्यर्थ में शोक संतप्त होकर स्वयं को दुःख और गोपाल को आशांति मत दो।"

(२) "तुम्हारी संतान परलोक में शांति से है। उसके बारे में जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। अब की बार उसका अच्छा जन्म होगा।"

(३) "तुम्हारा दिवंगत पुत्र एक साधु है। कुछ अनिवार्य कर्मवश ही तो उसने तुम्हारे जैसे भक्त ब्राह्मण के घर में जन्म लिया था। उसका कर्मक्षय हो जाने के बाद उसके गुरु आकर उसे साथ ले गए हैं। उसका पुनर्जन्म नहीं होगा। तुमने अपने कर्मफल से पुत्र शोक प्राप्त किया है, अन्यथा तुम्हारे साथ उसका कोई संयोग सूत्र नहीं था।"

(४) "तुम्हारी पत्नी पुण्यवती, सत्त्व शुद्ध नारी है। एक मात्र पुत्र की कामना के अतिरिक्त उसका कोई दूसरा आवरण नहीं था। अतः

मृत्यु के बाद उसका पारलौकिक भोग बिल्कुल नहीं हुआ है। उसने पुत्र पाने की शुद्ध वासना को लेकर एक ब्राह्मण के घर जन्म लिया है। अतः सूक्ष्म रूप में फिर उसका दर्शन पाना संभव नहीं है।"

(५) "शांति के भीतर प्रेत शरीर जागा था। अशांति जन्य भोग भी आरम्भ हुआ था। परन्तु मेरी स्मृति जागृत कर देने पर वह पितृ लोक में चली गई है। उसकी आयु कम होने के कारण उसका अच्छा या बुरा, कोई कर्मफल संचित नहीं हुआ था। इसलिए उसका कोई विशेष पारलौकिक भोग नहीं हुआ है। इसलिए बहुत ही कम समय में उसका पुनर्जन्म होगा। जिस प्रकार देव संस्कार से उसका जन्म हो सके, मैं उसके लिए चेष्टा करूंगा। इसलिए उसके लिए तुम लोगों को कुछ करना नहीं होगा। उसका जन्म होने तक मैं ध्यान रखूंगा।"

मृत्यु के समय दर्शन देने की प्रतिश्रुति

प्रभुश्री ने अपने शिष्य-भक्तों के मन से मृत्यु का भय दूर करने के लिए उन्हें मृत्यु के लिए तैयार रहने हेतु सावधान कर दिया है और मृत्यु के समय दर्शन देने की प्रतिश्रुति देकर मौखिक और लिखित रूप से अजस्र उपदेश-वाणी प्रदान की है। मृत्यु के समय किसी भी भक्त का चित्त चंचल नहीं हुआ। प्रभुश्री ने मृत्यु के समय और मृत्यु से पहले प्रत्येक को दर्शन देकर अपनी प्रतिश्रुति की मर्यादा रखी है। इसके अनेकानेक प्रमाण हैं और अब भी मिल रहे हैं। उनमें से कुछ घटनाओं का विवरण प्रभुश्री की स्वहस्तलिखित चिट्ठियों में से उद्धृत कर नीचे दी गई हैं—

(१) "यदि तुमसे भेंट होने से पहले रोग तुम्हें शरीर त्यागने पर बाध्य करता है, तो मैं कोशिश करके तुम्हारी आत्मा से परिचित होऊंगा और तुम्हारी अज्ञानता दूर कर दूंगा तथा मृत्यु के दो-चार दिन पहले ही सूक्ष्म शरीर में तुम्हारे पास उपस्थित रहूंगा।"

(२) 'मृत्यु से भय न करने से ही तुम्हें मृत्युंजय कहा जाएगा। मुझे पता है कि तुम्हें रोग की तीव्र यंत्रणा भोगनी होगी। इसलिए घर में ही रहते हुए जाने के लिए तैयार रहो। अचानक न जाकर कुछ दिन

पहले से ही तैयार रहना चाहिए। तब तुम मृत्यु का पूर्ण आनन्द ले सकोगे। मैं तुम्हें यथा समय उसकी जानकारी दूंगा और स्वयं भी वहां पर उपस्थित होऊंगा। इससे रोग की तीव्रता कम होगी और तुम में सहन करने की शक्ति आएगी। मैं यहां से उसकी व्यवस्था करूंगा। यह बात निश्चित है कि मैं तुम्हारे कर्मफल में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करूंगा, क्योंकि इसी में भलाई है कि यहां के कर्म का भोग यहीं हो जाए। तुम्हें विश्वास हो या न हो, मैं यथा समय अपना कर्त्तव्य पूरा करूंगा।"

यदि कोई प्रभुश्री के पास मृत्यु के संबंध में पत्र लिखे, तो आवश्यक समझने पर वे मृत्यु का समय स्थगित कर देते थे। इस संदर्भ में प्रभुश्री ने स्वामी स्वरूपानन्द के बारे में जो पत्र लिखा था, उसका उद्धरण नीचे दिया गया है—

"श्रीमान स्वरूपानन्द के अभाव में हम लोगों की जो क्षति होगी, वह पूरी होने वाली नहीं है। इसलिए उसे संसार में और कुछ दिन रखने के लिए मैं बार बार तरह तरह की कोशिशें करता आ रहा हूं। उसकी आत्मा तो वश में आ रही है, पर उसके शरीर को कर्म के उपयोगी बनाने का कोई उपाय नहीं मिल रहा हैं। शरीर का प्रत्येक परमाणु रोग के बीजाणुओं से जराजीर्ण हो चुका है। मैंने पौष मास की तृतीया के दिन होने वाली मृत्यु को पूर्णिमा तक स्थगित कर दिया था। मुझे पता चला कि पूर्णिमा के दिन भी उसकी मृत्यु नहीं हुई है। उस दिन से मैंने संकल्प कर महामृत्यंजय मंत्र का जप आरम्भ कर दिया है। यदि इससे कोई अच्छा फल नहीं मिलेगा तो उसे इस शरीर में और रोके नहीं रखूंगा।"

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होगा कि मृत्यु पर प्रभुश्री का किस सीमा तक अधिकार था। जिस प्रकार प्रभुश्री मृत्यु के समय अनेक शिष्य भक्तों को दर्शन देते थे, उसी प्रकार अनेक स्थलों पर किसी की मृत्यु आसन्न जानकर उससे पहले ही उस शिष्य या भक्त को सावधान करा देते थे। उसका एक दृष्टांत नीचे दिया गया है।

मृत्यु का पूर्वाभास

१३४२ बंगाब्द के श्रावण मास में प्रभुश्री दीघलकन्दी के सुरेन भाई के घर गए हुए थे। उनके साठ वर्ष के पुत्र कृष्ण के संबन्ध प्रभुश्री ने पूर्वाभास दिया था। उससे पता लगा कि कृष्ण इस संसार का बालक नहीं है।

प्रभुश्री ने कहा, "इससे पहले तो मैंने कभी कृष्ण को इतना तल्लीन होकर स्त्रोत्र पाठ करते नहीं देखा था। अब की बार देखा कि वह स्त्रोत्र पाठ कर रहा है और उसकी आंखों से निरन्तर आंसू बह रहे हैं। इतनी कम आयु का बच्चा और उसके भाव फिर इतने सुन्दर! अपने भीतर कोई भाव न रहने से बिना कारण क्या मनुष्य की आंखों में आंसू आते हैं। खेद की बात है कि अच्छे बच्चे प्रायः इस संसार में नहीं रहते हैं, कृष्ण भी इस संसार में और नहीं रहेगा। ऐसा कहते कहते प्रभुश्री के भाव में आश्चर्यजनक परिवर्तन दिखाई दिये। उनके मुँह पर एक तरह की अव्यक्त पीड़ा की झलक दिखाई दी। उन्होंने धीमे स्वर से कहा, "कृष्ण और इस संसार में नहीं रहेगा।"

उससे अगले वर्ष १३४३ बंगाब्द में कृष्ण की मृत्यु हो गई।

प्रभुश्री अन्तर्दृष्टि सम्पन्न थे। किस की किस समय मृत्यु होने से उसके स्वयं का और उसके आत्मीय स्वजनों का मंगल होगा, वह वे अच्छी तरह समझ पाते थे। इसलिए यदि कोई अपनी पीड़ा से परेशान होकर शीघ्र मृत्यु की कामना को लेकर पत्र लिखता था, तो प्रभुश्री उसका अनुमोदन नहीं करते थे और यदि कोई आसन्न मृत्यु से बचने की प्रार्थना करता था, तो वे उसे पूरा नहीं करते थे।

मृत्यु की कामना

प्रभुश्री स्वाभाविक मृत्यु के प्रबल समर्थक थे। परन्तु आत्महत्या करने या आत्महत्या करने का संकल्प करने, यहां तक कि मन ही मन मृत्यु की कामना करने को भी वे सहन नहीं करते थे। वे सोचते थे कि मृत्यु की कामना आत्महत्या का दूसरा नाम है। यदि कोई मृत्यु

की कामना को लेकर उन्हें पत्र लिखता था या उन्हें इस बारे में तनिक भी पता चलता था कि कोई मृत्यु की कामना कर रहा है, तो वे स्वतः प्रवृत्त होकर उसमें बाधा देते थे तथा अमृतवाणी सुनाकर उसे सत्य पथ पर खींच लाते थे। उदाहरण के तौर पर एक शिष्य का विवरण नीचे दिया गया है। उस शिष्य ने साधना भजन में असफल होकर मृत्यु को श्रेय समझ कर अपने एक सतीर्थ को इस बारे में पत्र से अवगत कराया। प्रभुश्री को जब इसका पता चला तो उन्होंने स्वतः प्रवृत्त होकर उसे पत्र में लिखा। उन्होंने उसे जो कुछ लिखा, वह इस प्रकार है।

"मैंने तुम्हारे सभी पत्र पढ़े हैं। तुमने विभिन्न कारणों से, विशेषकर शारीरिक अस्वस्थता के कारण और क्रिया आदि करने में निराश होकर मृत्यु को श्रेय समझा है। वत्स, मृत्यु की प्रार्थना करना आत्महत्या का दूसरा नाम है। जिनकी इच्छा से तुम इस संसार में आये हुए हो, मृत्यु भी उन्हीं की इच्छा से होगी। योग, जप और तप के बिना भी उनकी इच्छा से तुम पल भर में ही धन्य हो सकोगे। इसलिए उन पर निर्भर करो। यदि कुछ नहीं कर पा रहे तो पड़े पड़े उनका नाम लो। उनकी कृपा से इस जीवन में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना भी असंभव नहीं होगा। अतः निराश न होकर जो कुछ हो पाता है, करो, नाम लेना मत भूलो। आशा करता हूं, उससे तुम्हारी वासना पूरी होगी।"

वियोग की व्यथा में सान्त्वना

सांसारिक लोगों के लिए आत्मीयस्वजनों के वियोग में शोक और मोह से अभिभूत होना स्वाभाविक है। प्रभुश्री को जैसे ही इसका पता चलता था, वे तत्काल उनके पास समयोपयोगी सांत्वनापूर्ण वाणी से उनका शोक दूर कर देते थे। केवल उनके शिष्य भक्तों के प्राणों में ही नहीं, अपितु उनकी अमृतवाणी सभी के प्राणों में शांति देगी, अज्ञान रूपी मोह का अंधकार दूर कर उनके प्राणों में ज्ञान की ज्योति जलायेगी। अतिशयोक्ति के डर से यहां पर उसका उल्लेख नहीं किया गया है।

प्रभुश्री की कृपा

किसी के आत्मीय स्वजन की मृत्यु होने पर जिस प्रकार प्रभुश्री ने लिखित और मौखिक रूप से सांत्वनापूर्ण वाणी प्रदान की है, उसी प्रकार वे बिना लिखे और मुंह से कहे बिना भी अपनी गुरुशक्ति के बल से सांत्वना प्रदान करते हैं। वह जितना विस्मयकारी है उतना ही शांतिप्रद है। एक बहुत बड़े परिवार में लगभग ४५ सदस्य थे। सभी सदगुरु के चरणों में आश्रय लेकर संसार के अवश्यंभावी नित्य प्रतिदिन आने वाले घात-प्रतिघात और वियोग वेदना को किस प्रकार अविचलित चित्त से सहन करते हुए सब अवस्थाओं में आनन्द रहे, मृत्यु उनके लिए भय का कारण न होकर किस प्रकार आनन्ददायिनी हुई, उसका सरल विवरण नीचे दिया गया है।

अनेक लोगों में ऐसी धारणा है कि सदगुरु का आश्रय लेने पर बड़े मजे में हंसते-खेलते संसार के सुख का भोग करते हुए जीवन बिताया जाता है। रोग, शोक, विपद, आपद सदगुरु के चरणों में आश्रय लेने वाले व्यक्ति को छू नहीं सकते। परन्तु यह उनकी भ्रमपूर्ण धारणा है। स्वयं श्रीकृष्ण को सखा रूप में पाकर भी पाण्डवों की व्यावहारिक दुर्गति दूर नहीं हुई थी। वरन् वे विविध लांछनाओं के शिकार बने थे। वे लांछित हुए सही, तथापि उन्होंने सखा और गुरु रूपी श्रीकृष्ण के मुंह को देख कर हंसते हुए वह सब सहन किया और हृदय में आनन्द प्राप्त किया। यह भाव प्रभुश्री की कृपा से प्रकट हुआ है। दु:ख और कष्ट पाकर भी हंसते-हंसते उस सबको सहन करने की शक्ति देकर प्रभुश्री ने अपने आश्रितों को परिचालित किया है। इसके अनेक दृष्टांत हैं।

पावना जिले में दिघलकन्दी गांव का बन्दोपाध्याय परिवार अपनी प्रतिष्ठा और वंशमर्यादा के लिए उस क्षेत्र में भलीभाँति विख्यात था। यामिनीकान्त बन्दोपाध्याय इस परिवार के कर्ताधर्ता थे। इस परिवार के सभी सदस्य १३४३ बंगाब्द में प्रभुश्री से दीक्षित हुए थे। १३३९ बंगाब्द में प्रभुश्री जिस समय इस परिवार में पधारे थे उस समय इस

परिवार की बारह वर्षीय कन्या ब्रजबाला ने टाइफाइड से पीड़ित होकर बिस्तर पकड़ लिया था। एक दिन शाम को आरती का आयोजन चल रहा था, तो खबर मिली कि रोगी प्रभुश्री का दर्शन करना चाहती है। यह बात सुनते ही प्रभुश्री रोगी को देखने के लिए उठ कर चले आए। पांच मिनट तक स्थिर दृष्टि से देखनें के बाद प्रभुश्री अपने आसन पर लौट आए और उन्होंने कहा—

"घर में इस प्रकार गंभीर रूप से पीड़ित रोगी के होते हुए तुम लोग मुझे यहां पर क्यों लाए? इससे पहले मुझे इसकी जानकारी देनी चाहिए थी।" यह सुनकर सभी निरुत्तर हो गए। प्रभुश्री ने पुन: कहा, "अच्छा, बताओ तो सही, आज या कल इस रोगी को कुछ हो जाता है, तो तुम लोग मुझे लेकर ऐसा ही आनन्द मना सकोगे?" उन्होंने तत्काल कहा, "हां प्रभो, बिल्कुल मना सकेंगे।" प्रभुश्री ने कहा, "तुम लोगों से होने पर भी मुझसे नहीं होगा।" कुछ देर तक चुप रहने के बाद उन्होंने कहा, "अब की बार तुम्हारे प्रभुश्री के यहां आने का गूढ़ रहस्य है—बाद में धीरे-धीरे सब कुछ देख सकोगे।"

उसके अगले दिन सुबह से रोगी की अवस्था खराब होती गई। दिन के दो बजे प्रभुश्री, प्रभुश्री कहते हुए रोगी स्वर्ग सिधार गई। सांसारिक लोगों के लिए यह असहनीय था। उनमें से किसी की भी समझ में नहीं आया कि उन्होंने किस प्रकार इस सन्तान वियोग को सहन करने की शक्ति पाई। यदि इतने बड़े इस परिवार में जोर से रोने-धोने की आवाज निकलती तो, स्थिति कैसी भयानक हो जाती, यह सोचने की बात है। परन्तु आश्चर्य की बात है कि इस मृतक के माता-पिता, दादा-दादी, आत्मीयस्वजन कोई भी नहीं रोया। सभी के मन में आनन्द था। इधर प्रभुश्री ब्रजबाला की मृत्यु संबंधी बातें और परिवार के सदस्यों का धीरज देख कर स्तंभित रह गए और आनन्दातिरेक के कारण उनकी आंखों से आँसू बह निकले।

प्रभुश्री द्वारा वर प्रदान

शाम के समय प्रभुश्री ने अपने आसन पर बैठ कर गंभीर स्वर में कहा, "आज ब्रजबाला की मृत्यु संबंधी पूरी घटना जान कर मुझे

आश्चर्य हुआ है। तुम लोगों ने ब्रजबाला को मेरे हाथों सौंप कर अपने प्रभुश्री को हमेशा के लिए अपनी भक्ति की डोर से बांध दिया है। आज से ये प्रभुश्री सूक्ष्म रूप में तुम्हारे घर बंधे रहे। जब-जब तुम लोग उन्हें पुकारोगे, तब-तब वे तुम्हें दर्शन देंगे और शांति और तृप्ति की पावन धारा से तुम लोगों को सरावोर कर देंगे। तुम लोगों ने आज जिस प्रकार हंसते-हंसते वियोग की वेदना सहन की है, मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम लोग इससे भी बड़ी विपदाओं को धीरज के साथ सहन करने के लिए तैयार रहो।"

चार-पांच दिन बाद प्रभुश्री ने भुवन भाई से कहा, "देखो, तुम्हारे पिताजी अस्वस्थ हैं। वे अब की बार देहत्याग करेंगे। तुम्हारे पिताजी की आयु नहीं है। वे तेल रहित दिए की तरह जैसे-तैसे जल रहे हैं। उनकी मृत्यु चार वर्ष पहले होनी थी। परन्तु कुछ विशेष कारणों से वे अब तक जीवित हैं। अब की बार उनकी अंतिम यात्रा होगी।"

यह बात सुनकर परिवार के सभी लोगों को विस्मय हुआ। क्योंकि तब तक वृद्ध का शरीर बिल्कुल स्वस्थ था। परन्तु आश्चर्य की बात है कि उसी दिन वृद्ध दोपहर का खाना नहीं खा सके। सभी समझ गये कि वे और नहीं जीयेंगे। प्रभुश्री से जब प्रार्थना की गई कि मृत्यु होने तक वहां पर ठहरें, तो उन्होंने कहा, "मेरे रहने से उनकी मृत्यु नहीं हो सकेगी। उनके भीतर विपरीत शक्ति की क्रिया चलेगी। अतः अब मुझे यहां पर नहीं रुकना चाहिए।"

उसके बाद प्रभुश्री वहां से चले आए। उन्होंने भुवन भाई के हाथ सन्देशा भिजवा दिया, "मैं यथा समय दर्शन देकर तुम्हारे पिताजी का गंतव्य पथ बता दुँगा। वृद्ध यह सुनकर बच्चों की तरह रो उठे और "जयगुरु" नाम का उच्चारण करने लगे।

मृत्यु के दो दिन पहले वृद्ध ब्रजधाम की बंसी और मृदंग की आवाज सुनने लगे। मृत्यु के एक दिन पहले रात के दो बजे अचानक उन्होंने तालियां बजाकर प्रभुश्री की वन्दना करते हुए वहां पर उपस्थित सभी

लोगों को दिखा कर कहा, "ये देखो, प्रभुश्री आए हुए हैं, कैसा आनन्द है !" उस समय वहां पर उपस्थित सब लोग उस घर में सद्य प्रस्फुटित हजारों गुलाब की सुगन्ध का अनुभव करने लगे। उसके बाद २८ श्रावण को वृद्ध ने प्रभुश्री का नाम लेते-लेते नश्वर शरीर को त्याग दिया।

वृद्ध के इस महाप्रयाण में घर में रोने के स्थान पर "जयगुरु" महानाम की उच्चध्वनि गूंज उठी। दुख के बदले सब के मुख पर आनन्द की लहर दौड़ गई। भुवन भाई ने इससे पहले सोचा था कि वे अपने पिताजी की मृत्यु का वियोग सहन नहीं कर पायेंगे। परन्तु सही वक्त पर वह सब कुछ सहन कर पाये। उनका शोक, संताप और निरानन्द कहीं गायब हो गया।

कुछ दिन बाद उस परिवार के ढ़ाई वर्ष के एक बच्चे की मृत्यु हो गई, परन्तु आश्चर्य की बात है कि दूसरों की बात तो और, उसकी मां के मुंह पर भी दुख का लेश मात्र नहीं दिखाई दिया। सभी एक स्वर से "जयगुरु" कह उठे।

सभी मृत शिशु को लेकर "जयगुरु" का उच्चारण कर रहे थे। सामने दो बच्चों को खेलते देखकर मृतक की मां ठठाकर हंस उठी। यह देखकर उसकी सास ने कहा, "बहू, यहीं पर तेरा बच्चा मरा पड़ा है और तू उसके पास बैठकर इस प्रकार कैसे हंस रही है ?" बहू ने उत्तर दिया, "मां, मैं क्या करूं, किसी भी प्रकार से मेरे मन में दुख नहीं आ रहा है। प्रभुश्री ने हमारे अन्तर में आनन्द की अजस्र धाराएं बहा दी हैं।"

उसके लगभग बारह दिन बाद उनके परिवार का ग्यारह वर्ष की आयु का एक और बच्चा शंभुनाथ ज्वर से आक्रांत होकर "जयगुरु" नाम का उच्चारण करते हुए हमेशा के लिए इस संसार से चला गया।

माता-पिता के सामने संतानों का इस तरह मरना कितना दुखदायक है, उसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। परन्तु वहां बिल्कुल उल्टा हुआ। माता-पिता की आँखों से आंसू की एक बूंद भी नहीं निकली।

प्रभुश्री को पत्र के जरिए उपर्युक्त घटना की पूरी जानकारी देने पर उन्होंने भाव से स्तंभित होकर जो उत्तर दिया था, वह नीचे दिया गया है।

"तुम्हारा पत्र पाकर शंभुनाथ की कैलास यात्रा के बारे में अवगत हुआ। शंभु के लिए मुझे कोई दुःख नहीं है। मृत्यु के भीतर किस प्रकार अमृतत्व प्राप्त किया जाता है। वह मैं जानता हूं। शंभु भी मेरी नजरों से दूर नहीं है। वह कौन है, यहां क्यों आया था और बचपन में ही जीवन लीला समाप्त कर क्यों चला गया, उसकी पूरी जानकारी मुझे है। मेरी बड़ी माँ को वता देना, व्रजबाला और शंभुनाथ मेरे पास हैं।"

प्रभुश्री के प्रसंग में ऐसे अनेकानेक दृष्टांत दिए जा सकते हैं। उनकी विस्तृत जीवनी के लेखक वह सब लिखेंगे।

कर्मफलवाद

इस संबंध में प्रभुश्री के श्रीमुख से निःसृतवाणी इस प्रकार है - "कर्म त्रिविध है-क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। कर्म कर रहे हो और इस समय उसका फल भोग रहे हो—उस कर्म को क्रियमाण कर्म कहते हैं। कर्म करने के बाद उसका फल भोग रहे हो, परन्तु उससे तृप्ति नहीं हुई है—यदि उस अवस्था में मृत्यु हो जाती है, तो स्वर्ग और नरक में उसका फल भोगना होता है। क्रियमाण कर्म के द्वारा भोग्य वस्तुएं जुटा कर उनका भोग कर रहे हो, साथ ही नए-नए कर्म करते जा रहे हो। यदि उस कर्म का फल पाने से पहले मृत्यु हो जाती है, तो उस कर्म फल को संचित कर्म कहते हैं। जीव स्वर्ग अथवा नरक में इस अतृप्त वासना को पूरा करने के बाद इस संचित कर्म को लेकर पुनः जन्म लेता है। इस संचित कर्म के भोग को प्रारब्ध कहा जाता है। जिस कर्म का भोग आरम्भ हो चुका है, उस कर्म का नाम प्रारब्ध है, साधना के द्वारा संचित और क्रियमाण कर्म नष्ट होते हैं, परन्तु प्रारब्ध किसी भी प्रकार से नष्ट नहीं होता। अतः हिन्दू धर्म के अनुसार जीवात्मा

वासना और कामना से मुक्त होने तक पृथ्वी पर आती जाती रहती है। जीवात्मा स्थूल शरीर का त्याग कर लिंग शरीर से युक्त होती है और लिंग शरीर का आश्रय लेकर स्थूल शरीर का त्याग करती है। लिंग शरीर इस लोक से अंतरिक्ष लोक में जाता है। उस लोक को प्रेतलोक कहते हैं। वहां पर पाप का फल भोग होता है। उसके बाद पुण्य कर्मफल का भोग होने के बाद जो संस्कार (संचित कर्म) रहता है, उसे लेकर वह पृथ्वी पर पुनः जन्म लेता है। यह एक विचित्र लीला, अद्‌भुत व्यापार है। संस्कार के सूत्र से बंधी होकर उस सब वासनाओं से बंधी जीवात्मा जिस प्रकार से माँ के गर्भ में प्रवेश करती है, वह सब योगियों की अंतर्दृष्टि में दिखाई देती है ! बिना साधना के जड़ नेत्रों से वह सब नहीं देखा जा सकता।"

"भोग के अन्त में जीव का जन्म लेने का समय होते ही वह महर्लोक में चला जाता है। वहां से ओस की बूंदों के साथ पृथ्वी पर गिरता है और किसी वृक्ष या औषध के साथ मिल जाता है। देश काल और पात्र के भेद के अनुसार ऐसी व्यवस्था के साथ वह धरती पर गिरता है कि जिस व्यक्ति के औरस से वह जन्म लेगा, वही उसे खाता है। उस व्यक्ति के खाद्य के साथ वह पेट में चला जाता है और प्राकृतिक नियम से क्रमशः रस, रक्त, मांस और मज्जा तथा अन्त में शुक्र के बीजाणु के रूप में रहता है। उसके बाद वह यथा समय माँ के शरीर में वीर्य के रूप में रक्त के साथ मिल जाता है। वहां पर प्राकृतिक नियम से और जीवात्मा के गुण और कर्म के अनुसार शरोर का गठन होता है। इस शरीर का गठन मनुष्य की अपनी इच्छा के अधीन है। मनुष्य के अपने कर्म और गुण के अनुसार देश काल और पात्र के भेद से उसके शरीर का गठन होता है। जिसका शरीर जिस कर्म के लिए बना है, वह निश्चय ही वह कर्म करेगा। यदि उसकी नियति में रोग और शोक का भोग है, तो वह भी भोग करना होगा। समझ न पाने के कारण मनुष्य प्रारब्ध कर्म को नष्ट करने के लिए देवी-देवताओं की मानसिक पूजा करता है। परन्तु इस मानसिक पूजा से उसका और अधिक अनिष्ट

होता हे । इससे प्रारब्ध का खंडन तो नहीं होता, बल्कि नए-नए कर्म संचित होकर और अधिक बंधन में बंध जाना पड़ता है ।''

गुरु शक्ति और जन्म निरोध

"महर्लोक तक अहंभाव का ज्ञान रहता है। जो लोग मर जाते हैं, उनकी इस लोक तक पहले की स्मृति जागृत रहती है। उसके बाद उसका और स्मरण नहीं रहता। मेरा कोई भी शिष्य महर्लोक से ऊपर नहीं गया है।"

इस बात को लेकर एक शिष्य ने प्रभुश्री से प्रश्न करने पर जो उत्तर पाया था, वह निम्न प्रकार है। शिष्य ने पूछा, "आपका शिष्य होकर महर्लोक के ऊपर न जाने के क्या कारण हैं। आपकी कृपा प्राप्त होकर भी वे महर्लोक से ऊपर जाने के अधिकारी कैसे नहीं बन सकें ?"

प्रभुश्री ने कहा. "उन्हें अधिकार है, पनन्तु मैं स्थूल जगत में हूं, इस लिए वे मुझे छोड़ कर ऊपर जाना नहीं चाहते हैं। जिस प्रकार तुम लोग मेरे पास खड़े होकर उपदेश सुन रहे हो उसी प्रकार मेरे दिवंगत शिष्य भक्त भी सूक्ष्म शरीर में आकर मेरे पास उपदेश सुन रहे हैं। फिर यह बात भी सही नहीं है कि उनमें से किसी किसी का पुनर्जन्म नहीं हुआ हो। अब की बार तो मैं पुनः पैदा हुए एक शिष्य का अन्न प्राशन कर आया हूं। उसने ब्राह्मण कुल में जन्म लिया है। उस परिवार के सभी सदस्य मेरे शिष्य हैं। छः मास का शिशु पलक झपकाये बिना मेरी ओर निहारता रहा। मैंने उसे गोद में उठाकर कितना प्यार किया और कहा, "तू मुझे पहचाता है ? मैं तुझे पहचानता हूं।"

शिष्य ने पूछा, "प्रभो, वह तो आपका विशिष्ट भक्त था, फिर उसे पुनः जन्म क्यों लेना पड़ा ?"

प्रभुश्री ने कहा, "वह मेरा भक्त तो था, पर उतना ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका था। वह क्रम मुक्ति के पथ पर जाता और जन्म नहीं लेता, तो भी चलता। परन्तु उससे मुक्ति में विलम्ब होगा, यह सोचकर

मैंने उसके लिए मात्र एक और जन्म की व्यवस्था कर दी । अब की बार वह मुक्तिलाभ करेगा "

शिष्य ने प्रश्न किया, "यह जो गुरुशक्ति और जन्म नियंत्रण का व्यापार है, मैं इन दोनों बातों के बारे में कुछ भी नहीं समझ पाता हूं। आप किसको कहां से लाकर किसके घर जन्म दे देते हैं।—वह सब होता कैसे है ?"

प्रभुश्री—मैं किसी को जन्म नहीं देता हूं। यह कार्य दूसरे के हाथ है। मैं केवल उन्नत शिष्यों के जन्म लेने का कारण कर देता हूं । तब यह बात सभी पर लागू नहीं है। जो शिष्य क्रमोन्नति के पथ पर जाते हैं, मैं केवल उन्हीं के लिए यह सब करता हूं । उस समय भोग बीज के रूप में रह जाता है। मानों गुलाब का कोई पौधा है। उसकी नई डाली में गुलाब की अनेक कलियां लगी हैं। उस डाली के ऊपरी भाग को काट देने पर भी उसकी शक्ति उसके भीतर रह जाती है। बाद में देखा जाता है कि उस डाल में गुलाब के मात्र दो चार फूल ही खिले हुए हैं। यह स्थिति भी बिल्कुल वैसी ही है।

श्रीगुरु जब भोग का पथ रोक देते हैं, तो प्राकृतिक नियम से उस की जीवन कली इस पार्थिव जगत में पुनः खिल उठती है। भगवान इस सबके मालिक हैं। मैं केवल अपनी इच्छा शक्ति से भोग का पथ रोक कर मुक्त हो जाता हूं। उसके बाद मेरी इच्छा का अवलम्बन लेकर उन्हें (भगवान को) जो कुछ करना होता है, वे करते हैं।

शिष्य ने पूछा, ''तब तो भगवान एक हिसाब से श्रीगुरु के आज्ञाधीन हैं। भगवान तो श्रीगुरु का मन लेकर चलते हैं। इसके उत्तर में प्रभुश्री ने कहा, "मान लो किसी राजा के गुरु ने उस राजा के अधीन कार्यरत किसी कर्मचारी को कोई निर्देश दिया। उस कर्मचारी ने भी उस कार्य को राजकार्य समझ कर उसे सादर पूरा किया। यह बात भी बिल्कुल वैसी ही है । एक हिसाब से भगवान भी श्रीगुरु के आज्ञाधीन हैं। इसलिए विधाता श्रीगुरु के अनुयायियों के लिए विशेष व्यवस्था करते हैं। इसके लिए श्रीगुरु को कोई विशेष चिंता नहीं करनी पड़ती है। इन

बातों के लिए तुम लोगों के मन में जैसा कौतूहल है, मेरे मन में नहीं है। यह सब स्वाभाविक नियमों से हो जाता है।"

संतान कामना

यदि कोई संतान की कामना को लेकर पत्र लिखता था तो प्रभुश्री किसी किसी की इच्छा तो पूरी कर देते थे और किसी किसी की बिल्कुल नहीं करते थे। इस संबंध में दो दृष्टांत दिये गए हैं। प्रभुश्री जिस प्रकार अन्तर्दृष्टि संपन्न होकर शिष्य भक्तों की कामना वासना पूरी करते थे और सरलता पूर्वक उसकी अच्छाई और बुराई के बारे में बता देते थे, वह जितना विस्मयकारी है, आत्मा पर उनका प्रभाव और जन्म निरोध का व्यापार भी उतना ही आश्चर्यजनक है।

प्रभुश्री ने एक शिष्या की प्रार्थना पूरी कर उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया था। गर्भ धारण के बाद उसको रक्तस्राव होने लगा। इससे भयभीत होकर उसके पति ने प्रभुश्री के पास पत्र लिखा। उस पत्र के उत्तर में प्रभुश्री ने जो कुछ लिखा था वह निम्न प्रकार है—

"तुम्हारा पत्र पाकर सब कुछ जान पाया हूं। तुमने जो कुछ लिखा उससे किसी प्रकार के भावी विपद अथवा अमंगल की आशंका से मेरा मन विचलित नहीं हुआ है। मैं जानता हूं कि तुम्हारी पत्नी के गर्भ का आश्रय लेकर कोई महापुरुष प्रकट होंगे। तीन वर्ष तक चेष्टा कर मैंने उनके लिए तुम्हारी पत्नी का गर्भ निश्चित कर दिया है। तुम्हारी पत्नी यह सब जानती है। मुझे आशा थी कि इस पुत्र के जन्म के बाद मैं स्वयं उसका संस्कार कर दूंगा और उस समय तुम्हें सब कुछ बता दूंगा। जो भी हो, तुम डरो मत। बीच-बीच में जो सामान्य रक्तस्राव होता है, वह अच्छा लक्षण है, महापुरुष के आगमन का चिह्न है। यहां तक कि आठ-नौ महीनों तक रक्तस्राव हो सकता है।"

"वत्स! तुम लोग बड़े भाग्यवान हो। इस पुत्र को पाकर तुम लोग धन्य होंगे, तुम्हारा कुल पवित्र हो जाएगा। परन्तु इस बात का

सदैव स्मरण रखोगे कि इस जगत में अविच्छिन्न सुख संभव नहीं है। सुख के बाद दुःख और संपदा के बाद विपदा का आना स्वाभाविक नियम है। इस जगत में ऐसे कोई महापुरुष नहीं हुए हैं जिनके माता-पिता को आँसुओं से नेत्रों को भिगोना न पड़ा हो। इसलिए किसी भी बात से अधीर न होकर भगवान के ऊपर निर्भर रहो और पति-पत्नी दोनों उनका गुणगान कर सात्त्विक भाव से हृदय को पूर्ण करो। इस समय कोई दुश्चिंता करना या व्याकुल होना गर्भ की संतान के लिए हानिकारक है। एक और बात है कि इस दैवी लीला के बारे में किसी को पता न चले। इससे हानि होने की संभावना है। यहां तक कि तुम्हारे माता-पिता को भी इस बात का पता नहीं चलना चाहिए।"

प्रभुश्री ने किसी अन्य शिष्या द्वारा संतान की कामना को लेकर लिखे गए पत्र का जो उत्तर दिया था, वह निम्न प्रकार है—

"तुम्हारी प्रार्थना मुझे याद है। परन्तु मैं अभी तक कुछ भी नहीं कर सका। जिसे तुम्हारी संतान के रूप में जन्म लेना होगा. उसके लिए उसके पूर्वजन्मों की सुकृति होनी चाहिए। कितनी निर्धन और कठोर माताओं के घर सन्तानों का हिसाब नहीं है। परन्तु तुम एक सन्तान चाहती हो, फिर भी उससे वंचित हो। मैं अनेक आत्माओं को तुम्हारे गर्भ में भेजने के लिए आकर्षित कर लाया हूं, पर तुम्हारे कर्म के साथ किसी के कर्म का तालमेल नहीं बिठा पाता हूं। इसलिए बाध्य होकर उन्हें छोड़ना पड़ता है। दोनों ओर सामंजस्य नहीं रहने से मेरे द्वारा भगवान के राज्य में विद्रोह हो जाएगा। इसलिए मैं समय की प्रतीक्षा में हूं। यदि मैं विवेकहीन होता, तो अपनी शक्ति का प्रयोग कर तुम्हारी वासना पूरी कर देता, परन्तु उससे तुम्हें भविष्य में अशांति ही मिलती। सुख के बदले सदैव के लिए दुःख में तड़पना पड़ता। इसलिए कुछ नहीं कर पाता हूं। मैं जिन्हें प्रेम करता हूं, संतान के नाम से उनके सिर पर शैतान का बोझ नहीं लाद सकता। अन्यथा तुम लोग अनेक दिन से मेरे पास जो आशा लेकर आ रहे हो, मैं इस बीच कुछ कर सकता था। जो भी हो, मैं कुछ दिन अपनी शक्ति का प्रयोग कर देखूंगा कि समान प्रकृति के जीव मिलते हैं या नहीं।"

इस सम्बन्ध में और अधिक लिखना अनावश्यक है। उपर्युक्त विवरण से पाठक जन्म मृत्यु पर प्रभुश्री की अलौकिक शक्ति से अवगत होंगे।

योग के बल से देहत्याग

योगीजन रोग से शय्याशायी न होकर तथा रोग यंत्रणा भोग कर अथवा किसी दैवी विपत्ति से मृत्यु का सामना न करके योग के बल से देहत्याग करते हैं। इसमें और किसी को विश्वास हो या न हो, लेकिन सभी हिन्दू जानते हैं। यदुवंश के ध्वंस के बाद बलराम ने योग का अवलंबन लेकर देहत्याग किया था। विदुर ने उद्धव से इच्छामृत्यु का उपाय सीखकर धृतराष्ट्र, गांधारी और देवी कुन्ती के साथ हिमालय में योग का अवलंबन लेकर देहत्याग किया था। महापापी और दुराचारी व्यक्ति भी योग के बल से देहत्याग करने पर महामुक्ति प्राप्त कर सकता है।*

मुक्तिलाभ का स्वरूप

परलोक तत्त्व पर चर्चा करने से सहज ही पता चलेगा कि मुक्ति होने तक जीव का पुनः पुनः जन्म होना और मरना सुनिश्चित है। इसलिए अब उस मुक्ति के स्वरूप के बारे में जानना आवश्यक है। इस संवंध में प्रभुश्री ने जो वाणी प्रदान की थी, वह निम्न प्रकार हैं—

"मुक्ति का अर्थ सभी दुःखों का अवसान और सुख की प्राप्ति है। साधना भेद के अनुसार इस सुखलाभ में भी तारतम्य है। इसलिए हमारे शास्त्रों में मुक्ति अनेक प्रकार की बताई गई है—सालोक्य सारूप्य, सारोष्ट्य और सायुज्य। इन चतुर्विध मुक्तियों में भी द्वैतज्ञान नहीं मिटता है। इसलिए इनसे दुःख पूरी तरह दूर नहीं होता। यदि लेशमात्र भी दुःख रहेगा, तो उसे चरम मुक्ति कैसे कहा जा सकता है?"

---

* योग के बल से देहत्याग करने की प्रक्रिया जानने के लिए प्रभुश्री द्वारा प्रणीत "ज्ञानी गुरु" पुस्तक पढ़िए।

"मान लो, एक आदमी स्वर्गलोक चला गया है। कोई भी इस बात से अनजान नहीं है कि स्वर्ग असीम आनन्द का स्थान है। स्वर्गवासियों को पर्याप्त मात्रा में सुख मिलने पर भी उनके अपने-अपने कर्म के अनुसार भोग में अन्तर रहता है। स्वर्गवासी जीव जब इन्द्र को इन्द्राणी के साथ नन्दन कानन में घूमते देखता है, तो वह ईर्ष्याग्नि से जलने लगता है। उस समय वह सोचता है कि काश मैं भी इसी तरह सुखी होता ! तब देखो तो, स्वर्ग में जाकर भी उसकी यंत्रणा कम नहीं हुई, वह वासना से पीड़ित रहा। इन चार प्रकार की मुक्तियों की दशा एक जैसी है। इनमें कोई न कोई दोष है। निर्वाण ही चरम मुक्ति है। इस मुक्ति में लेशमात्र वासना नहीं, कामना की गंध नहीं। इसे दुःख छूता नहीं है। इसमें तो केवल अनन्त सत्ता, अनन्त आनन्द और अनंत ज्ञान है। उस समय जीव समझ पाता है कि इतने दिन तक वह स्वयं को इस शरीर रूपी छोटे कुंभ के भीतर रहने वाला समझता था। वही 'मैं' तो समूचे विश्वब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर चराचर में विराजमान है। मेरी सत्ता से सभी सत्तावान हैं। मैं हूं, इसलिए सब है। मैं मनुष्य, मैं ईश्वर, मैं देवता, मैं ब्रह्म हूं। जीव जिस समय इस ज्ञान की स्थिति में पहुंचता है, उस समय क्या और वासना कामना रहती है ? उस समय वह देखता है कि वह भिन्न-भिन्न रूपों में विभिन्न वस्तुओं का भोग कर रहा है, क्योंकि उसके अतिरिक्त कोई दूसरी सत्ता ही नहीं है। उस समय वह किसको देखकर हिंसा करेगा ? अनेक लोग सोचते हैं कि निर्वाण का अर्थ है बुझ जाना। उनका कहना है कि यदि हमारे इन्द्रियां ही नहीं रहीं तो हम सुख का भोग कैसे करेंगे ? हम ऐसा निर्वाण नहीं चाहते हैं। वे नहीं समझ पाते कि जिस समय हम नींद में जाते हैं, उस समय हमारी सब इन्द्रियां सो जाती हैं। तथापि हम किस प्रकार सुख का भोग और आनंद प्राप्त करते हैं ? वे यह नहीं समझ पाते हैं कि छोटी-छोटी इन्द्रियां, देह, मन आदि हमारे लिए आनंद प्राप्ति में बहुत बड़ी बाधाएं हैं। वे मृत्यु के माध्यम से अमृत का आस्वादन करना चाहते हैं। पर वह क्या कभी संभव है ? इसलिए वेदान्त कहता है, अपने व्यक्तित्व तक का विसर्जन करना होगा। मन में काल्पनिक सृष्टि के प्रति उसके मिथ्या होने

का बोध जागृत करना होगा। तब कहीं इसके परिणामस्वरूप अद्वैत ज्ञान का उद्रेक होकर जीवितावस्था में जीवन्मुक्ति और बाद में निर्वाण मुक्ति प्राप्त होगी। उसके बाद और कुछ पाना बाकी नहीं रहेगा। इसे चरम मुक्ति कहते हैं।

प्रभुश्री के शिष्यों ने किस प्रकार जीवितावस्था में मृत्यु की अनुभूति प्राप्त की है, उसके भी यथेष्ट उदाहरण हैं।

जीवितावस्था में मृत्यु की अनुभूति

प्रभुश्री के प्रिय शिष्य स्वामी स्वरूपानन्द महाराज एक दिन गोसाईं गाँव से मठ की ओर जा रहे थे। रास्ते में उनके मन में कुछ विचित्र भाव उत्पन्न हो गया। उन्होंने अनुभव किया कि वे शरीर से निकल कर मठ की ओर चले जा रहे हैं और उनका शरीर रास्ते में खड़ा हुआ है। शरीर से निकल जाने के बाद भी वे रस्सी से उसके साथ जुड़े हुए हैं। मठ में आकर उन्होंने सेवकों को कार्य करते देखा और कुछ देर के बाद लौट कर वे अपने शरीर में आ गए। शरीर चलने लगा। मठ में आकर उन्होंने जिन लोगों को सूक्ष्म में देखा था उनसे पूछा कि क्या वे अमुक जगह पर अमुक कार्य कर रहे थे। सभी ने उनकी बात को स्वीकार किया।

हमारे श्रद्धेय गुरु भाई डाक्टर नृपेन्द्र भाई ने एक बार मृत्युकालीन अवस्था देखी थी। उन्होंने देखा कि उनका मृत शरीर शय्या पर पड़ा है। उनके आत्मीयस्वजन उनके चारों ओर बैठ कर रो रहे हैं, परन्तु उनकी अपनी अवस्था वर्णनातीत है। वे सूक्ष्म ज्योतिर्मय शरीर में आनन्द में विराजमान हैं। वे अपनी शय्या के पास बैठे आत्मीयजनों को रोने से रोकने की तरह-तरह से चेष्टा कर रहे हैं, परन्तु कोई उनका इशारा नहीं समझ पा रहा है। नृपेन्द्र भाई उस समय समझ सके कि आकाश और वायुमण्डल इस जड़ जगत की तुलना में पूरी तरह भिन्न उपादानों से गठित है। वह करोड़ों सूर्य की तरह ज्योतिर्मय और करोड़ों चांद की तरह शीतल है। चारों ओर के रमणीक दृश्य कितने आनन्ददायक हैं। एक बहुत ही सुन्दर रथ उनकी प्रतीक्षा में है। कई

ज्योतिर्मय पुरुष उनका स्वागत करने के लिए खड़े हैं। यहां ये सब दृश्य और वहां आत्मीयस्वजनों को शोकाकुल अवस्था में देख कर उनके मन में अपने पार्थिव आत्मीयजनों के प्रति ममता आ गई। उसके लिए दुखी होने के कारण उनकी आंखों से आँसू निकल पड़े। अचानक उनकी चेतना लौट आई और वे जाग गए।

परम आश्चर्य धाम

एक शिष्य की अपनी अनुभूति इस प्रकार है—मेरा शरीर बहुत अस्वस्थ था। सभी मेरे लिए परेशान थे। रोग का प्रकोप इतना बढ़ गया था कि उससे मेरी बाह्य चेतना चली गई। ऐसी अचेतन अवस्था में कभी-कभी दो-तीन दिन बीत जाते थे। परन्तु मेरे हृदय में पूर्ण ज्ञान था।

"एक दिन मैं अचेतन हो गया था। इस समय मैंने देखा कि एक दिव्य ज्योतिर्मय पुरुष ने मेरे सोने के कमरे में प्रवेश किया। मेरे पास आकर उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें लिवा ले जाने आया हूं। बाहर एक दिव्य रथ तुम्हारी प्रतीक्षा में है। तुम तैयार हो जाओ। मैंने देखा कि मेरा नश्वर शरीर बदशक्ल होकर जली हुई लकड़ी की तरह काला पड़ चुका है और उसके स्थान पर एक हिरण्मय शरीर बन चुका है। मैं सुन्दर वस्त्राभूषण पहन कर रथ के पास आया। प्रभुश्री मेरे पास थे। घर से निकलते समय मेरे मन में आया कि मैं तो जा रहा हूं, पर प्रभुश्री तो रह गए। प्रभुश्री को छोड़ कर चलते जाने के कारण मेरा उत्साह कम हो गया, पर मैं लौट नहीं सका। मैंने बाहर आकर देखा कि एक दिव्य रथ मेरे लिए तैयार है। वह रथ कितना सुन्दर था, वह वर्णनातीत है।

मैं उस दिव्य पुरुष के आदेशानुसार रथ पर बैठ कर निकल पड़ा। दिव्य पुरुष सारथी बन कर रथ चलाने लगे। परन्तु मेरे मन में पश्चाताप रह गया कि मैं प्रभुश्री को छोड़ आया हूं। रथ धीरे-धीरे ऊपर उठने लगा। बाद में यह पृथ्वी एक चित्रपट की तरह दिखाई दी। हमारा रथ धीरे-धीरे ग्रह नक्षत्रों की सीमा को पार कर ऊपर उठ गया।

हमने ग्रह नक्षत्रों को शून्य में बहुत नीचे देखा। रथ धीरे-धीरे एक घोर अन्धकारपूर्ण स्थान में पहुंचा। उस सीमा को पार कर एक दिव्य भूमि के छोर पर उपस्थित हुआ। उस क्षेत्र की शोभा वर्णनातीत और ध्यान द्वारा अगम्य थी। इस अनुपम ज्योति के भीतर एक अभूतपूर्व धाम था। उस धाम के प्रवेश द्वार पर अभूतपूर्व रत्नमय तोरण थे। रथ आकर तोरण द्वार पर पहुंचा। मैं रथ से उतर गया। उस समय मुझे ऐसा लगा कि मेरा शरीर बहुत ही सुन्दर और हल्का हो गया था। परन्तु प्रभुश्री को छोड़ आने के कारण मेरा मन रो उठा।"

"सीढ़ियाँ चढ़ते ही मैंने देखा कि एक दिव्य पुरुष मेरा स्वागत करने के लिए खड़े हैं। मैं उनका पूरा शरीर नहीं देख सका। उनका पूरा शरीर एक खंभे की आड़ में छिप गया था और केवल चरणयुगल ही दिखाई देते थे। उनके चरणयुगल की शोभा ऐसी थी कि उनकी सुन्दरता की कल्पना तक नहीं की जा सकती। उसके बाद कुछ दिव्य सुन्दर नारियों ने मुझे एक रत्न सिंहासन पर बिठा दिया और वे मेरी सेवा करने लगीं। फिर भी मेरा मन प्रभुश्री के लिए व्याकुल रहा। उसके वाद मैंने सुना कि वह ज्योतिर्मय पुरुष मुझे पुनः धरती पर वापिस भेज देने का निर्देश दे रहे हैं। मैं तत्काल अचेतन हो गया। चेतना लौटने पर मैंने देखा कि मैं अपने सोने के कमरे में सोया हुआ हूं। प्रभुश्री मेरे पास हैं।"

प्रभुश्री को सारी बातें बताने पर उन्होंने कहा, "यदि तुम्हारे मन में ऐसा संकोच भाव नहीं आता कि तुम प्रभुश्री को छोड़ कर जा रहे हो, तो तुमने जो अवस्था प्राप्त की थी, वहां से वापिस नहीं आते। यह संकोच रहने के कारण पुनः इस शरीर में आना पड़ा। यदि प्रभुश्री के लिए संकोच नहीं रहता तो तुम उस दिव्य पुरुष का पूरा शरीर देख सकते थे। उस समय तुम देखते कि वही पुरुष ही तुम्हारे प्रभुश्री हैं। उस समय तुम उनका आनन्द घन विग्रह देख कर संसार में वापिस नहीं आते।"

मृत्यु की अनुभूति

एक अन्य शिष्य का विवरण इस प्रकार है—मैं एक उत्सव के अवसर पर कुछ भक्तों के साथ आमोद-प्रमोद कर रहा था। उस स्थान पर सतत हरिनाम कीर्तन की गूंज उठ रही थी। हम सब ने मिलकर उसमें भाग लिया। कीर्तन खूब जम गया। मेरे मन में भावान्तर आने के कारण मैं वहां से खिसक कर चुप होकर बैठकर ध्यान मग्न रहने की चेष्टा कर रहा था। इस बीच कुछ साथी मेरी अनिच्छा के बावजूद मुझे खींच ले गए। मेरा शरीर इतना थक गया था कि मैं वहां पर खड़ा नहीं हो पाया और जमीन पर लुढक गया। उस समय मेरा शरीर सुन्न हो गया था। ऐसी स्थिति में मेरे एक डाक्टर मित्र मेरी नब्ज देख कर मेरे कान में उच्चस्वर से नाम का उच्चारण करने लगे। मेरी बाह्य चेतना नहीं थी, फिर भी मैं सब कुछ देख सकता था। यह देख कर मेरे मन में आया कि इस अवस्था में मेरी मृत्यु हो सकती है। अब मुझे क्या करना चाहिए? मैं प्रभुश्री का ध्यान करने लगा। अचानक मेरे सामने प्रभुश्री का प्रसन्न मुखमण्डल दिखाई दिया। बाद में मेरे भीतर से सोऽहं की ध्वनि निकली। साथ ही साथ प्रभुश्री अदृश्य हो गए। मैंने ऐसा अनुभव किया कि देहत्याग करने के बाद मैं चारों ओर व्याप्त हो गया। मेरे भीतर से कीर्तन की ध्वनि जैसी आवाज सुनाई दी। इस आनन्द की अवस्था में कुछ समय बीत गया। जब मुझे ऐसा बोध हुआ कि यह अवस्था आनन्ददायक है, तो मैं अपनी देह को ढूंढ़ने लगा। मैंने देखा कि वह जमीन पर पड़ी है। उस समय मैंने समझा कि मैं देहमुक्त अवस्था में हूं। यहां पर मुझे कोई दु:ख नहीं है। परन्तु मैंने चरमतत्त्व प्राप्त नहीं किया था, इसलिए निश्चय किया कि शरीर में पुन: वापिस आऊं। मैंने उस समय प्रार्थना की कि चेतना लौटने के बाद भी मुझे यह सब याद रहे। कुछ देर बाद मैंने अपने शरीर में हलचल महसूस की। सुबह जागने पर मुझे सब कुछ याद आया। मैंने सोचा कि यदि मृत्यु ऐसी है, तो वह कितनी सुखदायी है?"

प्रभुश्री जिस प्रकार अनेक शिष्य-भक्तों को उनके पूर्वजन्म के बारे में सचेत करा देते थे, ठीक वैसे ही अनेक शिष्य-भक्तों में उनके पूर्वजन्मों की स्मृति स्वत: जागृत हो जाती थी।

प्रभुश्री अपने प्रत्येक शिष्य-भक्त के पूर्वजन्म और इस जन्म के भविष्य के बारे में प्रत्यक्ष रूप से बता सकते थे और बाद में उसे एक कापी में नोट करके रखते थे। विदेह होने के थोड़े दिन पहले उन्होंने उस कापी को नष्ट कर दिया था। वह इसलिए कि इस जन्म में भविष्य के बारे में पता चल जाएगा तो उनका अमंगल होगा।

पहले से मृत्यु जानने का उपाय

जन्म लेने पर मृत्यु निश्चित है। तंत्र, पुराण, आयुर्वेद, ज्योतिष और स्वरोदय शास्त्र में मृत्यु के अनेक लक्षण लिखे गए हैं। उसे पढ़ कर सर्वसाधारण के लिए मृत्यु का समय निर्धारित करना एकदम दु:साध्य है। प्रभुश्री ने विभिन्न योगियों और साधुओं से मृत्यु के अनेक लक्षण सीखे थे और उनका अनेक बार परीक्षण कर उन्हें सही पाया था। सर्वसाधारण की भलाई के लिए उन्होंने उनमें से कुछ लक्षण निम्न प्रकार बताए हैं। शास्त्रों आदि में मृत्यु के जो लक्षण दिए गए हैं, उन सबको लिखने में बहुत समय लगेगा। एक और बात है कि ये सब लक्षण प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में प्रकट न भी हो। विशेषकर श्वास प्रश्वास की प्रक्रिया की पूरी जानकारी न रहने पर इस संबंध में कोई कुछ नहीं समझ पाएगा। प्रभुश्री ने कहा है कि एक ऐसा लक्षण है जो प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में निश्चय ही दिखाई देगा। पाठकों की जानकारी के लिए उसे "योगी गुरु" पुस्तक में से उद्धृत कर नीचे दिया गया है।

प्रक्रिया

"दाएं हाथ की मुट्ठी बनाकर उसे नाक के ऊपर के भाग में अथवा भौं के ऊपर ऊपरी ललाट पर रख कर नाक के सामने हाथ की कलाई के नीचे सीधे देखने से हाथ बहुत ही पतला दिखाई देगा। यह स्वाभाविक नियम है। परन्तु जिस दिन देखा जाएगा कि हाथ के साथ

मुट्ठी जुड़ी हुई नहीं है, हाथ से मुट्ठी अलग हो चुकी है, तो समझना होगा कि उस दिन से केवल छः मास आयु बची है।*

प्रभुश्री ने कहा है कि यह लक्षण प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में दिखाई देगा। प्रभुश्री अनेक बार अनेक लोगों के द्वारा इसका परीक्षण कर निःसन्देह हुए थे। सभी अपने शरीर पर इसका परीक्षण कर सकते हैं।

जब किसी को पता चल जाए कि उसके शरीर में उपर्युक्त लक्षण दिखाई दे रहा है, तो उसे मृत्यु के लिए तैयार हो जाना चाहिए। मृत्यु के समय जो जैसी भावना रख कर देहत्याग करता है, वह वैसा ही स्वरूप प्राप्त करता है। "जप तप वृथा करि मरिते जानिले हय" (जप और तप सब कुछ व्यर्थ है, मरने का उपाय जान सकने से सब कुछ होगा) यह प्रचलित वाक्य उसका प्रमाण है। भगवान का ध्यान कर मृत्यु का सामना करने से और यातना नहीं भोगनी पड़ेगी।

हम लोग जानते हैं कि परलोक पर प्रभुश्री का पूर्ण अधिकार था। मृत्यु के बाद परलोक में अपने शिष्य-भक्तों की क्या गति होगी, प्रभुश्री इसका सही-सही वर्णन करते थे और उनके दिवंगत शिष्य-भक्तों ने कैसा जन्म लिया है, वह भी व्यक्त कर उनके भविष्य के बारे में भी सही-सही जानकारी दे सकते थे। वे पल भर में ही इहलोक और परलोक के समाचार दे सकते थे। प्रायः उनके प्रत्येक शिष्य-भक्त ने अनुभव किया है कि उन्हें सब आत्माओं की जानकारी थी। परलोक में होने वाली घटनाओं के बारे में हमने प्रभुश्री से जो अलौकिक बातें सुनी हैं, वैसा दूसरे साधारण साधु के बारे में नहीं सुना जाता है। प्रभुश्री के जीवन में परलोक ने एक विशेष स्थान बना लिया था। मृत्यु और परलोक के सम्बन्ध में इस अभिनव महापुरुष ने जो आश्वासनपूर्ण वाणी सुनाई थी, उनमें से कुछ उद्धृत न करने से यह ग्रंथ अधूरा रह जाएगा।

---

* इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण जानना हो, तो प्रभुश्री द्वारा प्रणीत "योगी गुरु" पुस्तक पढ़िए।

प्रभुश्री की आश्वासनपूर्ण वाणी

"इस बात का कोई अर्थ नहीं है कि किसी भी सदगुरु का शिष्य बन जाने से तीन जन्मों में मुक्ति हो जाएगी। (कुछ देर चुप रहने के बाद) तब मैं अपनी बात कह सकता हूं। मेरे अनुयायी निश्चय ही तीन जन्म में मुक्त हो जाएंगे। यदि कोई मेरा शिष्य बन कर मेरा विरुद्धाचरण करेगा, तो भी उसे मुक्ति पाने के लिए तीन जन्म से अधिक समय नहीं लगेगा। मैंने गुरुभार लेते समय अपने गुरुदेव से यह वचन ले रखा है। इसलिए तुम लोगों के लिए चिंता किस बात की ? तुम लोग बड़े भाग्यवान हो। मुक्ति तुम लोगों के हाथ की मुट्ठी में है। तुम लोग खा पीकर, आनन्द मनाते हुए नाचते रहो। सब दायित्व मेरा है। तुम लोग केवल मेरा इहलोक का भार लो, मैंने तुम्हारा परलोक का भार लिया है। व्यावहारिक रूप से तुम लोगों में से कोई छोटा, कोई बड़ा, कोई विद्वान, कोई मूर्ख हो सकता है, परन्तु पैतृक सम्पत्ति को बांटते समय पाई-पाई पर सबका समान अधिकार है।"

"सत्यलाभ के दो चिरंतन पथ हैं। पहला कठोर संन्यास योग और दूसरा ब्रह्मविद गुरु की सेवा। चूंकि वर्तमान युग में संन्यास योग कठिन है, अतः मैंने तुम लोगों के लिये सेवा का पथ प्रदर्शित किया है। तुम लोग इस सेवा पर संन्यास का लक्ष्य जो कि ब्रह्मज्ञान है, वह प्राप्त कर सकोगे। यदि कहोगे कि तब प्रभुश्री ने इतना साधना-भजन क्यों किया ? इसके उत्तर में मैं इतना ही कहूंगा कि तुम लोगों को पृथक रूप से साधना भजन इसलिए नहीं करना पड़ेगा क्योंकि तुम्हारे प्रभुश्री ने इतना साधना-भजन कर रखा है। जो जिन्हें प्यार करता है, जिनका भजन करता है, उसके भीतर उनका गुण समूह अनजाने में ही संक्रमित हो जाता है। यह क्या तुम लोग नहीं जानते ? यह तो एकदम वैज्ञानिक सत्य है। इस हिसाब से यदि तुम लोग मुझसे प्रेम कर मेरा भजन करते हो, तब मेरा गुण समूह और समस्त साधना-भजन का फल तुम्हारे भीतर आ जाएगा। इतनी साधना करने से तुम्हारे प्रभुश्री की जो गति होगी, बिना साधना-भजन के भी तुम लोगों की वही गति होगी। मैं तुम लोगों का गुरु हूं। मैंने इसलिए तुम्हारे सभी कर्मों का भार वहन

किया है कि मैं तुम लोगों को मुक्ति दूंगा। ××× तुम लोग प्रतीक्षा करो, निश्चित और निडर होकर बैठे रहो। तुम लोग चाहे कितने भी नीच, कितने भी दुर्बल, कितने भी तुच्छ क्यों न हो, सब एक दिन अग्निमय हो जाओगे। मेरे द्वार से किसी को निराश होकर नहीं लौटना पड़ेगा! मैं कहता हूं कि एक दिन तुम लोग सब संपदाओं के अधिकारी बनोगे, सब कुछ पाओगे। मेरी बात पर निर्भर कर निडर होकर निश्चितता से उस शुभ दिन की प्रतीक्षा में बैठे रहो। हमेशा से जो कहता आया हूं, आज पुनः वही कह रहा हूं। जिन लोगों ने मुझे अपना समझ कर आत्मसमर्पण पूर्वक मेरी शरण ली है, उनकी मुक्ति न होने तक मैं भी मुक्त नहीं होऊंगा।"

प्रभुश्री ने साधना सिद्ध होकर महाभावमयी भगवती के प्रत्यक्ष आदेश से गुरुआई का दायित्व लिया था। महाभावमयी की आशीर्वाणी के अतिरिक्त प्रभुश्री ने भी हमें अनेक आश्वासनपूर्ण वाणी सुनाई है। गीता में है, "जो लोग अन्तिम घड़ी में मेरा स्मरण कर देहत्याग करते हैं, वे निश्चय ही मेरा भाव पाते हैं।"

अन्तिम घड़ी में श्रीगुरु अथवा इष्टनाम का स्मरण कर पाना बड़ा ही कठिन कार्य है। सद्गति तभी मिलेगी जबकि अन्तिम घड़ी में स्मृति पटल पर उनका नाम प्रस्फुटित हो। इस सम्बन्ध में प्रभुश्री ने कहा, "अन्तिम घड़ी में मैं स्वयं उपस्थित होकर तुम्हें तुम्हारे गंतव्य स्थान में ले जाऊंगा।" हमने इसके पूर्व प्रसंग में वर्णन किया है कि किस प्रकार प्रभुश्री की यह आश्वासनपूर्ण वाणी अक्षरशः सच है। अब भी विभिन्न स्थानों से शिष्य-भक्तों के महाप्रयाण का विस्तृत विवरण सुनकर हम अपने आँसू नहीं रोक सकते। प्रतिश्रुति देकर किस प्रकार उसे पूरा किया जाता है, प्रभुश्री अनेक अवसरों पर उसके प्रत्यक्ष दृष्टांत दिखा दिए हैं। हमने ऐसे अनेक शिष्य देखे हैं जिनके दैनन्दिन जीवन में कोई विशेषता नहीं दिखाई देती थी, पर अन्तिम घड़ी में उनके भाव में बहुत ही आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए और मृत्यु के समय उनका ज्ञान लुप्त नहीं हुआ।

अविश्वासी लोगों के प्राणों में विश्वास पैदा करने के लिए प्रभुश्री अनेक भक्तों के घर पर मृत्यु के समय अपना अलौकिक माहात्म्य प्रकट

कर गए हैं। मनुष्य अपने अन्तिम समय में ज्ञान को बनाए रखने हेतु प्राणप्रण से कितनी साधनाएं करता है? परन्तु हमारे प्रभुश्री ने उसके लिए हमें निश्चित कर दिया है। प्रभुश्री ने कहा है—

"परलोक का भार मुझ पर है। तुम लोग निश्चित होकर मेरे निर्देशित कर्म करते जाओ। तुम लोग सोच रहे हो कि साधना से आत्मज्ञान प्राप्त करोगे। इतनी आसानी से साधना नहीं होती है, बाबा। साधना भजन कर कितने मुनि-ऋषियों के शरीर पर बिल बन चुके हैं। कोई एक आत्मज्ञान प्राप्त कर उस ज्ञान को दूसरों में वितरित करता है। तुम लोग याद रखो कि महापुरुषों में ऐसी शक्ति है कि चाहने पर वे पल भर में पांच सौ आत्माओं को मुक्त कर सकते हैं। श्रीगुरु पर विश्वास और निर्भरता रहनी चाहिए। श्री श्री रामकृष्ण देव ने अपने जाने अनजाने में पांच सौ से अधिक आत्माओं को मुक्त कर दिया था।"

जिस चिंता को लेकर मनुष्य का सारा जीवन उत्कट साधना में बीत जाता है, प्रभुश्री ने आत्मशक्ति के बल पर हम लोगों को उस चिंता से पूरी तरह मुक्त कर दिया है। प्रभुश्री की ये सब बातें सोचने पर उनके प्रति कृतज्ञता का भाव स्वतः आ जाता है। शिष्य-भक्तों के प्राणों में जितनी मात्रा में विश्वास पैदा होगा, उनके अन्तर में उतनी मात्रा में कृतज्ञता का भाव खिल उठेगा। हम लोगों के लिए मृत्यु का भय नहीं है—इस बात पर चिंतन करने से मन में आनन्द आता है और गौरव की अनुभूति होती है। प्रभुश्री हम लोगों पर अहेतुकी कृपा का वितरण कर हमें आनन्द और गौरव के अधिकारी बना गए हैं।

"अभयवाणी के अभय नाद से
दूर कर दिया मृत्यु भय,
तुम्हारे प्रत्येक शिष्य आज
तुम्हारी कृपा से मृत्युंजय।

●

अठारहवाँ अध्याय

प्रभुश्री की सार्वभौम देन

प्रभुश्री की विभिन्न भाव में विभिन्न देन है। इसके अतिरिक्त सर्वसाधारण के लिए उनकी सार्वभौम देन निम्न प्रकार है।

(१) सारस्वत ग्रंथावली और आर्यदर्पण

प्रभुश्री द्वारा प्रणीत सारस्वत ग्रन्थावली ने धर्मजगत में युगान्तर का आरम्भ कर दिया है। साधना के सम्बन्ध में ऐसी पुस्तकें और नहीं है जो सहज और सरल होते हुए भी उच्च कोटि के आध्यात्मिक रहस्य से पूर्ण हो। हिन्दू धर्म का सार संगृहीत करके इन अमूल्य ग्रन्थों की रचना की गई है। लन्दन के ब्रिटिश म्यूजियम में इन पुस्तकों की उपयोगिता पर प्रसन्न होकर म्यूजियम के सचिव ने एक विस्तृत प्रशस्ति पत्र में प्रणेता का आभार व्यक्त किया है। हिन्दू शास्त्र रूपी समुद्र के मंथन से इस अमृत का उद्भव हुआ है। इस अमृत के पान से नश्वर जगत के लोग अमृतत्व प्राप्त करेंगे और इससे उनकी आत्मज्ञान प्राप्त करने की प्यास मिटेगी। इन पुस्तकों में जिस प्रकार बिना दुविधा के धर्म लाभ करने का उपाय वर्णित है, उस प्रणाली का अनुशीलन कर साधना करनी होती है। इनमें चित्त शुद्धि, योग, ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि के बारे में समस्त शास्त्रों के सार तथ्य दिए गए हैं। इन ग्रन्थों में अधिकार के अनुसार साधना के विभिन्न पथ दर्शाए गए हैं। ऐसा कोई नूतन तत्त्व नहीं है जो कि इन ग्रन्थों में कहीं न कहीं लिपिबद्ध न किया गया हो। हिन्दू शास्त्रों को समझने के लिए इन

ग्रन्थों में जिस पद्धति का अवलम्बन लिया गया है, उसे सीखकर हिन्दू शास्त्रों का अध्ययन करने से बड़ी आसानी से उस सब के मर्म को हृदयंगम किया जा सकता है ।

समाज में प्रचलित प्रमुख मतवादों में साधना के जो क्रम दिए गए हैं, उन्होंने आत्मशक्ति से उनका अतिक्रमण कर जो अभिज्ञता प्राप्त की थी, उनमें से साधना के विभिन्न स्तरों को सहज साध्य और व्यक्तिगत रुचि और सामर्थ्य के अनुरूप उपयोगी बनाकर लोक शिक्षा के लिए सारस्वत ग्रन्थावली में प्रचार किया है ।

प्रभुश्री ने अपने प्रणीत पुस्तक में जिस योग्यता से विभिन्न विषयों पर साधना-विज्ञान के संकेत दिए हैं, वह साधना सिद्ध महापुरुषों के अतिरिक्त किसी दूसरे के लिए सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने "योगी गुरु" ग्रंथ के 'निवेदन प्रखण्ड" में दावे के साथ घोषणा की है, "मैंने संसाराश्रम का त्याग कर अनेक दिन तक व्यर्थ परिभ्रमण और साधु संन्यासियों की सेवा करने के बाद जगद्गुरु भूतनाथ भवानीपति की कृपा से सदगुरु प्राप्त कर योग साधना के लुप्त प्राय: गुप्त कौशल और उपाय आदि सीखे हैं। अनेक दिन तक उन सब कौशलों की क्रिया कर प्रत्यक्ष फल भी प्राप्त किया है ।"

केवल इतना ही नहीं, उन्हें आत्मसाधना पर अटूट विश्वास था । इसलिए उन्होंने "योगी गुरु" पुस्तक में अकुण्ठित चित से कहा है, "यदि किसी व्यक्ति की इस प्रकार की साधना में प्रवृत्ति होती है और वह कृपा करके इस छोटे ग्रन्थकार के पास आता है, तो परीक्षा के पश्चात उपयुक्त समझने पर मैं सयत्न शिक्षा देने के लिए तैयार हूं। जिन्हें शिक्षा की दोषपूर्ण पद्धति के कारण मंत्र अथवा हिन्दू शास्त्रों पर विश्वास नहीं है, यदि वे मेरे पास आते हैं, तो श्रीगुरु की कृपा से उन्हें मंत्र की अलौकिक क्षमता और योग की विभूतियां मैं प्रत्यक्ष दिखा सकता हूं ।"

सारस्वत ग्रन्थावली अर्थात् "ब्रह्मचर्य साधन", "योगी गुरु", "ज्ञानी गुरु", "तांत्रिक गुरु" और "प्रेमिक गुरु"—आदि ग्रन्थों रूपी अमृत का हिन्दू शास्त्र रूपी समुद्र के मंथन से उद्भव हुआ। इस अमृत के पान से नश्वर जगत का मनुष्य अमर बन कर धन्य होगा। इससे आत्मज्ञान प्राप्त करने की अधूरी आकांक्षा पूरी होगी। सदगुरु ने जिस प्रकार से निर्विवाद रूप से धर्मलाभ करने का उपाय बताया है, इन कुछ पुस्तकों की सहायता से वह पूरा हो पाएगा। धर्मपिपासु लोग पहले "ब्रह्मचर्य साधन" में वर्णित नियमों का पालन करेंगे। इससे उनकी चित्त शुद्धि होगी। उसके बाद मन को स्थिर करने के लिए वे "योगी गुरु" पुस्तक में वर्णित आसन, मुद्रा, प्राणायाम और छोटी-मोटी साधनाओं का अभ्यास करेंगे। इसके साथ-साथ "ज्ञानी गुरु" पुस्तक में वर्णित तत्त्वों पर विचार करेंगे। जीवन का चरम लक्ष्य निश्चित हो जाने के बाद स्थूल रूप में "तांत्रिक गुरु" में वर्णित क्रियाओं का अभ्यास करने अथवा सूक्ष्म रूप में "योगी गुरु" और "ज्ञानी गुरु" में वर्णित योग साधना का अभ्यास करने से लक्ष्य वस्तु की उपलब्धि करेंगे। इसके बाद "प्रेमिक गुरु" ग्रन्थ में बताई गई प्रेम-भक्ति के अमृत प्रवाह में बहकर हमेशा के लिए लक्ष्य वस्तु में निमग्न होंगे।

इस स्वप्नवादी देश में भगवत ज्ञान के संबंध में बड़ी-बड़ी पाण्डित्य-पूर्ण बातें सुनने को मिलती हैं। परन्तु मंत्र को जीवन में सिद्ध करने वाले लोग विरले हैं।

(२) भक्त सम्मेलन

परमहंस प्रभुश्री निगमानन्द देव ने अपने शिष्य भक्तों में "आदर्श गृहस्थ जीवन का गठन", "संघ शक्ति की प्रतिष्ठा" और भाव विनिमय के लिए प्रत्येक वर्ष बड़े दिन की छुट्टियों में भक्त सम्मेलन के नाम से एक वार्षिक अधिवेशन का प्रवर्तन किया है। प्रभुश्री अपनी देहावस्थिति के दौरान प्रत्येक सम्मेलन में उपस्थित रह कर शिष्य-भक्तों को तरह-तरह के उपदेश प्रदान करते थे।

हम उन्हें भूल न जाएं, इसके लिए प्रभुश्री ने पहले ही सारी व्यवस्था कर रखी है। जैसा करने और जिन चीजों को देखने से प्रभुश्री की स्मृति हमारे हृदय में जागृत रहेगी, प्रभुश्री ने पहले से उसकी व्यवस्था कर रखी है। भक्त सम्मेलन प्रभुश्री का प्राणों से भी बढ़ कर प्रिय अनुष्ठान है। भक्तों का सम्मेलन या भक्तों का मधुर मिलन देखने के लिए प्रभुश्री के प्राणों में कितना आवेग था, सभी भक्त इस बात को भली-भांति जानते हैं। भक्त सम्मेलन के सम्बन्ध में प्रभुश्री ने जो उद्बोधन वाणी प्रकाशित की है, उनमें से कुछ एक का विवरण नीचे दिया गया है। "मेरे अन्तरंग प्रिय भक्तगण जानते हैं कि मैं प्रत्येक वर्ष बड़े दिन की छुट्टियों में विभिन्न स्थानों पर "भक्त सम्मेलन" देखना चाहता हूं। इससे मठ का गौरव बढ़ेगा और जगत का मंगल होगा।"

संसार के ताप से दग्ध और दुःख कष्ट से संतापित प्रभुश्री की गृहस्थ सन्तानें जिस प्रकार से अमृत का आस्वादन कर सकेंगी, उसके लिए प्रभुश्री ने अपने गृहस्थ शिष्य-भक्तों का इस भक्त सम्मेलन में योगदान करने हेतु व्याकुल प्राणों से आह्वान किया है। इस सम्मेलन में प्रत्यक्ष रूप से आनन्द का स्रोत बहता है।

प्रभुश्री का जीवन सदैव आनन्द से पूर्ण था। वे सदैव केवल आनन्दविभोर रहते थे। एक दिन उन्होंने कहा, "देखो, मैं चाहता हूं कि बैटरी की तरह एक यंत्र बना कर मनुष्य के भीतर यह आनन्द प्रवेश करा दूं।" बिना विचार के असद् प्रकृति के कुछ लोगों को दीक्षा देते देख कर जब अनेक लोगों ने आक्षेप किया, तो प्रभुश्री ने उत्तर दिया, "देखो, दान करते जाकर अच्छाई-बुराई और पात्र-अपात्र पर विचार करने से काम नहीं चलेगा। केवल इतना देखना बहुत होगा कि दान लेने वाला व्यक्ति दान में मिलने वाली चीज को सही सही चाहता है या नहीं। उस पर यह तो सिद्ध बीज है—जंगल, पहाड़ जहां कहीं भी क्यों न गिरे, इससे पेड़ जरूर उगेगा। देखा नहीं, पक्षियों के पेट में जो बीज सिद्ध होता है, पहाड़ पर गिरने से भी उससे पेड़ उगता है।

मैं स्पष्ट जानता हूं कि मेरे शिष्य भक्तों को मुक्ति पाने के लिए अधिक से अधिक तीन जन्म से अधिक समय नहीं लगेगा।"

प्रभुश्री इस आनन्द के आवेग में भक्त सम्मेलन में सब का आह्वान करते थे। १३३८ बंगाब्द के भक्त सम्मेलन में एकत्रित भक्तों को लक्ष्य कर प्रभुश्री ने कहा, "यह सम्मेलन सोलह वर्ष पहले आरम्भ हुआ था। इसका पहला अधिवेशन १३२२ बंगाद में कोकिलामुख मठ में हुआ। जयदेवपुर के भक्त सम्मेलन में सम्मिलित भाव का पहला विकास हुआ। उस दिन से यह सम्मेलन पूर्ण से पूर्णतर होता आ रहा है। भक्त सम्मेलन में आने के लिए मैंने किसी को नहीं बुलाया, न ही किसी से अनुरोध किया है। तुम लोग अनेक विघ्न वाधाओं को पार कर स्वयं यहां पर आएं हो। तुम लोगों ने कष्ट को कष्ट नहीं समझा। यहां पर आना ही होगा, इसके लिए कोई निश्चित विशेष नियम नहीं हैं। फिर भी तुम लोग प्राणों के आकर्षण से इस सम्मेलन में आते हो। पूरे वर्ष के बाद बहुत ही अपने लोगों का संगसुख प्राप्त कर, पारस्परिक सुख, दुख, व्यथा और वेदना की चर्चा से जिस आनन्द का विकास होता है, वही तुम लोगों को इस सम्मेलन में खींच लाता है। यदि मैं जगत में और कुछ भी काम करके न जाता, तब भी केवल यह सम्मेलन मेरी स्मृति को बनाए रखता। इससे पहले देश में इस तरह के किसी धर्म अधिवेशन की चेष्टा नहीं की गई है। इसके बाद अनेक अनुष्ठानों ने इसका आदर्श ग्रहण किया है। यदि हमारे मठ और आश्रम जगत में किसी और कार्य में न लगकर केवल सम्मेलन के क्षेत्र के रूप में विद्यमान रहेंगे, तो भी वही बहुत होगा। आज से तुम लोग सम्मेलन के पहले दिन कार्यक्रम संबंधी बातों पर सामान्य चर्चा करो। उसके बाद केवल आनन्द मनाओ। आनन्द ही मेरा लक्ष्य और आनन्द को लक्ष्य में रख कर इस सम्मेलन की स्थापना हुई है। तुम लोग सम्मेलन में मुझे अपनी व्यथा और वेदना से अवगत कराओगे। तुम लोग अपनी सारी समस्याएं मेरे सामने रखोगे। मैं उन सबका समाधान कर दूंगा।"

"भक्त सम्मेलन" में समवेत भक्तों को लक्ष्य कर प्रभुश्री ने कहा, "मेरे सम्मेलन के तीन मुख्य उद्देश्य हैं, आदर्श गृहस्थ जीवन का गठन, संघ शक्ति की प्रतिष्ठा और परस्पर भावों का आदान प्रदान।"

"मैं चाहता हूं, कि तुम लोग आदर्श गृहस्थ बनो, संघ बद्ध होओ और परस्पर भावों का आदान-प्रदान करो। इस प्रकार तुम लोग नश्वर जगत में अमृत का आस्वादन करो। मैं तुम लोगों को "आदर्श गृहस्थ जीवन गठन" के सम्बन्ध में हमेशा से कहता रहा। आज फिर उसके सम्बन्ध में और कुछ बातें कहता हूं। जीवन को आनन्दमय बनाना होगा। दुःख-कष्ट, रोग-शोक, जन्म-मृत्यु आदि सब अवस्थाओं में अपने आनन्दमय स्वरूप को बनाए रखना होगा। जो लोग तुम्हारे सम्पर्क में आएंगे, उन्हें भी आनन्द में डुबोए रखना होगा। वही होगा आदर्श जीवन। संसार में पत्नी, पुत्र, कन्या, नाम, यश, ख्याति, प्रतिष्ठा सब कुछ रहेगा, परन्तु तुम स्वयं को उन सब में निर्लिप्त रखोगे और ऊपरी तौर पर कहोगे यह सब कुछ "मेरा" "मेरा" तथा अन्तर में याद रखोगे कि कोई तुम्हारा नहीं है, सब कुछ भगवान का है। यह भाव ही तुम लोगों को कर्म के बंधन से मुक्त करेगा। तुम लोग मधुर व्यवहार और स्नेहपूर्ण आचरण करोगे तथा स्वयं को ऐसा बनाओगे कि धर्म-पत्नी समझेगी कि मेरे पति की तरह देवतुल्य पति और किसी के भाग्य में नहीं है। बच्चे समझेंगे कि हमारे पिता की तरह स्नेहपरायण पिता और किसी के नहीं हैं। भाई समझेगा कि मेरे भाई की तरह भातृ-वत्सल भाई और किसी को नहीं मिला। राजा समझेंगे कि ऐसी प्रजा और किसी की नहीं है। सबसे प्रेम कर उनके जीवन को मधुर बनाना होगा। संसार में जिसको जितना देय है उसे समझा कर उतना दे देना होगा, पर अपने लक्ष्य में अटल रहना होगा। यही आदर्श गृहस्थ का कर्त्तव्य है। इधर मन ही मन सोचना कि तुम किसी के नहीं हो और कोई तुम्हारा नहीं है। जिस प्रकार किसी के साथ बंध न जाओ, उस बारे में "आर्य दर्पण" में "वेदान्ती का घर संसार" (वैदान्तीकेर गृहस्थली) नामक निबन्ध का पाठ कर विस्तार से जानो।"

युग समस्या में गृहस्थों का कर्त्तव्य

यह गृहस्थों के लिए बड़ा ही कठिन समय है। यह विरोध का युग है। राष्ट्र में, समाज में, परिवार में, धर्म क्षेत्र में, चारों ओर

विरोध है। पत्नी पति के मत के अनुसार नहीं चल रही है, पुत्र पिता की बात नहीं सुन रहा है। चारों ओर विरोध और असामंजस्य है। दूसरी ओर देश के नेता लोग समाज के संस्कार में लगे हुए हैं। इस समय तो समाज है ही नहीं, फिर उसका संस्कार क्या करेंगे? वरन् देश में जो कुछ भी अनुशासन बचा है, ये लोग उसे समाप्त कर अधिक अव्यवस्थित कर रहे हैं। जिस ओर सुविधा देखते हैं उसी और चल रहे हैं। राष्ट्रीय उन्नति का मार्ग अभी तक प्रशस्त नहीं हुआ है। हमारे देश के लोग केवल शोर-शरावे के बीच हरि हरि करते हुए प्रतिदिन नए नए मतवादों के पीछे भाग रहे हैं। न शांति है, न आनन्द। सभी खामख्याली में मतवाले हो रहे हैं और इसके कारण बहुत परेशान भी हो रहे हैं।"

"मेरा उपदेश यह है कि तुम लोग स्वयं को सभी प्रकार के विरोध से अलग रखो। तुम लोग किसी की बात का प्रतिवाद मत करो और किसी का विरोध भी मत करो। किसी प्रकार का विरोध या वाद विवाद क्यों न हो, तुम लोग प्राचीन पंथी बन कर चलो, न पक्ष में जाओ, न विपक्ष में। जो निरपेक्ष रहता है, उसे अधिक निर्यातना नहीं भोगनी पड़ती है। अपने-अपने धर्म की नींव को सही रख कर, अपने रीति-रिवाजों को बनाए रखकर अधिकांश लोग जिस रास्ते पर चल रहें हैं, वही रास्ता अपनाओ। संसार में जो भी सत्य का अवलंबन लेकर चलता है, उसे कुछ न कुछ उत्पीड़न सहना पड़ता है। यदि न्याय मार्ग पर चलते हुए समाज का थोड़ा बहुत अत्याचार सहन भी करना पड़े, तो वही सही है। क्योंकि मैं जिस भाव की प्रतिष्ठा करना चाहता हूं, समाज उसका विरोधी है। आदर्श गृहस्थ जीवन की प्रतिष्ठा ही मेरा मुख्य उद्देश्य है। पूर्वकाल में देश में इसी का प्रचलन था जिसके कारण देश हर दृष्टि से समृद्ध था। आज वह नहीं है जिसकी वजह से देश का अधःपतन हुआ है। तुम लोग ऋषियों द्वारा प्रवर्तित प्राचीन पथ में चलकर आदर्श गृहस्थ बनो, यही मेरी आशा और आर्शीर्वाद है।"

"आदर्श गृहस्थ बनना हो, तो पहले अपने संस्कारों पर दृष्टिपात करना होगा। मेरे शिष्य भक्तों के बच्चे जब बड़े हो जाते हैं, तो देखा

जाता है कि वे अपने माता-पिता का अनुशासन मानकर नहीं चल रहे हैं। पर हर माता पिता चाहते हैं कि उनका पुत्र अच्छा बने, आदर्श व चरित्रवान हो। माता-पिता की हार उनके अन्धे स्नेह में है। उनमें वहुत सी कमजोरियां हैं। ऐसे कितने माता-पिता हैं जो ऐसा आदर्श प्रस्तुत कर पाते हैं कि पुत्र को अबाध्य जानकर उसका त्याग किया हो। परिवार के जो कर्ता हैं, पहले उन्हें आदर्शवान बनना होगा। सन्तान के स्नेह में अन्धे होकर, उनकी अन्यायपूर्ण मांगों को प्रश्रय देने के पश्चात कितने लोग मेरे पास आकर अपना दुखड़ा रो रहे हैं, उसकी कोई गणना नहीं है। यह सब पुरुषत्व का परिचायक नहीं है। पत्नी, पुत्र और परिवार के संबंध में सभी को दृढ़ बनना चाहिए।"

"तुम लोग आदर्श गृहस्थ बनो, यही मेरी आन्तरिक कामना है। गृहस्थों से ही समाज बनता है। समाज को जागृत करना हो तो आदर्श गृहस्थों का विशेष प्रयोजन है। भगवान अथवा गुरु की कृपा का अर्थ यह नहीं है कि संसार में बाल-बच्चों को लेकर आनन्द में दिन बिताना है। प्रसन्न चित्त से विधि द्वारा निर्धारित प्रारब्ध का भोग कर सही अर्थ में लक्ष्य पथ पर अग्रसर होना ही सदगुरु अथवा भगवान की कृपा है। तुम लोग आदर्श पति और आदर्श पिता का कर्त्तव्य पूरा कर आदर्श गृहस्थों के रूप में समाज में प्रतिष्ठत होओ। मैं भी इसी कामना को लेकर गुरुआई का अभिमान वहन कर रहा हूं। मैं प्रत्येक शिष्य के हृदय में भगवत दर्शन करने की तीव्र इच्छा को लेकर प्रतीक्षा कर रहा हूं। तुम लोगों की भुजाओं में शक्ति और हृदय में भक्ति का विकास हो। तुम्हारे घरों में पुनः शंकर और गौरांग का आविर्भाव हो।"

"तुम लोग आदर्श संसार की स्थापना करो। मूल में मुझे प्रतिष्ठित कर मेरे संसार का कार्य करते जाओ। यह याद रहे, घर-बार, धन-संपदा सब कुछ प्रभुश्री का है और तुम लोग सेवक मात्र हो। तुम लोगों की प्रत्येक सांस की गति प्रभुश्री के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हो।"

प्रभुश्री ने हमें उपदेश दिया है कि हम लोग उन्हें संसार का वास्तविक कर्ता या अभिभावक मानकर उनके सेवक के रूप में घर

संसार के कर्त्तव्य को पूरा करें। जिस परिवार के मुख्य कर्ता प्रभुश्री हैं और सेवक अहंकार और अभिमान से रहित है, उसमें हमने देखा है कि दारुण पुत्र शोक और आत्मीयस्वजनों के वियोग में भी किसी ने आँसू नहीं बहाए हैं। वरन् उस समय सेवक ने सोचा है कि जिसकी चीज थी उसे सौंप कर मैं जिम्मेदारी से मुक्त हो गया। ऐसा भी देखा जाता है कि वे गृहस्थ अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हुए अत्यन्त आनन्द में अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होते अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होते हैं। ऐसा संसार ही आदर्श संसार है। प्रभुश्री प्रायः कहा करते थे, "रामायण और महाभारत युग का आदर्श संसार ऐसा ही था।"

संसार के घात प्रतिघात में जिस समय किसी व्यक्ति में संसार के प्रति वैराग्य पैदा हो जाता था, तो उस समय प्रभुश्री उसे सांत्वना देते हुए कहा करते थे, "वत्स, यह बात जान लो कि संसार आश्रम भयंकर और कठोर है। तथापि संसाराश्रम जीवन की उन्नति की सीढ़ी है। संसार की परीक्षा में उत्तीर्ण न होने पर माँ संतान को गोद में नहीं लेती हैं। माया के क्षेत्र, इस संसार में किस ओर जाकर तुम माया को पार कर सकते हो। मां की शरणागत होकर संसार की आग में तपो। माँ एक दिन अवश्य रास्ता खोल देंगी। रोग में, शोक में, विपदा आपदा में उन्होंने तुम्हें जिस तरह रखा है, उसी में संतुष्ट रहने का अभ्यास करो। भगवान ने संसार के भीतर से होकर आध्यात्मिक राज्य का रास्ता बनाया है।"

आदर्श गृहस्थ जीवन के निर्माण के लिए कर्त्तव्य के प्रति कैसी निष्ठा, सुख और दुख के प्रति कैसे समान भाव और निर्भरता आदि दैवी-गुणों की आवश्यकता होती है, प्रभुश्री की उपदेशवाणी का पाठ करने से वह सब समझा जा सकता है। यदि दैनन्दिन जीवन में व्यक्तिगत आशा और आकांक्षा के अनुसार घर-बार, धन-संपदा, सब कुछ मिल जाती है, तब तो प्रभुश्री का गुणगान करोगे, अन्यथा उसमें थोड़ा सा व्यक्तिक्रम होने पर उदास हो जाओगे, यह सही अर्थ में प्रभुश्री की कृपा की अनुभूति का लक्षण नहीं है। यदि अनुकूल और प्रतिकूल, दोनों परि-

स्थितियों में भाव ठीक रहता है, तो समझना होगा कि हमने सही अर्थ में प्रभुश्री की कृपा प्राप्त की है।

हम लोग निष्काम कर्म से तथा शुद्ध चित्त में जगत में प्रभुश्री के भाव का प्रचार करते जायेंगे। जो लोग प्रभुश्री से प्रेम करते हैं, वे कभी भी अकर्मण्य या आलसी बन कर नहीं रह सकेंगे। गृहस्थों के प्रति उपदेश के बहाने प्रभुश्री ने पुनः कहा है—"संसार में सावधान होकर चलो। सर्वसाधारण के साथ मत घुल मिल जाओ और कोई तुम्हें कितना भी पराया समझे, तुम किसी को पराया मत समझो। मन ही मन सोचो, क्या पापी, क्या पुण्यात्मा, सब जीव भगवान के हैं, अतः तुम्हारे अपने हैं। अतः सब के मंगल के अतिरिक्त किसी के भी अनिष्ट का विचार मत करो। सब से प्रेम करो। सबको देखकर खुश होओ। अपने साधन और सुविधा के अनुसार सबका उपकार करो। अपकारी पर उपकार से विजय प्राप्त करो। दुर्जन को क्षमा से पराजित करने पर ही तुम आत्मरक्षा के विहित उपाय कर सकोगे। मजाक में भी कभी काम क्रोध या मिथ्या का सहारा मत लो।"

गृहस्थ शिष्य भक्त प्रभुश्री के पास तरह-तरह की प्रार्थनायें लेकर आते थे। १३४१ बंगाब्द में भक्त सम्मेलन के अवसर पर प्रभुश्री ने कल्पतरु बनकर सब से उनकी इच्छाओं की जानकारी ली और उनके पूरा होने का आशीर्वाद देकर प्रार्थना करने के संदर्भ में अपना विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था—

"प्रार्थना कैसे की जाती है, वह तुम लोग नहीं जानते हो। तुम्हारा मांगना ठीक प्रकार का नहीं है। तुम्हारी अन्तरात्मा क्या चाहती है, वह तुम लोग नहीं समझ पाते हो। क्या मिलने से तुम्हारा मंगल होगा, तुम लोगों को उसकी धारणा नहीं है। इधर-उधर की चीजें मांगकर अपनी मुख्य मांग को नष्ट कर डालते हो। तुम्हारे मांगने के दबाव में भगवान एकदम व्यग्र हो जाते हैं। आज यह चाहिए, कल वह चाहिए तो अगले दिन कुछ और चाहिए। इस प्रकार मांगते-

मांगते भगवान के दरबार में तुम्हारे आवेदन पत्रों की फाइल बन चुकी है। भगवान क्रमानुसार एक के बाद दूसरे को पूरा करते जा रहे हैं। कोई भी प्रार्थना बाकी नहीं रहती है। तब यह भी ठीक नहीं कि आज जो मांगा वह तत्काल मिल जाएगा। इससे पहले जो प्रार्थनाएं की थीं, वह सब पूरी होने के बाद हो तो आज की प्रार्थना पूरी होगी। तुम लोगों की वर्तमान अवस्था भी तुम्हारे मांगने का परिणाम है। इस संबन्ध में एक कहानी कहता हूं सुनो —

"सर्दी के मौसम में किसी व्यक्ति को एक कंबल की जरूरत पड़ी। ठंड से बहुत ही कष्ट होगा, यह सोचकर उसने राज दरबार में कंबल के लिए आवेदन पत्र दिया। इस आवेदन के पहले उसके और अनेक आवेदन पत्र लंबित पड़े थे। वहां का नियम था कि पहले के प्राप्त आवेदन पत्रों को मंजूर करने तक बाद के आवेदन पत्रों को लंबित रखना होगा। यहां पर भी वही हुआ।

पहले की प्रार्थनाएं मंजूर होते-होते इस प्रार्थना की बारी आने तक गर्मियों का मौसम आ गया था। इन गर्मियों में उस पर कंबल का भार पड़ा। अपने सुख के लिए मांगी गई चीज आज उसके लिए दुःख का कारण बनी। ठीक वैसे ही तुम्हें जो दुःख मिल रहा है किसी दिन तुमने उसे अपने सुख के लिए मांगा था। समय के फेर से आज वह दुःखदायी बन गयी। इसलिए जो चीज मांगनी है उसके स्वरूप (अच्छाई-बुराई) को न समझने तक नहीं मांगना है। जो कुछ मांगना है, समझ-बूझ कर मांगना है।"

"जब तुम लोगों ने संकल्प करके गुरु के रूप में मेरा वरण किया है और मैंने तुम्हें शिष्यों के रूप में ग्रहण किया है, तब मैं स्वयं उसका विधान करूंगा, इस बात पर दृढ़ विश्वास रखो। पहले विश्वास के लिए ही प्रार्थना करनी है। विश्वास आने पर निर्भरता आ जाएगी। उस समय और चाहिए क्या? तुम लोग ज्ञान, भक्ति व प्रेम सब कुछ पाओगे। इसलिए कहता हूं, तुम लोग विश्वास के साथ मुझ पर निर्भर करो, सब भार मुझ पर ही छोड़ दो। तुम लोगों को कुछ मांगना

नहीं होगा। प्रार्थना नहीं करनी होगी। जिसमें तुम लोगों का हित होगा, जिसमें मंगल होगा, मैं तुम्हारे लिए उसकी व्यवस्था अवश्य करूंगा।"

(३) जयगुरु नाम

प्रभुश्री ने सारस्वत संघ के शिष्य-भक्तों के लिए एक असांप्रदायिक नाम प्रदान किया है। इच्छा करने पर कोई भी व्यक्ति यह नाम ले सकता है, क्योंकि इस नाम में जिनका गुणगान किया गया है, वे सभी के इष्ट या गुरु हैं। किसी भी संप्रदाय के लोग आसानी से यह नाम ले सकते हैं। प्रभुश्री ने "जयगुरु" नाम में प्राण प्रतिष्ठा की है। यह नाम सिद्ध नाम है। दूसरे नाम लेने में हो सकता है सांप्रदायिक भावना की बाधा आ सकती है। परन्तु इस नाम पर किसी को आपत्ति नहीं है। क्योंकि गुरु सभी के हैं। बिना गुरु के कोई किसी भी कार्य में सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। यहां तक कि जो नास्तिक हैं, उनके भी गुरु हैं। वरना उन्हें नास्तिकवाद की शिक्षा मिली कहां से ? सही अर्थ में श्रीगुरु की जय नहीं होने से शिष्य की जय होगी भी कैसे ? "जय-गुरु" का मुख्य अर्थ है कि हमारी स्वार्थपूर्ण इच्छाओं का अंत हो और श्रीगुरु की महान इच्छा हमारे भीतर खिल कर विजयी हो।

प्रभुश्री ने जगद्गुरु के आसन की प्रतिष्ठा और "जयगुरु" महा-नाम के प्रचार, इन दोनों से गुरुवाद की प्रतिष्ठा की है। हिन्दू मात्र गुरुवाद को स्वीकार करता है। इसलिए उनकी धारणा थी कि गुरुवाद के माध्यम से सामंजस्य लाना और हिन्दुओं को संगठित करना संभव है।

प्रभुश्री के शिष्य-भक्तों ने "जयगुरु" नाम माहात्म्य को जिस प्रकार अनुभव किया और प्रत्येक क्षेत्र में उनका आश्चर्यजनक फल पाया है, उसके कम दृष्टांत नहीं हैं।

जयगुरु नाम माहात्म्य

भगवान के अनन्त नामों में से गुरुनाम अन्यतम है ! गुरुनाम अनादि है। त्राणकर्ता और उद्धार कर्ता गुरु ही हैं। अतः गुरु नाम

तारक ब्रह्म के नाम के अन्तर्गत आता है। गुरुनाम में उद्धार करने की महान शक्ति है। नाम और नामी अभेद है। अतः गुरु और गुरुनाम अभिन्न हैं। जयगुरु नाम लेते ही गुरु शक्ति भक्त के भीतर प्रवेश करती है। जो यह नाम लेता है, वह गुरुशक्ति की कृपा अर्थात् स्वरूप ज्ञान प्राप्त करता है। इस नाम से जिन के प्रति लक्ष्य रखा गया है, वे सभी के गुरु और इष्ट हैं। यदि कम से कम दो-चार सेवक इस नाम को ग्रहण करके हृदय से इस सिद्ध मंत्र की साधना में लग जाएंगे तब इस नाम की अद्भुत शक्ति महसूस की जा सकेगी। नाम में प्राण शक्ति का संचार होने अथवा अन्तर में इस नाम का जागरण या स्फुरण होने से नामी के दर्शन प्राप्त होते हैं। इस नाम का प्रचार करने से पहले इस सिद्ध नाम के एक-दो एकनिष्ठ सेवक और जापक होने चाहिए। इस नाम की शक्ति का आकर्षण अतुलनीय है। मनुष्य के विश्वास और भक्ति से मंत्र या नाम की शक्ति का जागरण होता है। जयगुरु नाम के जप में अभ्यस्त हो जाने से देखोगे कि नाम की शक्ति से नाम का जप निरन्तर अविराम गति से चल रहा है। नाम का प्रचार करने से पहले जापकों को इस नाम में रुचि होनी चाहिए। इसका यथाविधि अभ्यास करने से इस सिद्धमंत्र का चैतन्य होता है। मंत्र चैतन्य होने से सदगुरु साधक को दर्शन प्रदान कर उसे आत्मज्ञान रूपी दीक्षा देते हैं।

एक भक्त ने स्वप्न में देखा कि वह पुरी में प्रभुश्री के आश्रम नीलाचल कुटीर में आया हुआ है। कुछ कारणवश प्रभुश्री के सेवकों के साथ उसका झगड़ा हो जाने पर उसने ऊपरी तल में जाकर प्रभुश्री को इस बारे में अवगत कराया। उसकी शिकायत सुनकर प्रभुश्री बहुत ही क्रोधित हो उठे और उग्र भैरव मूर्ति धारण कर शिष्य को दण्डित करने के लिए आए। उन्होंने दीवार पर एक कठिन प्रश्न लिख कर क्रोध से कहा, "तुम शीघ्र इसका उत्तर दो, वरना मैं तुम्हें भीषण दण्ड दूंगा। वह शिष्य प्रभुश्री की उग्रमूर्ति देख कर भय के मारे जड़ बनकर निरन्तर "जयगुरु" नाम का जप करने के अतिरिक्त कोई उत्तर नहीं दे सका। प्रभुश्री उस उग्रमूर्ति में शिष्य की ओर तीक्ष्ण

दृष्टि से देखते हुए उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। अब शिष्य उस भयंकर मूर्ति के सामने और स्थिर नहीं रह सका, और वह अनवरत "जयगुरु" नाम का जप करने लगा और दण्ड की प्रतीक्षा करते हुए एकटक प्रभुश्री की ओर निहारते रहने पर बाध्य हुआ।

नाम के प्रचंड जप के साथ-साथ प्रभुश्री की उग्रमूर्ति की भीषणता भी धीरे-धीरे कम होती गई। अंत में पहले की तरह सुन्दर मूर्ति धारण कर प्रभुश्री ने शिष्य को गोद में लेकर कहा, "तुम्हारे नाम जपने की प्रचण्ड शक्ति देखकर मैं तुम्हें दण्डित नहीं कर सका।" उसके बाद वे अदृश्य हो गए।

बाघ के सामने से बचना

पांच-छः लोग जंगल से होकर कहीं जा रहे थे। अचानक उनके सामने एक बाघ आ गया। उनमें से एक व्यक्ति प्रभुश्री का शिष्य था। वह जोर-जोर से "जयगुरु" "जयगुरु" का उच्चारण करने लगा। यह सुनकर दूसरे लोग न चाहते हुए भी बाध्य होकर उसके साथ 'जयगुरु" नाम का जप करते हुए अन्तिम घड़ी की प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु आश्चर्य की बात है कि बाघ धीरे-धीरे उनके सामने से हट कर चला गया।

श्रीमूर्ति का पसीने से तर हो जाना

यह लेखक की अपनी अनुभूति है और घटना प्रभुश्री के देहत्याग के बाद की है। नीलाचल में हुए "भक्त सम्मेलन" का चौथा दिन था, वह दिन विदाई दिवस था। हम लोग सम्मेलन के पहले दिन प्रभुश्री की श्रीमूर्ति को "नीलाचल कुटीर" से एक जुलूस के रूप में लेकर आए थे। विदाई के दिन भी उन्हें उसी तरह वापस पहुंचाना था। अतः हम लोग सुसज्जित मोटर पर प्रभुश्री को बिठा कर मृदंग, करताल और नगाड़े बजाते और जयगुरु कीर्तन करते हुए शीघ्रातिशीघ्र नीलाचल के पथ पर जा रहे थे। अविश्रांत रूप से चल रहे "जयगुरु" महानाम के कीर्तन और उद्दाम नृत्य के प्रति सभी नीलाचल वासियों की दृष्टि आकृष्ट हुई। जगन्नाथ मन्दिर के सामने कीर्तन इतना जम गया कि

बाहर के दर्शक भी स्थिर होकर नहीं रह सके। जिसने वह दृश्य नहीं देखा है, वह उसकी कल्पना तक नहीं कर सकता। हमारा जुलूस कचहरी वाले रास्ते पर जा रहा था। तभी डाक घर के सामने अचानक मोटर की गति रुक सी गई। इसका कारण जानने के लिए मैंने स्वयं जाकर देखा कि श्रीमूर्ति के जिस भाग को छतरी से नहीं ढका गया था, वह भाग अर्थात् नाभि से लेकर नीचे पैरों तक धूप में पसीने से तर-बतर हो रहा है। जिस प्रकार धूप लगने से जीवित मनुष्य के शरीर से पसीना निकलता है, प्रभुश्री की श्रीमूर्ति से भी वैसे ही पसीना बह रहा है। वहां पर उपस्थित लोग श्रीमूर्ति के शरीर से अविरल निकलते हुए पसीने को आश्चर्य से देखते ही रह गए। सभी ने प्रभुश्री का प्रत्यक्ष आविर्भाव स्वीकार किया। हम लोगों ने सामान्य मूर्ति समझ कर उस श्रीमूर्ति पर पंखा झलने का प्रबन्ध नहीं किया था। हम लोगों ने प्रभुश्री को आश्रम में ले जाकर उनके लिए निश्चित आसन पर उन्हें बिठाया और कुछ देर तक उन्हें पंखे से हवा की। तब कहीं धीरे-धीरे मूर्ति से पसीने का बहना बंद हुआ।

इस नाम की शक्ति, इस नाम का आकर्षण अतुलनीय है। सर्वप्रथम नाम को जागृत रखने की चेष्टा करना है। उसके बाद देखोगे कि इस नाम ने स्वयं को सदैव जागृत रखा है। "जयगुरु" नाम का अभ्यस्त हो जाने से ऐसा महसूस होगा कि नाम की शक्ति से अंतर के भीतर का जप चल रहा है।

इसलिए "जयगुरु" नाम माहात्म्य में इसका निम्न प्रकार वर्णन किया गया है—

महामंत्र सिद्ध नाम जयगुरु जय,
अनादि का आदि नाम जयगुरु जय,
असांप्रदायिक नाम जयगुरु जय,
सर्वसंप्रदाय नाम जयगुरु जय।

●

उन्नीसवां अध्याय

प्रभुश्री द्वारा मातृ समाज का उद्बोधन

पुरुष भक्तों को उद्वोधित करने के लिए प्रभुश्री के प्राण कितने व्याकुल थे, वह हम उनके पत्रों को पढ़ने से जान सकेंगे। प्रभुश्री दूसरों के मन की पीड़ा को समझ कर और दूसरों के दुःख से दुःखी होकर उसके प्रतिकार का उपाय बताने में सिद्धहस्त थे। ऐसी बात नहीं है कि उन्होंने केवल पुरुष भक्तों को ही उद्बोधित किया है। उन्होंने इस बात के लिए भी पूरी चेष्टा की है कि मातृ समाज अपने क्षुद्र स्वार्थ को तिलांजलि देकर और विलासिता को तुच्छ समझ कर आदर्श युग की नारियों की तरह गौरव का स्थान प्राप्त करे। इस संसार में रहते हुए पति और पत्नी जिस प्रकार से साधना के बल पर आदर्श गृहस्थ जीवन-यापन कर सकेंगे प्रभुश्री ने उन्हें तदनुरूप शिक्षा प्रदान की है। स्वयं को गठन यज्ञ में नियुक्त कर प्रभुश्री ने समझा कि केवल पुरुष भक्तों को ही उद्वोधित करने से ही काम नहीं चलेगा, नारियों को भी समान भाव में उद्बुद्ध किए बिना, उन्हें आदर्श में अनुप्राणित किए बिना आदर्श परिवार का गठन करना संभव नहीं होगा। युग धर्म के अनुसार सभी क्षेत्रों में परिवर्तन होते हैं। भारत के हिन्दू समाज में युग के प्रभाव से अनेक परिवर्तन होते आए हैं, पर मध्य युग से हिन्दू समाज में नारी घृणित, अपमानित और पददलित

होती आ रही है। इस नारी जागरण के समय प्रभुश्री ने नारी प्रगति की एक दिशा उन्मुक्त कर दी है।

उन में नारियों के प्रति ऐसी ममता होने का कारण यह है कि उन्होंने अपनी पत्नी सुधांशुबाला का अवलंबन लेकर सिद्धि प्राप्त की थी और भगवान को पत्नी के रूप में पाया था। साधना के क्षेत्र में भी नारियों ने उनकी बहुत सहायता की है। कोटा के जंगल में एक योगिनी ने उन्हें योगी गुरु का पता बताया था। उसके बाद यज्ञेश्वर बाबू की पत्नी सरयू देवी ने उनकी शिष्या का कार्य किया था। फिर महाभावमयी गौरी माँ से भावतत्त्व की शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने प्रेममयी भगवती को रक्त मांस के स्थूल शरीर में पाया था। प्रेममयी की प्रेरणा से उनसे वर प्राप्त कर वे गुरु बनकर संसार में आए। उसके बाद उन्होंने हेमलता देवी को तांत्रिक संन्यास देकर उन्हें महाभाव का अधिकारी बनाया था। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी उन्होंने महिलाओं को अभिनव साधना प्रदान कर किस प्रकार उन्नत करा दिया था, इससे पहले हमने उस पर प्रकाश डाला है।

महिलाओं ने प्रभुश्री से साधना की शिक्षा लेकर किस प्रकार आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त की है, हम लोगों ने अतिशयोक्ति के आरोप के डर से यहां पर उसकी पुनरावृत्ति नहीं की है। परन्तु यहां पर मातृ समाज के उद्‌बोधन के लिए उनके द्वारा एक महिला भक्त के पास भेजे गए पत्र का अनुवाद दिए बिना नहीं रहा जा सकता।

"मेरी योग्य शिष्याओं की तरह संयत बनो और चरित्र का गठन करो। तुम लोग माँ हो, तुम लोग अपना रमणीत्व भूल कर जननी का स्थान लो। अपने भीतर जगज्जननी प्रेममयी की उपलब्धि करो। माँ, यह संसार भोग विलास का स्थान नहीं है। यह कर्म क्षेत्र है। कर्म के प्रभाव से परलोक का परदा उठाना होगा। भोग से वह और जम कर पथ का रोड़ा बनेगा। वासना और कामना बन्धन का कारण है। एकमात्र भगवत चरणारविन्द के अतिरिक्त किसी अन्य वासना कामना को मन में स्थान मत दो। जो अभाव से गठित है, वहां पर पूर्ण सुख

और शांति की आशा रखना विडम्बना मात्र है। यहां पर एक तरफ हंसी है तो दूसरी तरफ रोना। तब निरन्तर सुख और शांति कहां है ? सुख तो उस चिदानन्दमय भगवान के श्रीचरणों में है। अतः किसी भी अवस्था में उन चरणों से मुंह मत मोड़ो। मैं तुम्हें अपनी आनन्दमयी माँ के रूप में देखना चाहता हूं। मैं तुम्हारी साकार मूर्ति में अपनी निराकार मां को देखकर अपनी गुरुआई को सार्थक बनाऊंगा। जिस समय रमणी का हृदय कामगंध से रहित माँ की तरह पवित्र और प्रेमपूर्ण हो जाता है, उस समय हृदय में जगज्जननी का आवेश होता है। माँ, पत्नी और कन्या एक हैं। ये सब महामाया के भिन्न-भिन्न भावों का विकास मात्र है। जननीत्व में रमणी जीवन की पूर्णता है। यह बात भुल मत जाना।"

प्रभुश्री ने अपनी शिष्याओं के बीच भाव का आदान-प्रदान करने के उद्देश्य से भक्त सम्मेलन में "महिला अधिवेशन" की व्यवस्था की थी। उन्होंने आश्रम और मठ के अधीन गौरांग अनाथ निकेतन में निराश्रित महिलाओं को भी स्थान देकर उनका भार योगमाया देवी पर सौंपा था और उन्हें साधना-भजन की शिक्षा देकर उन्नत कराया था तथा विविध उपदेश प्रदान किए थे।

सधवाओं के प्रति उपदेश

"माँ, अपने हृदय को मातृत्व से पूर्ण करो। रमणीत्व शैतान की जूठन है। इसलिए जननीत्व के बिना भगवान की पवित्र मूर्ति किसी को नहीं दिखाई देगी। मैं आशीर्वाद देता हूं, तुम्हारे भीतर मातृत्व प्रतिष्ठित हो। तुम लोग हमेशा के लिए मातृत्व में निमग्न हो जाओ।"

"पति की सेवा और संतान का पालन-पोषण करना गृहिणी का स्वधर्म है। इसलिए तुम्हारे पास साधना-भजन के लिए बहुत कम समय है। अतः सदैव जप करने का अभ्यास करो। मुझ पर पूर्णतः निर्भर रहने के अतिरिक्त तुम्हारे लिए कोई और उपाय नहीं है।"

"पति नारी का गुरु है। मन, वचन और कर्म से उनके आदेश का पालन और उनकी सेवा करना ही नारियों का परम धर्म है। पति

को गुरु ब्रह्म समझ कर भगवान पर निर्भर कर सकने से नारी जन्म सार्थक हो जाएगा।"

"इस संसार में राज रानी से लेकर भिखारिन तक, सभी को एक जैसा अभाव है। भाव राज्य में न पहुंचने तक यह अभाव किसी का भी नहीं मिट सकता। जीव जगत को प्रेम करना सीखो, मातृत्व का विकास करो, तब कहीं तुम जगत को आनन्दमय देख सकोगी।"

"बाल-बच्चों, पोते-पोतियों, पांच जनों को लेकर संसार बसाने में विपद-आपद का आना अवश्यंभावी है। पुराण इतिहास के युग से वर्तमान युग तक कोई भी, यहां तक कि पुण्यात्मा लोग भी आराम से संसार में नहीं रह सके। वह इस नश्वर जगत में असंभव है। अतः असंभव की आशा रखने पर पग-पग पर निराश होना पड़ेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। सीता, शैव्या और चिता के बारे में सोचने पर सुख चैन की बात मुंह में लाने में क्या लज्जा महसूस नहीं होगी? अतः ज्ञाननेत्र से जिस प्रकार संसार की लीला को समझ सको, उसके लिए प्रार्थना करो।"

विधवाओं के प्रति उपदेश

"संसार की जो नित्य घटना है, उससे विचलित होने से कैसे काम चलेगा? प्रतिदिन कितनी नारियां विधवा होती हैं। भगवान की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। अतः उनके मंगल विधान से जो कुछ हुआ है, उसके गारे में चिंतित होना मूर्खता का कार्य है।"

"पति के साथ भोग विलास में मतवाली होकर बच्चे पैदा करना ही क्या नारी जीवन का एक मात्र कर्त्तव्य है। प्रातः स्मरणीया रानी भवानी, शरत सुन्दरी, हर सुन्दरी स्वर्णमयी आदि विधवा नारियों की तरह नारी समाज में ऐसी कितनी सधवा नारियां हैं जो समाज के सभी वर्गों के लोगों की श्रद्धा और भक्ति आकर्षित करने में

सक्षम हैं। अतः विधवा बनना पाप नहीं है, वरन् पुण्य का उद्बोधन है।"

"सधवा नारियां पति के भीतर भगवान का और विधवा नारियां भगवान के भीतर पति का चिंतन करेगी। यह मेरा अभिमत है। अन्यथा धर्म या भगवान को छोड़कर केवल मृत पति का चिंतन करने से तनिक भी उन्नति नहीं होगी।"

"यदि विश्वास करते हो कि भगवान ही पति, पिता, पुत्र के रूप में प्रकाशित हैं, तब पति की मृत्यु के बाद तो वे भगवान के साथ मिल चुके हैं। तब तो भगवान का पति के रूप में ध्यान कर और उन्हें सच्चा प्रेम करने के साथ-साथ अंतर में भजन करने से तुम्हारा बहुत मंगल होगा। यहां तक कि तुम भगवान को पति के रूप में पा सकोगी। ऐसी घटनाएं मैं जानता हूं, इसलिए यह सत्य है।"

"परलोक में चरम मिलन के लिए तैयार होकर बाकी कुछ दिन बिता दो। यदि प्राणों में नहीं पाया तो बाहर पाना व्यर्थ है। विरह के विना प्राणों का मिलन नहीं होता है। अभाव में भाव मिलता है। मैं आशीर्वाद देता हूं, तुम लोग अपने अन्तर में अनुभूतियाँ प्राप्त करो।"

आशीर्वाणी

"वत्स! बाह्य विषय मात्र ही माया है। तुम लोग मुझे अंतर में देखने का अभ्यास करो। मेरे बारे में सुन-सुन कर तुम्हारे मन में मेरे संबंध में जो काल्पनिक धारणा उत्पन्न हुई है, उस कल्पना से मेरी एक मनोमयी मूर्ति का गठन कर उस मूर्ति को हृदयरूपी सिंहासन पर विठाओ और अपने चिंतन से उसे देखने का अभ्यास करो। ध्यान से इस मूर्ति की प्रत्यक्ष उपलब्धि कर सकने से तुम्हारा सर्वार्थ सिद्ध होगा, सभी अभाव दूर हो जायेंगे। भक्ति और आदर के साथ उस मूर्ति की मानसिक सेवा-पूजा कर उसकी सुश्रुषा करो। हृदय को इस भाव में पूर्ण रखने की चेष्टा करो। अन्तर में उनका स्मरण कर बाह्य

शरीर से बाहरी कर्त्तव्य का पालन करने में लगे रहो। जिस प्रकार अन्तर में बाहरी चीजों का दाग न लगे, उसके प्रति विशेष सतर्क रहो।"

"माँ, मेरा स्वतंत्र अस्तित्व भूलकर—मैं तुम्हारे शरीर के भीतर हूं, यह भी भुला कर, ऐसा चिंतन करो कि मैं तुम्हारे हृदय में हूं। इसके परिणामस्वरूप तुम्हारे और मेरे बीच की दूरी कम हो जाएंगी। इस साधना से एक और विशेष साधना यह हैं कि तुम अपने पति के भीतर श्रीगुरु का दर्शन करने का अभ्यास करो। ऐसा समझो कि मैं तुन्हारे पति के हृदय में हूं। मुझे पति के हृदयस्थ समझ कर पति को भगवान के ज्ञान से प्रेम कर सकने और उस भाव में आत्मविभोर हो सकने से भगवत-भक्ति प्राप्त कर सकोगी। पति की सेवा और पति के लिए व्याकुलता गुरु सेवा और गुरु के लिए व्याकुलता में बदल जाएगी। ऐसा अनुभव कर सकने से मानव जन्म और नारी जन्म सार्थक हो जाएगा। प्राणों में आनन्द की हिलोरें प्रवाहित होंगी।"

"मैं आशीर्वाद देता हूं, तुम उस भाव की अधिकारी बनो। मैं इच्छामयी की इच्छा को तुम्हारे जैसी सरल मति शिष्याओं के सामने सरल भाव में व्यक्त कर रहा हूं। तुम उस सरल पथ में जाकर लक्ष्य स्थल में पहुंचने की चेष्टा करो।"

—प्रभुश्री

बीसवां अध्याय

तत्त्वमयी वाणी

भगवान ने संसार में एक सार्वभौम अभाव रखा है। वह यह है कि जीव किसी भी अवस्था में स्वयं को सुखी नहीं समझता है। यही भगबान की सर्वश्रेष्ठ दया है। जीव अभाव की पीड़ा से क्रमोन्नति के पथ पर जाता है और आत्मस्वरूप में पहुंचने से पहले तक किसी में भी तृप्त नहीं हो पाता है।

जो साधक भगवान से कुछ भी कामना नहीं करता है, भगवान उसे लेकर बड़ी उलझन में पड़ते हैं। उस साधक को स्वयं को देने के अतिरिक्त भगवान के पास और कोई उपाय नहीं रहता है। ज्ञानी कुछ नहीं चाहता है। वह सब कुछ ब्रह्ममय देखता है। फिर भक्त भी कुछ नहीं मांगता, क्योंकि उसने भगवान को सब कुछ सौंप दिया है, अपने लिए कुछ नहीं रखा है। उन पर सब भार सौंप कर निश्चिंत बैठा है। अतः उसके लिए भी मांगने के लिए कुछ नहीं है। इसलिए भगवान ब्रह्मत्व और इन्द्रत्व देकर भी उसे भुला नहीं पाते हैं। अन्त में उन्हें उस भक्त के सामने स्वयं को अर्पित कर देना पड़ता है।

देवराज इन्द्र मनुष्य से अधिक मात्रा में आबद्ध हैं। क्योंकि इच्छा करने पर मनुष्य आत्महत्या कर सकता है, कर्म का त्याग कर सकता है, परन्तु इन्द्र ऐसा नहीं कर सकते। उन्हें एक कल्प तक निश्चय ही कर्म का भार ढोना पड़ेगा। वे किसी भी प्रकार से उससे बच नहीं सकते।

मनुष्य सब से नीचे है, पर इच्छा करने पर वह सबसे बड़ा हो सकता है। इसलिए देवतागण भी मुक्ति पाने के लिए मनुष्य बनना चाहते हैं।

जिन लोगों की गति सत्यलोक में होती है, वहां पर वे एक कल्प तक आनन्द से बिता देते हैं। कल्प के अन्त में ज्ञान होने पर उनकी मुक्ति होती है। इस जगत में जितने श्रेष्ठ ज्ञानियों की कल्पना की जा सकती है, उन सभी का आदर्श सत्य लोक है। उसी प्रकार सत्य लोक की नारियां भी सभी प्रकार की कल्याणी और गुणवती नारियों का आदर्श है। पति-पत्नी के बीच दाम्पत्य भाव का जितना आनन्दमय विकास हो सकता है, उसका चरम उत्कर्ष सत्य लोक का जीव भोगता है। वहां सब कुछ चिदानन्द का विकास है। वहां आनन्द के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

भगवान को देखने की इच्छा रखना भी एक कामना है। देखने की इच्छा रखने पर वे दर्शन नहीं देंगे, क्योंकि कामना रहने पर भगवान नहीं मिलते। भगवान पर केवल निर्भर करने से ही उनकी कृपा से उनके दर्शन प्राप्त होते हैं। निष्काम और शुद्ध चित्त होने से वे अपने आप मिलते हैं।

समन्वयी वाणी

इससे पहले उल्लेख किया गया है कि प्रभुश्री का जीवन समन्वय का जीवन है। उन्होंने हमें समन्वय के सम्बन्ध में अनेक उपदेश प्रदान किए हैं। उनमें से कुछ समन्वयी वाणी उनके प्रणीत "प्रेमिकगुरु" ग्रंथ से उद्धृत की गई है।

शाक्त और वैष्णव

जब तक जीव आत्मतत्त्व भूल कर पार्थिव विषयों के भोग के प्रति आसक्त रहता है, तब तक उसकी बद्ध अवस्था है। अतः उसे बद्ध जीव कहा जा सकता है। उसके बाद भगवान की कृपा से वह आत्म तत्त्व जानकर रस की खोज में लगा रहता है। सर्वप्रथम माया से मुक्त होने

की चेष्टा कर अन्त में रस प्राप्त करने तक जीव जो साधना करता है, उस अवस्था को हिन्दू ऋषियों ने शाक्त और वैष्णव, ये दो नाम दिए हैं। परन्तु हमारे देश में बहुत दिन से शाक्त और वैष्णव आपस में झगड़ते चले आ रहे हैं। दोनों मतों के अनुयायी अपने-अपने मत को बड़ा मान कर अनेक युक्ति व प्रमाण देते रहते हैं। शाक्तवादी कहते हैं, "शक्ति ज्ञानं बिना देवी मुक्तिर्हास्याय कल्पते।" अर्थात् शक्ति ज्ञान के बिना मुक्ति की आशा रखना हास्यास्पद और व्यर्थ है। वैष्णववादी शास्त्रों से प्रमाण देते हुए कहते हैं कि एक मात्र वैष्णव ही मुक्ति का अधिकारी है। संसार के विभिन्न देश और भिन्न-भिन्न संप्रदाय अपने-अपने धर्म भाव में निमग्न हैं। खेद की बात है कि वे शाक्त अथवा वैष्णव न बनने पर मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकेंगे। × × × वैयाकरणों के मतानुसार शाक्त शक्ति के उपासक और वैष्णव विष्णु के उपासक हो सकते हैं, परन्तु उसका सही मर्म ऐसा नहीं है। यह धर्म साधना-पथ के विभिन्न स्तर मात्र हैं।

जब तक जीव माया के अधीन रहता है, वासना कामना का दास बना रहता है, तब तक वह बद्ध है। वही बद्ध जीव जिस समय साधु और शास्त्रों की कृपा से उद्‌बुद्ध होकर प्रकृति के बंधन से मुक्त होने के लिए साधना करता है, उस समय वह शाक्त है। फिर जिस समय जीव माया के बंधन से मुक्त होकर आत्मा की अनुपम प्रेमरस माधुरी का आस्वादन करता है, उस समय वह वैष्णव है। साधक, शक्ति अथवा विष्णु, चाहे किसी भी देवता का उपासक क्यों न हो, साधना के स्तरों के भेद से शाक्त अथवा वैष्णव कहलाता है।

जिस समय शिव दाक्षायणी से विवाह कर संसार कर रहे थे, उस समय वे बद्ध जीव मात्र थे। उसके बाद दक्ष यज्ञ के समय सती ने शिवजी का कहना न मान कर दक्षालय में जाकर वहां पर प्राण त्याग दिए। उस समय शिवजी ने समझा कि प्रकृति उनके वशीभूत नहीं है। कर्त्तव्य का बुलावा आने पर वह सारे बंधन तोड़ सकती है। उस समय वे शक्ति को पहचान सके। शक्ति का ज्ञान होते ही शिवजी महायोग में बैठ गए और शक्ति की उपासना कर शाक्त बने। इधर

दाक्षायणी पर्वतराज हिमालय के घर गौरी के रूप में जन्म लेकर शिवजी को पाने के लिए उनकी सेवा करने लगीं। शिवजी ने इस पर जरा भी ध्यान नहीं दिया। शिवजी की कोपदृष्टि से मदन भस्मीभूत हुआ। उसके बाद वे शक्ति को वशीभूत कर ब्रह्मरसानन्द में निमग्न हुए। उस समय वे वैष्णव बन गए। इसलिए महादेव शिवजी परम वैष्णव के रूप में जाने जाते हैं।

शाक्त माया को वशीभूत करने के लिए साधना करता है। परन्तु वैष्णव ने शक्ति पर विजय प्राप्त कर रखी है। जब शाक्त अपनी साधना से माया को वशीभूत कर लेता है, उस समय वह वैष्णव कहलाता है। शक्ति साधक होते हुए भी रामप्रसाद, रामकृष्ण आदि परम वैष्णव थे। फिर विष्णु के जो सब उपासक विषयरूपी विष से दग्ध चित्त में संसार के प्रलोभन में डुबकी लगाते रहते हैं, वे शाक्ताधम हैं।

कोई व्यक्ति चाहे किसी भी देवता का उपासक हो, मुसलमानों और ईसाइयों को भी शाक्त या वैष्णव कहा जा सकता है। जो साधक इस श्रेणी विभाग के अनुसार साधना के उच्च स्तर पर आरूढ होकर माया के बन्धन तोड़कर ब्रह्मरसानन्द में निमग्न हो चुका है, मैं उसे बुलन्द आवाज से वैष्णव कहूंगा। और कामनाओं से दग्ध जीव को कौपीनधारी होने पर भी उसे बद्धजीव या शाक्ताधम कहने में मुझे जरा भी संकोच नहीं होगा। अतः सब लोगों को यह जान लेना चाहिए कि शाक्त बने बिना कोई भी वैष्णव नहीं हो सकता।

हरिहर मूर्ति

यहाँ पर हर शब्द से श्मशानवासी शिव और हरि शब्द से वैकुण्ठ बिहारी विष्णु समझना होगा। हिन्दू मात्र ही इस बात से अवगत है कि हरि और हर अभिन्न हैं। जो मूढ़ व्यक्ति इन दोनों के बीच भेद की कल्पना करता है, वह पापी है।

"गंगा दुर्गा हरीशानां भेदकृन्नारकी तथा"

(वृहद्धर्मपुराण)

अतः इसमें कोई संदेह नहीं है कि ये सब एक हैं। परन्तु बाहर से इनमें जमीन आसमान का अन्तर दिखाई देता है। हर सर्वत्यागी, श्मशानवासी और खप्पर को सब कुछ मानकर विरूप धारण कर घूमते हैं, इसलिए वे त्यागी, वैरागी, संन्यासी हैं। परन्तु हरि, मणि मुक्ता जड़े वैकुण्ठ में बिहार करते हैं। उनके पार्श्व में अनुपम सुन्दरियाँ विद्यमान रहती हैं। इसलिए हरि भोगी, विलासी, गृहवासी हैं। स्थूल रूप में दोनों में भिन्नता दिखाई देने पर भी मूल रूप से उनमें कोई अन्तर नहीं है। शिव संन्यासी सही, पर उनकी गोद में जीव-जगत रूपी विश्व प्रकृति है। संन्यासी होते हुए भी शिव संसार में लिप्त हैं। दूसरी ओर हम हरि को गोकुल बिहारी के रूप में देखते हैं कि वे गोपियों के प्रेम में पागल व राधा के प्रेम में विह्वल हैं। सभी जानते हैं कि श्रीकृष्ण राधागत प्राण हैं। परन्तु जैसे ही अक्रूर ने आकर मथुरा के समाचार दिए वे वैसे ही मथुरा चले गए। गोपियों के हृदय विदारक व्याकुल क्रंदन की ओर उन्होंने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। राम अवतार में पतिप्राणा जानकी को अकातर भाव से बिना अपराध के केवल राज-कर्त्तव्य से प्रेरित होकर वन में भेज दिया। तब तो हरि आत्मसुख में अन्धे होकर जीवों के दुःख को नहीं भूले। अतः गृहस्थ होते हुए भी हरि निर्लिप्त हैं। हर संन्यासी होकर भी लिप्त हैं। इसलिए लिप्त संन्यासी और निर्लिप्त गृहस्थ एक बात है। अतः हरि और हर अभेद हैं।

अतः जो आत्मस्वरूप में रहकर निर्लिप्त भाव से कर्मों का अनुष्ठान करते हैं और अनासक्त भाव से विषय का भोग कर जगत की भलाई में जीवन का उत्सर्ग करते हैं, केवल वे ही श्रेष्ठ हैं। ऐसे गृहस्थ और संन्यासी के बीच कोई अन्तर नहीं है। इसलिए गृहस्थ व्यासदेव और संन्यासी शंकाराचार्य को समान पद प्राप्त हुआ है।

इक्कीसवाँ अध्याय

आश्चर्य संकेत

जिस प्रकार अनियमित क्रियाओं से रोगों की उत्पत्ति होती है, ठीक वैसे ही औषधियों का प्रयोग किये बिना भी आभ्यंतरिक क्रियाओं के द्वारा रोग दूर करने के उपाय निर्धारित किये गये हैं। अपनी साधक अवस्था में देश भ्रमण करते समय प्रभुश्री ने योगियों से औषधों का प्रयोग किये बिना रोग निरामय के उपाय सीखे थे। उनमें से प्रभुश्री की ग्रंथावली से उद्धृत कर ऐसे कुछ संकेत दिये गये हैं जो बहु परीक्षित हैं।

चिकित्सा संकेत

मलेरिया

श्वेत अपराजिता के कुछ पत्ते पीस कर उसे सफेद कपड़े की पोटली में बांध कर मलेरिया की बारी आने के दिन सुबह से सूंघते रहने से मलेरिया ठीक हो जायेगा। (प्रत्येक सांस के साथ सूंघना होगा)

सिरदर्द

सिरदर्द होने पर दोनों हाथों की कोहनियों के ऊपर कपड़े की पट्टी से कस कर बांध देने से चार पांच मिनट में सिरदर्द पूरी तरह ठीक हो जायेगा। ऐसा कस कर बांधना होगा जिससे कि रोगी के हाथों को बहुत दर्द महसूस हो। सिरदर्द कम होते ही गांठ खोल देनी होगी। आधासीसी का दर्द सूर्योदय के साथ साथ बढ़ता जाता है। उस समय जिस भाग में दर्द हो रहा होगा, उस भाग की कोहनी के ऊपर के भाग

को पहले की तरह बांधना होगा। यदि अगले दिन भी दर्द पुनः होने लगे अथवा प्रत्येक दिन एक नाक से सांस जाते समय सिरदर्द होता हो तो दर्द आरम्भ होते ही उस नाक को बन्द कर पहले की तरह कोहनी पर कपड़े की पट्टी बांधते ही दर्द कम हो जायेगा।

दन्त रोग

प्रतिदिन जितनी बार टट्टी और पेशाब जाओ, उतनी ही बार उस समय दांतों को थोड़ा जोर से दबाकर रखना होगा। जब तक शौच होता रहे तब तक दबा कर रखना होगा। बहुत दिन तक ऐसा अभ्यास करने से कमजोर मसूड़े मजबूत होंगे और दांत काफी दिन तक कार्यक्षम रहेंगे और मसूड़ों में दर्द नहीं होगा।

इसके साथ प्रतिदिन नीचे दिये गये दंतमंजन से दांत साफ करने होंगे। दंतमंजन का मिश्रण—सुपारी एक तोला, सेंधा नमक एक तोला, फूलखड़ी एक तोला, फिटकरी आधा तोला, सोंठ और काली मिर्च समान मात्रा में आधा तोला और कपूर पाँच रत्ती। इन सब चीजों को कूट कर एक साथ मिलाकर दंतमंजन बनाना होगा। सुपारी को काट कर उसे आग पर थोड़ी देर भून कर उसका चूर्ण बनाना होगा। भूनते समय यह ध्यान रहे कि सुपारी जल न पाये।

गठिया अथवा अन्य वात रोग

प्रतिदिन खाने के बाद लकड़ी या सींग की कंघी करनी होगी। कंघी इस तरह करनी होगी जिससे कंघी के कांटे सिर में लगें। इस समय दोनों पैर पीछे रख कर घुटनों के बल पन्द्रह मिनट के लिए वीरासन में बैठना होगा। प्रतिदिन दो बार खाने के बाद इस तरह बैठकर कंघी करने से गठिया या वायु की बीमारी चाहे जितनी भी पुरानी क्यों न हो, निश्चय ठीक हो जाएगी। स्वस्थ लोगों को भी गठिया या वात रोग होने की गुंजाइश नहीं रहेगी।

नेत्र रोग

प्रतिदिन सुबह बिस्तर से उठ कर पहले मुंह में जितना पानी रह सकता है उतना पानी भर कर और पानी से आँखों पर बीस-पच्चीस बार छींटे मार कर आंखों को साफ करना होगा। प्रतिदिन दो बार खाने के बाद मुंह धोते समय कम से कम सात बार पानी के छींटे मारना नहीं भूलना चाहिए। जितनी बार मुंह को साफ किया जाएगा, उतनी ही बार आँखों और कपाल को साफ करना नहीं भूलना होगा। इसके साथ ही स्नान करने से पूर्व तेल की मालिश करते समय सर्वप्रथम पैरों के अंगूठों के नाखूनों पर तेल लगाना होगा। उसके पश्चात शरीर में तेल लगाना चाहिए। इससे आँखों को आराम मिलेगा और दृष्टि-शक्ति बढ़ेगी।

पेचिश

दाहिनी नाक से सांस निकलते समय ठोस खाद्य और नाश्ता लेना चाहिए। बाईं नाक से श्वास निकलते समय पानी पीना चाहिए। इससे उदरामय और बदहजमी नहीं होगी। खाने के बाद कुछ देर तक बाईं करवट लेटना चाहिए।

लू

तेज धूप के समय कहीं जाना हो तो कानों को रुमाल या कपड़े से ढक कर धूप में घूमने से लू नहीं लगेगी। कानों को ऐसे ढकना होगा जिससे कि उन्हें हवा न लगे।

सुख प्रसव

इमली के बहुत छोटे पौधे को उखाड़ कर उसकी जड़ को जच्चा के मुंह के ऊपर के बालों पर बांध देना होगा। उसे ऐसे बांधना होगा जिससे कि उसकी गंध जच्चा की नाक में पहुंच सके। ऐसा करने से तत्काल सुख प्रसव होगा। प्रसव के बाद बालों के साथ इमली की जड़

को कैंची से काट देना होगा। वरना जच्चा की आंते तक निकल जाने की संभावना रहती है।

सर्वरोग आरोग्य

प्रतिदिन एकाग्र चित्त से श्वेत, कृष्ण और लोहित वर्णों का ध्यान करने से शरीर के सभी विकार नष्ट हो जाते हैं। इसलिए ब्रह्मा, विष्णु और महेश हिन्दुओं के नित्य ध्येय हैं। प्रातःकाल नींद खुलने के समय मस्तक पर स्थित सहस्रदल कमल पर श्वेतवर्ण गुरुदेव और रक्त-वर्ण की उनकी शक्ति का ध्यान करना होता है। इससे शरीर कितना स्वस्थ रहता है, क्या आधुनिक शिक्षित बाबू लोग इसे थोड़ा भी समझेंगे? जो भी हो, सब से मेरा अनुरोध है कि वे इसे परख कर देखें।

खून साफ

प्रति दिन एक तोला घी में आठ-दस काली मिर्च भून कर उसे खाने से खून साफ रहेगा और शरीर पुष्ट होगा।

सिर की बीमारियां

प्रतिदिन प्रातः काल बिस्तर से उठते ही नाक से ठंडा पानी पीना होगा। इससे सिरदर्द, सर्दी, दमा, खांसी, बदहजमी आदि विविध रोगों का उपशम होता है। यह क्रिया बहुत कठिन नहीं है। एक पात्र में ठंडा पानी रखकर उसमें नाक डूबोकर पानी को धीरे-धीरे गले के भीतर खींचना होगा। निरन्तर अभ्यास करने से यह क्रिया सहज हो जाती है। यदि सिर की पीड़ा से ग्रस्त रोगी इस प्रणाली का अवलंबन लेगा, तो उसे आशातीत लाभ होगा।

साधना संकेत

प्रभुश्री ने सर्वसाधारण को विभिन्न उपदेश तो दिए ही थे, साथ ही उन्होंने साधकों के उपकार के लिए साधना के विभिन्न संकेत भी

दिए हैं। उनमें से साधकों के लिए विशेष प्रयोजनीय कुछ संकेत नीचे दिए गए हैं। इनकी परीक्षा करने से साधकों को आश्चर्यजनक फल मिलेगा।

बीज मंत्र

मंत्र तो शब्द मात्र है। फिर शब्द भी जड़ है। देवता के साथ शब्द का क्या सम्बन्ध है? शब्द भाव का प्रतीक मात्र है। देवता घनीभूत भाव के प्रकट रूप हैं। शब्द और भाव में किसी प्रकार के भेद का होना अचिंतनीय है। यह भाव जगत के प्रत्येक जीव के भीतर है। गाय के रंभाने से बछड़ा उसके पास चला आता है, क्योंकि शब्द भाव का प्रतीक है, बारदी के ब्रह्मचारी ने एक बाघिन के साथ भाव का आदान-प्रदान कर उससे मित्रता की थी। उन्होंने उसके बच्चों की कई दिन तक देखभाल की थी। शब्द भाव का बाह्य प्रकाश है।

मंत्र भावयुक्त होने पर भी जब तक वह किसी तत्त्वदर्शी महापुरुष के श्रीमुख से नहीं निकलता है, वह साधकों के लिए पूर्णतया निर्जीव है। यह निर्जीव मंत्र कभी भी सजीव नहीं होगा। इसलिए प्रत्येक देवता का बीज मंत्र पृथक-पृथक है। बीज मंत्र अनादि है और भावों के भेद से बीज अनन्त हैं। परन्तु किसी भी बीज मंत्र का जप क्यों न किया जाए, मैं पुनः दृढ़तापूर्वक कहता हूं कि वह मंत्र गुरुदेव से प्राप्त होना चाहिए।

सदगुरु द्वारा शिष्य को बीज मंत्र प्रदान करते ही समझना होगा कि उस जड़ बीज में शिष्य के लिए सजीवता प्राप्त हुई है। सदगुरु मंत्रदान करते समय जिस प्रकार वह सजीव बीज शीघ्र अंकुरित होगा उसका कौशल प्रदर्शित करने के साथ-साथ शक्ति का संचार भी कर देते हैं।

यदि मंत्र का जप करते समय मन, परम शिव, शक्ति और वायु पृथक-पृथक स्थानों पर रहते हैं अर्थात् इन सबका एकत्र संयोग नहीं होता हो तो सैकड़ों कल्प में भी मंत्र की सिद्धि नहीं होती है।

शिव कहने से सांप्रदायिकता का भाव आता है, परन्तु परमशिव को हरि, राम आदि कुछ भी कहने से कुछ हानि नहीं है। श्रीगुरु द्वारा उपदिष्ट किसी मुद्रा की सहायता से श्वास के ताल के साथ अर्थात् प्रत्येक निःश्वास के साथ जप करना होगा। प्रश्वास के साथ जप करने से कोई लाभ नहीं होता है, क्योंकि इससे वायु बाहर चली जाती है। वायु के साथ मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः मन उस समय बहिर्मुखी होता है। परन्तु शक्ति को अर्थात् कुण्डलिनी को मूलाधार में रख कर और वायु तथा परमशिव को एकत्र कर जप करने से वह जप निष्फल होता है। श्वास के ताल के साथ और श्रीगुरु द्वारा उपदिष्ट मुद्रा विशेष की सहायता से कुण्डलिनी को शिव के साथ जोड़ कर जप करना होगा। फिर यदि मन अन्यत्र रहता है तब परमशिव, शक्ति और वायु को एकत्र कर जप करने से भी कोई लाभ नहीं होगा। अतः मन, शिव, शक्ति और वायु को एकत्र कर भक्ति योग में जप करो।

उच्चतम अधिकारियों के लिए मंत्र की कोई आवश्यकता नहीं है। बुद्ध, मोहम्मद, ये सब क्या किसी मंत्र के उपासक थे ? जिस समय उच्चतम अधिकारी ध्यानस्थ होकर मन को शून्य में रखते हैं और परिणामस्वरूप जब मन निस्तरंग होता है, उस समय सत्य प्रतिफलित हो उठता है।

प्राणायाम के बारे में संकेत

प्राणायाम करना हो, तो संख्या मात्रा और खिचाव, इन तीनों चीज पर ध्यान देना होगा। संख्या की बात सभी जानते हैं। जैसे ४/१६/८ और ८/३२/१६ आदि के अनुपात में हम प्राणायाम कर सकते हैं। उसके बाद खिचाव है। साधारणतया निःश्वास लेते समय हमारी नाभि पर दबाव रहता है। परन्तु वास्तव में निःश्वास छाती तक ही जाता है। उससे अधिक दूर नहीं जाता। प्राणायाम करने वाले योगी को इस बात पर ध्यान देना होगा कि जिस प्रकार उनका

निःश्वास नीचे न चला जाए। इसलिए सांस खींचते समय पेट को सिकोड़ कर सांस न खींचना पड़े, इस बात पर ध्यान देना होगा। ऐसा करने से छाती पर थोड़ा दबाव पड़ेगा। धीरे-धीरे निःश्वास को और ऊपर की ओर लेना होगा। उसके बाद एक दिन ऐसा होगा कि निःश्वास और गले से नीचे नहीं जाएगा। यही खिंचाव की विशेषता है।

प्राणायाम करते समय किसी प्रकार का कठिन परिश्रम नहीं करना चाहिए। परन्तु सावधानीपूर्वक सामान्य परिश्रम किया जा सकता है। प्राणायाम दो प्रकार के हैं—अन्तर्प्राणायाम और बहि-र्प्राणायाम। जिस प्रकार वायु को भीतर खींच कर बाहर न निकलने देने को कुंभक कहा जाता है, ठीक वैसे ही वायु को त्याग कर भीतर न लेना भी वैसा ही कुंभक है। हम सामान्य परिश्रम करते समय अर्थात् मिट्टी आदि खोदने के लिए फावड़े को ऊपर उठाते समय निःश्वास खींच लेते हैं और प्रहार करते समय छोड़ देते हैं। परन्तु वैसा न करके वायु पहले त्याग कर फावड़े का प्रहार किया जाए, तो प्राणायाम करने वाले योगी को परिश्रमजन्य कोई हानि नहीं होगी।

जो लोग स्वाभाविक रूप से लंबा निःश्वास लेते हैं, उन्हें प्राणायाम न करके निःश्वास के ताल के साथ गति का अभ्यास करना होगा। निःश्वास को सदैव सामान्य रूप से न छोड़ कर धीरे-धीरे छोड़ना होगा। यह प्राणायाम की साधना में विशेष सहायक है।

खेचरी मुद्रा

इसमें जीभ को धीरे-धीरे तालू के भीतर प्रवेश कराना होगा। बाद में जीभ को ऊपर की ओर उलट कर कपाल के भीतर प्रवेश करा कर दृष्टि को दोनों भौहों के बीच स्थिर रखने से खेचरी मुद्रा होगी।

कोई-कोई जीभ के अगले भाग को तालू के मूल में स्पर्श करा के बहादुरी दिखाता है। परन्तु यहां तक आने से कुछ नहीं होगा। जीभ

को इस तरह रख कर क्या करना होता है, यह कोई नहीं जानता। खेचरी मुद्रा के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से निःसृत सोम रस का पान करने से अभूतपूर्व नशा होता है। इससे साधक का शरीर मजबूत होता है। वह जरा व्याधि से मुक्त होता है और उसमें पराक्रम आता है। सही खेचरी मुद्रा की साधना कर सकने से साधक छह मास के भीतर सभी व्याधियों से मुक्त होगा।

त्राटक

दोनों भौहों के बीच स्थित बिन्दु के केन्द्र पर दृष्टि डाल कर एकाग्र होकर तब तक ताकते रहना होगा जब तक कि आँखों में पानी न आ जाए। दृष्टि इस स्थान पर रुकी रहने से त्राटक में सिद्धि प्राप्त होगी।

त्राटक में सिद्ध होने पर आँखों के सारे विकार दूर हो जाते हैं, निद्रा और तन्द्रा वश में रहती हैं और आँखों से रश्मि निकलने की प्रक्रिया शुद्ध होती जाती है। त्राटक योग में सिद्धि प्राप्त करने पर बहुत आसानी से सम्मोहन किया जा सकता है। त्राटक में सिद्ध होने पर हिंस्र जंतु तक भी वशीभूत हो जाते हैं।

नेत्ररश्मि का संयमन

इस सम्बन्ध में प्रभुश्री के श्रीमुख से निःसृत वाणी इस प्रकार है, "देखो, हम लोगों की नेत्ररश्मि विक्षिप्त रूप से निकलती है। यदि इस विक्षिप्त रश्मि को संयत कर एक वस्तु पर निबद्ध कर दिया जाए, तो इसे त्राटक कहते हैं। जिस समय दृष्टि में लक्ष्य वस्तु के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देगा, तो समझना होगा, कि उस समय मन स्थिर हो चुका है। गुरु द्रोणाचार्य ने अर्जुन से पूछा. "तुम क्या देख रहे हो।" अर्जुन ने उत्तर दिया, "मैं चिड़िया की आँख के अतिरिक्त और कुछ नहीं देख पाता हूं।" उसके बाद अर्जुन ने चिड़िया की आँख को निशाना लगा कर तीर चलाया। दूसरे शिष्य अर्जुन की तरह लक्ष्य

स्थिर नहीं कर सके। अर्जुन की तरह लक्ष्य को स्थिर करना होगा। यदि अंधेरी रात में किसी वस्तु को स्थिर लक्ष्य से देखा जाए, तो वह स्थान तत्काल आलोकमय हो जाएगा। कोई भी इसका परीक्षण कर सकता है। परन्तु जिन्हें त्राटक का अभ्यास है, वे बड़ी आसानी से इसे देख सकेंगे। नाभि ध्यान को उड़ीयानबन्ध मुद्रा कहते हैं। एक नाड़ी नाभि से निकल कर सुषुम्ना से जुड़ती है। अतः प्रक्रिया के द्वारा जब वायु मेरुदण्ड के भीतर आने-जाने लगती है, तब कुण्डलिनी की चेतना होती है, तरह-तरह के शब्द सुनाई देते हैं तथा मन का लय होता है।"

महामुद्रा

मल द्वार के ऊपरी भाग को बाएं पैर की ऐड़ी से जोर से दबा कर दाएं पैर को सीधा सपाट फैला दो। उसके बाद दाएं पैर को दोनों हाथों से जोर से पकड़े रहो। साथ ही ठुड्डी को गले पर रखकर कुंभक प्रक्रिया से वायु को रोको और प्राणायाम की प्रक्रिया से वायु का रेचन करो। उसके बाद दाएं पैर की एड़ी से मल द्वार के ऊपरी भाग को दबा कर बायां पैर फैला दो और शेष क्रियाएं पहले की तरह करो। उसके बाद पहले की तरह बाएं पैर और अन्त में दाएं पैर से मल द्वार के ऊपरी भाग को दबा कर क्रमानुसार दाएं और बाएं पैर को फैलाकर क्रिया करो। इस प्रक्रिया से कुण्डलिनी का चैतन्य होगा।*

---

* उपर्युक्त साधना संकेत साधक-शिष्यों के लिए विशेष आवश्यक है। सामान्य पाठकों के लिए इन साधना संकेतों को पढ़कर क्रिया करने का निषेध है। किसी सुविज्ञ व्यक्ति से क्रिया आदि की शिक्षा लेनी होती है —आवश्यक हो तो "योगी गुरु" पुस्तक पढ़िए। इसका विशेष विवरण "संसार पथे" के सिद्धि योग खण्ड में दिया गया है।

पद्मासन

बाईं जांघ पर दाहिना पैर और दाहिनी जांघ पर बायां पैर रख कर दोनों हाथों को पीठ की ओर घुमा कर बाएं हाथ से बाएं पैर के अंगूठे को और दाहिने हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ो। ठोडी को छाती पर रख कर नाक के अग्रभाग की ओर दृष्टि रख कर बैठो। इसे पद्मासन कहते हैं। पद्मासन दो प्रकार के हैं—मुक्त पद्मासन और बद्ध पद्मासन। पीठ की ओर हाथ घुमा कर पैर की उंगली को न पकड़ कर, जहां दोनों पैर मिलते हैं, वहां पर दोनों हाथ चित्त कर बैठने का नाम मुक्त पद्मासन है।

इस आसन से निद्रा, आलस्य, जड़ता आदि शरीर के सभी विकार दूर हो जाते हैं। उदरशूल, बदहजमी, आदि पेट की बीमारियां भी दूर हो जाती हैं। पद्मासन में यथाविधि केवल आधा घंटा ही बैठ सकने से सर्वरोग अरोग्य होते हैं।*

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, यह चतुर्वर्ग प्राप्त करना हो, तो शरीर को स्वस्थ रखना नितांत आवश्यक है। धर्म साधना के क्षेत्ररूपी इस देह, मन और इन्द्रिय वर्ग को सुसंयत और धर्मानुष्ठान के उपयोगी बनाने के लिए उन्हें उपर्युक्त रूप से तैयार करना होता है। अन्यथा निरन्तर अथक परिश्रम करने पर भी शरीर और मन अध्यात्मतत्त्व को धारण करने में सक्षम नहीं होते हैं। इसलिए यौगिक प्रणाली से क्रिया करना नितांत आवश्यक है।

मानव शरीर कच्चे घड़े और जीवन जल के समान है। जीवन रूपी जल से यह कच्चा घड़ा किस समय घुल जाएगा, यह निश्चित नहीं है। परन्तु योगरूपी आग से इस देहरूपी घड़े को दग्ध करने से उसके आसानी से नष्ट होने का भय नहीं रहता है।

---

* इसका विस्तृत विवरण प्रभुश्री की दूसरी पुस्तकों में दिया गया हैं।

बाईसवां अध्याय

अभय वाणी

प्रभुश्री की आशीर्वाणी

इस जगत में श्रीगुरु के आशीर्वाद जैसी दुर्लभ वस्तु और कुछ नहीं है। साधना-भजन की तुलना में महतजनों की कृपा और आशीर्वाद की शक्ति हजारों गुना अधिक है। सदगुरु के आशीर्वाद से मानव जीवन धन्य होता है। उनके आशीर्वाद से मनुष्य परा ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी बन कर अपने जीवन को धन्य समझता है। उनके आशोर्वाद से अन्तर की सुप्त शक्तियां उद्‌बुद्ध हो उठती हैं। हमने प्रभुश्री की कुछ आशीर्वाणी नीचे दी हैं।

"वत्स, तुम लोगों की भुजाओं में शक्ति और हृदय में भक्ति का विकास हो नववर्ष में मैं तुम लोगों को यही आशीर्वाद देता हूं।"

"वत्स, मुझे बाहर न देख सकने पर भी तुम लोगों की कोई विशेष क्षति नहीं होगी। तुम लोग मुझे अपने-अपने अन्तर में देखने का अभ्यास करो। मेरे बारे में सुन-सुन कर तुम लोगों के मन में जो कल्पनामय भाव पैदा हुआ है, तुम लोग उस भाव के माध्यम से अपनी मनोमयी कल्पना से मेरी एक मूर्ति का गठन करो और उसे हृदय में बिठाकर चिंतन के द्वारा उस मूर्ति के दर्शन करने की चेष्टा करो। इसे ध्यान में देख सकने से सर्वार्थ सिद्ध होगा। सभी अभाव दूर हो जाएंगे। बाह्य शरीर से बाहरी कार्य करते जाओ, अन्तर में उन्हें पकड़े रखो। ऐसा चिंतन करो कि मैं तुम्हारे हृदय में हूं। इस भाव के समक्ष सारी साधनाएं बच्चों का खेल जैसी हैं। मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम उस उच्च भाव के अधिकारी बनो।"

"संसार में किसी को सुखी बनाने के लिए गुरु शिष्य ग्रहण नहीं करते हैं। संसार की अनित्यता समझा कर शिष्य को शांति राज्य का मार्ग प्रदर्शित कर देना ही सदगुरु का कार्य है। मैं आशीर्वाद देता हूं कि संसार के प्रति तुम्हारा मोह दूर हो और तुम्हारा ध्यान माँ के चरणों में रहे।"

"तुम लोग नित्य मुक्त हो। मैं तुम लोगों को आवरण युक्त कर नित्यधाम से इस संसार में ले आया हूं। तुम लोगों की अपनी मुक्ति के लिए चिंता की कोई बात नहीं है। तुम लोग जगत का मंगल करने के लिए ही उतरे हो। तुम लोगों का कोई बंधन नहीं है। इसलिए मैंने तुम्हारे ऊपर कर्म का इतना भार लाद दिया है। अपने चरित्र का गठन किस प्रकार करना होता हैं, तुम लोग जगत को यही शिक्षा दो। मैं तुम लोगों द्वारा इस उद्देश्य को पूरा करना चाहता हूं। केवल मनुष्यत्व का अर्जन करने पर सभी दैन्य स्वतः दूर हो जाते हैं। तुम लोग मनुष्य की मनुष्य बनने में सहायता करो। मेरा तुम लोगों को यही आशीर्वाद है।"

"सर्वप्रथम एक भाव में आत्मप्रतिष्ठा करो, प्रचार करना बाद की बात है। तुम लोग आदर्श में प्रतिष्ठित होओ। तुम्हें देखकर देश उद्‌बुद्ध हो। किसी के अन्तर में वह अलौकिक संकेत नहीं आता है कि जीवजगत का किस में मंगल होगा। केवल महापुरुष ही जगद्‌गुरु का मंगलमय इंगित समझने में सक्षम हैं। मैं सदगुरु हूं। मेरे अंतर में जगद्‌गुरु की मंगलमय इच्छा लीलायित हो उठी है। तुम लोग उस लीला-पुष्टि के सहायक हो। मेरे अन्तर में जो सब चीजें प्रतिभात हुई हैं, तुम लोग बाह्य जगत में उस सबको मूर्तरूप दो। मैं तुम लोगों से और कोई भी वस्तु नहीं मांगता हूं। तुम लोग मेरी प्रकाश शक्ति बनो।"

अन्तिम आशीर्वाणी

"तुम लोगों से विदा लेने से पहले मैं तुम लोगों को कुछ उपदेश देकर जा रहा हूं। मेरी अनुपस्थिति में उन उपदेशों का स्मरण करके उन पर चलने से देखोगे कि इस संसार में कहीं भी तुम्हारी पराजय नहीं होगी।"

"तुम लोगों ने मेरी इच्छा को मूर्त रूप देने के लिए मेरी शरण ली है। जब तक मैं स्थूल देह में हूं तब तक मेरी इच्छा को लेकर तुम्हारे बीच कोई द्वन्द्व पैदा नहीं होगा। मेरे अन्तर्धान होने के बाद तुम लोगों के लिए सही परीक्षा आरम्भ होगी। उस समय मेरी इच्छा तुम लोगों के अन्तर में प्रेरणा के रूप में खिल उठेगी। परन्तु चित्त की शुद्धि न होने पर कोई मेरी गूढ़ इच्छा को रूप नहीं दे सकेगा। शुद्ध आधार में ही सदगुरु की अव्यक्त इच्छा प्रतिफलित होती है।"

"मेरी इच्छा को रूप देना हो, तो गृहस्थों, संन्यासियों, सभी को संघबद्ध होना पड़ेगा। जो लोग मुझसे बेहद प्रेम करते हैं, उनमें मेरे तिरोभाव के बाद संहति का भाव विशेष रूप से खिल उठेगा। मेरे अन्तर्धान होने के बाद तुम लोग मेरी अन्तर्निहित इच्छा को सही-सही समझ सकोगे। परन्तु चित्त शुद्ध न रहने से मेरी इच्छा तुम्हारे समक्ष विकृत रूप से प्रकट होगी। अतः तुम लोगों को और अधिक व्यवस्थित रूप से संगठित होना पड़ेगा। चित्त शुद्धि के लिए एक ओर ध्यान करोगे और दूसरी ओर गुण क्षय के लिए तुम्हें श्रीगुरु द्वारा निर्दिष्ट निष्काम कर्म का अनुशीलन करना होगा। यदि ये दोनों साधनाएं समान रूप से कर सकोगे, तो मैं इच्छा और प्रेरणा के रूप में तुम्हारे अन्तर में प्रकट होऊंगा। उस समय तुम लोग मुझे सही-सही पा सकोगे, क्योंकि अन्तर में पाना ही सही-सही पाना है। मेरे अन्तर्धान के बाद जो लोग मेरे लिए शोक करेंगे, उनके बारे में यह समझना कि उन्हें मेरे अस्तित्व पर विश्वास नहीं है। मैं चिरकाल से हूं और रहूंगा। स्थूल देह में मैं तुम लोगों के बाहर हूं, परन्तु इस देह की रक्षा करने पर तुम सभी के मन मन्दिरों में मेरा आसन प्रतिष्ठित होगा।"

"तुम लोग संघबद्ध होओ, यह भी मेरी एक इच्छा है। अतः मेरी इच्छा को रूप देने के लिए जिन लोगों की इच्छा होगी, वे निश्चय ही संघबद्ध हो सकेंगे। मेरी इच्छा का त्रिपाद अव्यक्त है। चेतना को

ऊर्ध्वमुखी कर सकने से मेरी उस अव्यक्त इच्छा को समझ सकोगे। निम्नाभिमुखी मन से कभी भी मेरी इच्छा को हृदयंगम नहीं कर सकोगे। अतः आत्मस्थ होने, समाहित हो सकने से तुम लोगों को मेरी व्यक्त और अव्यक्त, सभी इच्छाओं की उपलब्धि हो सकेगी।"

"तुम लोग आत्मस्थ होओ, समाहित होओ, तभी मैंने जो कुछ व्यक्त किया है और जो कुछ व्यक्त नहीं किया है, उन सब व्यक्त और अव्यक्त इच्छाओं को समझ सकोगे। स्थूल देह का त्याग करने के बाद मैं अपनी इच्छा के साथ समा जाऊंगा। जो लोग मेरी इच्छा को रूप दे सकेंगे, वे मुझे सही अर्थ में पा सकेंगे। मैं अपनी इच्छा के साथ अव्यक्त रूप में सम्मिलित रहूंगा। यदि कोई इस उद्देश्य से मुझसे साक्षात करना चाहे, तो उसे अपने चित्त का लय करना होगा। चित्त का लय होते ही मैं शुद्ध आधार में निर्मल वासना के रूप में खिल उठूंगा। जिस दिन मेरी इच्छा तुम लोगों के भीतर पूरी तरह खिल उठेगी, उस दिन समझना कि तुम लोगों को निर्विकल्प समाधि प्राप्त हुई है। मेरे अन्तर्धान होने के बाद मेरे आदेशों और उपदेशों का गुरु जैसा आदर करना।"

"मैं उस समय तुम लोगों के अन्तर में वाणी के रूप में, प्रेरणा के रूप में खिल उठूंगा। परन्तु इस इस बात के प्रति सावधान रहना कि अपनी व्यक्तिगत और स्वार्थपरक इच्छा को श्रीगुरु की प्रेरणा न समझ बैठना। मैं आशीर्वाद देता हूं, तुम लोगों का चित्त निर्मल हो, तुम्हारे चित्तरूपी स्वच्छ दर्पण में मेरी शुभ इच्छा अबाध रूप से प्रतिविम्बित हो। चित्त की जिस भूमि पर आरूढ होने पर सदगुरु की इच्छा को प्रत्यक्ष करने का सौभाग्य प्राप्त होता है, केवल मेरे आशीर्वाद से तुम लोगों का चित्त उस भूमि पर आरूढ रहे। तुम लोग मेरी महान इच्छा के एक-एक मूर्त प्रतीक बनो। यही मेरा शेष आशीर्वाद है।"

प्रभुश्री की भविष्यवाणी

शिष्य ने प्रश्न किया—इस समय एक जगद्‌गुरु के आविर्भाव की आवश्यकता है या नहीं ? यदि है, तो थियोसोफीकल सोसाइटी

जगद्गुरु के रूप में जिनकी घोषणा कर रही है, वे कृष्णमूर्ति जगद्गुरु हैं या नहीं ? बौद्ध धर्मावलंबी कह रहे हैं कि पंचम बुद्ध अर्थात् मैत्रेय ऋषि आएंगे । हिन्दू कह रहे हैं कि मैत्रेय ऋषि के शरीर में भगवान आएंगे । मुसलमान कह रहे हैं कि हजरत बोधि आएंगे । यहूदी लोग कहते हैं कि मीसा (Missah) आएंगे । ईसाई लोग कहते हैं कि ईसा मसीह आएंगे । वर्तमान युग में धर्म का स्रोत लौटाने के लिए एक जगद्गुरु की आवश्यकता हो सकती है । परन्तु ये कृष्णमूर्ति जगद्गुरु हैं या नहीं, इस संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

प्रभुश्री—मैं इस संबंध में कुछ नहीं कहूंगा । (कुछ देर चुप रहने के बाद) मद्रास में भारत के बड़े-बड़े धर्म प्रचारकों ने जन्म लिया है। आदि शंकर और रामानुज, ये सभी मद्रासी ब्राह्मण हैं । कृष्णमूर्ति भी मद्रासी हैं । यदि वे जगद्गुरु हैं, तो यह तो भारत के लिए गौरव की बात है ।" अगले दिन इस संबंध में पुनः पूछने पर प्रभुश्री ने कहा, "प्रत्येक संप्रदाय अपने-अपने गुरु को जगद्गुरु कह सकता है । तुम लोग यह जान लो कि जो आएंगे, ये सब उनके लिए कर्मक्षेत्र की तैयारी कर रहे हैं ।"

शिष्य—सभी कह रहे हैं, आएंगे, आएंगें । तब क्या ये लोग अवतार के रूप में जिनकी घोषणा कर रहे हैं उन्हें पहचान नहीं सके हैं ।"

प्रभुश्री—नहीं, जो आएंगे, वे इस कर्मक्षेत्र को अधिकृत कर कार्य करेंगे । यदि वे आते होते, तो मेरे प्राणों में जैसा स्फुरण होना चाहिए था वैसा नहीं हो रहा है। वे जिस दिन आएंगे, मैं अपने शिष्य-भक्तों को लेकर उनके चरणों में लोट जाऊंगा ।

शिष्य—इस जगत में धर्म का स्रोत किस रूप में प्रवाहित होगा ?

प्रभुश्री—जिस समय एक धर्म (सर्वसाधारण में अप्रकाश्य) हिन्दू धर्म के साथ मिल जुल कर एक प्रबल धर्म में बदल जाएगा, उस समय जगद्गुरु इस जगत में नए सिरे से हिन्दू धर्म का जागरण करा देंगे। भारत हमेशा के लिए धर्मगुरु बना रहेगा। भारत में किसी दिन

रजोगुण की वृद्धि नहीं होगी। भारत सत्त्वगुण का स्थान है। यहां पर सत्त्वगुण हमेशा प्रबल रहेगा। यहां पर दूसरे गुणों का स्थान नहीं है।

शिष्य—उस समय क्या हिन्दुओं और मुसलमानों का मिलन होगा ?

प्रभुश्री—हां, होगा। उस समय सभी संप्रदाय शांति से रहेंगे।

भारत की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में भविष्यवाणी

स्थान : नीलाचल कुटीर, पुरी
दिनाँक १७ जुलाई १९३४, सायं छः बजे।

एक शिष्य—प्रभो, मुनि-ऋषियों का देश हमारा भारत क्या हमेशा के लिए इस तरह पतित होकर रहेगा ? क्या कभी इसकी उन्नति नहीं होगी ? यह हमारे किस पाप का फल है ?

प्रभुश्री - भारत का पतन व्यक्तिगत नहीं है, समष्टिगत है। भारत का पतन भगवान की इच्छा से हुआ है। यदि किसी चीज का पतन न हो तो उसका उत्थान होना भी असम्भव है। जिस समय भूमि उपजाऊ होती है, उसमें अच्छी पैदावार होती है। उसकी उर्वरा-शक्ति कम हो जाती है तो उसे दो-तीन वर्ष खाली छोड़ देने पर उसकी उर्वरा-शक्ति पुनः लौट आती है। इसी तरह एक दिन था जब भारत उन्नति की चरम सीमा तक चला गया था। इसलिए प्राकृतिक नियम से उसका पतन होना अवश्यंभावी है। यह सब भगवान की इच्छा है। इच्छा करने पर योगीजन पल भर में इसे उन्नत करा सकते हैं। परन्तु उनकी इच्छा भगवान की इच्छा के साथ एकरूप हो चुकी है। भगवान की इच्छा के विरुद्ध जाना शैतान या राक्षस का कार्य है। परन्तु योगीजन जानते हैं कि कब क्या होने वाला है। मैं जानता हूं कि बहुत शीघ्र ही भारत की उन्नति होगी। जड़ विज्ञान और कल-कारखाने पाश्चात्य जगत को शांति नहीं दे सकते। वे बरबस भारत के द्वार पर शांति के याचक बन कर खड़े होंगे। जिस प्रकार एक दिन

समूची जातियां ब्राह्मणों के अधीन थीं, ठीक वैसे ही समूचा जगत भारत पर आश्रित होगा। हमें स्वतंत्रता मांगनी नहीं पड़ेगी। वे स्वयं विना मांगे ही स्वतंत्रता दे जाएंगे।

शिष्य--यह सब कितने दिन के बाद होगा ?

प्रभुश्री—बहुत शीघ्र।

शिष्य—इस समय पाश्चात्य विज्ञान पानी से चीनी बना रहा है।

प्रभुश्री—केवल पानी से चीनी ही क्यों, कोलतार से एक बहुत ही अमूल्य वस्तु निकल रही है। यह सब उनकी शक्तियाँ नहीं हैं। यह सब भगवान की शक्तियाँ हैं। यह सब भगवान का विधान है। कोई इसका प्रतिरोध नहीं कर सकेगा। फिर भी विज्ञान से उन लोगों को शान्ति नहीं मिलेगी। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे, "कालापहाड़ ने इतने अत्याचार किए, मैं होता तो ऐसा कभी न करने देता। काला पहाड़ की कितनी शक्ति है ? भगवान ने हिन्दुओं की जड़बुद्धि नष्ट करने के लिए ऐसा किया था।"

काशी में भास्करानन्द स्वामी के नाम से एक योगी थे। अफगान युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद एक दिन अंग्रेज सेनापति लार्ड आकलैंड स्वामी जी के दर्शन करने गया और उनके पास बैठकर अपनी वीरता का वर्णन करने लगा। सारी बातें सुनने के बाद स्वामी जी ने कहा, "सब भगवान की इच्छा है।" इस बात पर साहब ने गुस्से से विद्रूपात्मक स्वर में जवाब दिया। स्वामी जी ने कहा, "यदि तुम में इतनी शक्तियाँ हैं, तो इस पैंसिल को उठाओ, हम भी देखें।" यह कह कर स्वामी जी ने पैंसिल को मिट्टी में गाड़ दिया। काफी कोशिश के बाद भी वह साहब पैंसिल को मिट्टी से बाहर नही निकाल सका।

"सदगुरु में सब शक्तियां पूर्ण मात्रा में हैं। फिर भी वे भगवान की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं करते हैं। अनेक समय सदगुरु में ऐश्वर्य प्रकाशित होता रहता है। उनके देहत्याग के बाद उनके शिष्य उसे प्रकट करते हैं। ऐसी बात नहीं है कि वे इच्छा करके ऐश्वर्य दिखाते हैं। वह स्वतः हो जाता है।"

"दिन प्रतिदिन विश्व की समस्याएं कठिन से कठिनतर होती जा रही हैं। जन साधारण के कष्ट की कोई सीमा नहीं रही। भावी मंगल की मलय प्रवाहित होनी शुरु हो चुकी है। भविष्य में सर्वाविधि मंगल होगा। हर बात की सुविधा होगी, उसकी झलक दिखाई पड़ रही है। शीघ्र ही भगवान का मंगलमय आशीर्वाद उद्‌भासित होगा। उस समय सर्वसाधारण की खाद्य समस्या दूर हो जाएगी। इन बुरे दिनों से जो बच निकलेंगे और खा पीकर जीवित रहेंगे, वे नवसूर्य के उदय में देश की खुशहाल स्थिति को देखकर आनन्दित होंगे। सदगुरु की कृपा और चित्त शुद्धि के परिणामस्वरूप जिन लोगों को भगवान के प्रत्यक्ष आविर्भाव की अनुभूति होगी, उनकी बात जाने दो, सामान्य खाने पहनने की बात भी किसी को याद नहीं रहेगी।

अभयवाणी

भिन्न-भिन्न अवसरों पर प्रभुश्री ने अपने भक्तों को व्यष्टि या समष्टिगत रूप से आशा की जो वाणी सुनाई है, वह किसी को आलसी या कर्मविमुख करने के लिए नहीं है। यह निडर और निश्चिंत होकर निःसंकोच भाव से निष्काम कर्म सागर में कूद पड़ने का अमोघ संकेत है। इस वाणी का पाठ कर कर्म साधना के प्रति असीम इच्छा जागेगी और मन कृतज्ञता से भर जाएगा। सदैव स्मरण रखना होगा कि यह अभयवाणी व्यर्थ का भय दूर करने के लिए ही प्रदान की गई है। यह आलस्य और कर्मविमुखता को प्रश्रय देने के लिए नहीं है।

"वत्स, मैंने स्वेच्छा से तुम लोगों के अध्यात्म जीवन का भार ग्रहण किया है। यदि मुझ पर तनिक भी विश्वास हो, तो तुम लोगों के लिए चिंता की क्या बात है? समय पर सब कुछ पाओगे।"

"वत्स, निश्चिंत और उद्वेग रहित होकर पहले की तरह निर्भरता रखकर आनन्द सागर में बहते चलो। बीच-बीच में जल भंवर में गिर जाने पर भी यह बात निश्चित रूप से याद रखो कि यह कभी स्थिर नहीं होगा। एक दिन ऐसा आएगा जबकि तुम लोग आनन्दधाम में पहुंच कर प्रेम रस माधुरी का पान कर आनन्दमय हो जाओगे।"
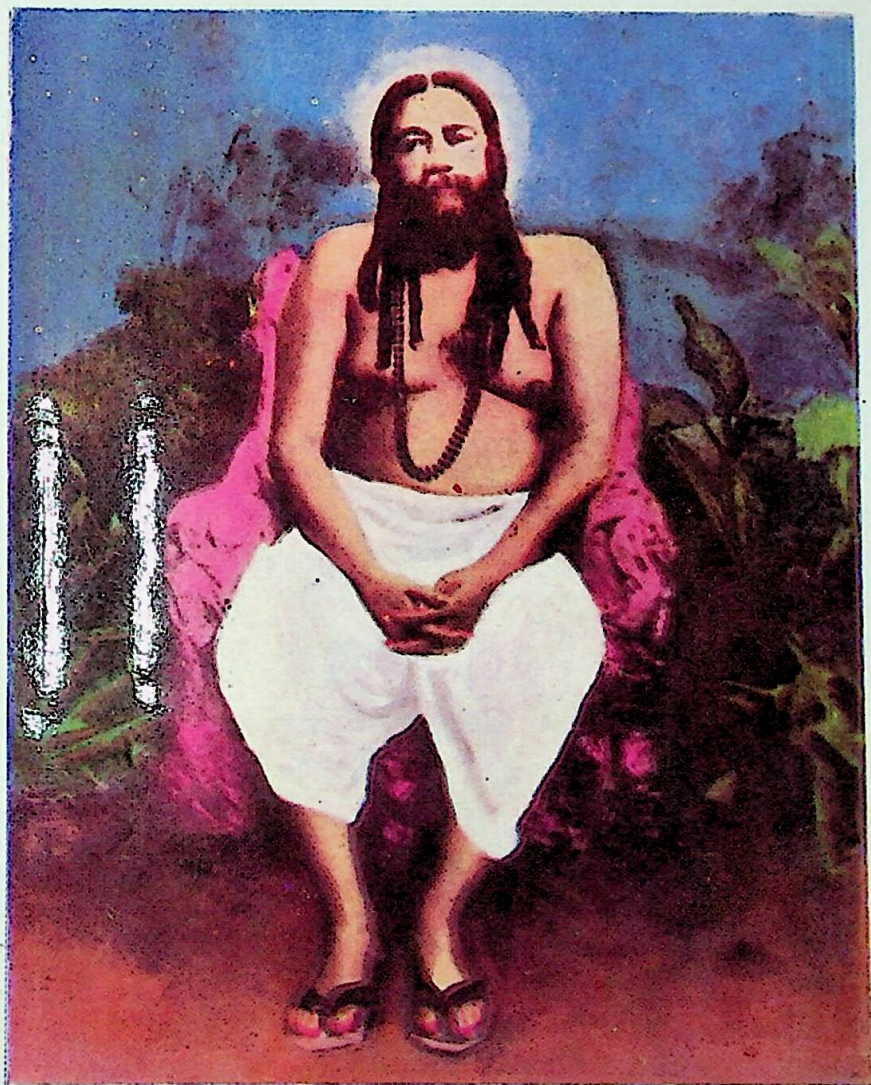
परमहंस श्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव

"अरे, तुम लोग साधना-भजन से कुछ नहीं कर पाओगे। साठ हजार वर्षों तक तपस्या करके भी जो सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाए, जिन के शरीरों पर दीमक की बांबी बन गयी, उनकी तुलना में तुम लोगों की शक्ति भी कितनी है ? तुम लोगों की आयु कितनी है ? इसलिए मैं कहता हूं कि तुम लोग सभी आशाओं को तिलांजलि देकर एकमात्र मेरी शरण में आ जाओ, मेरी ओर अपना मन उन्मुख कर दो। मैं तुम्हारे सारे अभाव दूर कर दूंगा, सभी आशाएं पूरी कर दूंगा। तुम लोगों का सब कुछ होगा, तुम लोग सब कुछ पाओगे। तुम लोगों का कुछ भी अभाव नहीं रहेगा। तुम लोगों के लिए व्यक्तिगत साधना की कोई आवश्यकता किसलिए नहीं है, जानते हो ? तुम लोग मेरे पास आओगे, इसलिए मैंने कठोर तपस्या कर रखी है। तुम लोगों के लिए साधना समुद्र का मंथन कर अमृत का कुंभ ले आया हूं। उस कठोर साधना के परिणामस्वरूप मेरे हृदय में सत्य की जो विमल ज्योति खिल उठी है, उससे अंधेरे से घिरे हुए तुम लोगों का हृदय आलोकित हो जाएगा। अमृत के मधुर आस्वाद से तुम लोग भी अमर हो जाओगे। तुम लोग अमृत की संतान हो। अमृत पर तुम लोगों का नित्य सिद्ध अधिकार है।"

"तुम लोग सोच क्यों रहे हो, तुम लोगों को चिंता किस बात की है ? तुम अपने हृदय की दयनीय स्थिति देख कर निराश क्यों हो रहे हो ? तुम लोगों का सारा सूनापन दूर करने के लिए मैं जो हूं। मुझ पर सारा भार छोड़ दो। आध्यात्मिक उन्नति का भार मुझ पर छोड़ कर निश्चित रहो। मैं तुम लोगों का सारा भार वहन करूंगा। इस पापपूर्ण पंकिल जगत से मैं तुम लोगों को नित्य और ज्योतिर्मय आनन्दधाम में ले जाऊंगा।"

"घनी अंधेरी रात का घोर अन्धकार सैकड़ों लट्ठ के आघात से भी दूर नहीं होता है, परन्तु जिस समय पूर्व दिशा में अरुण राग खिल उठता है, नवसूर्य के उदयाभास से नव प्रभात की सूचना देता है, उसी क्षण सब कुछ आलोकित हो उठता है, अंधकार दूर भाग जाता है। ठीक वैसे ही तुम लोग भी ज्ञान सूर्य की प्रतीक्षा में नीरव और

अनुद्वेलित हृदय में निश्चित बैठे रहो। मुझ पर निर्भर कर निडर रहो। यथा समय तुम लोगों का हृदय सत्य के आलोक से आलोकित हो उठेगा। तुम लोगों के जीवन में नवप्रभात का उदय निश्चय ही होगा।"

"तुम लोगों को कुछ भी नहीं करना होगा। उसके लिए मैं आया हूं। मैंने विश्व हितकारी जिस कार्य की सूचना दी है, तुम लोग उसमें सहायक बनो। मेरे हृदय के साथ एक रूप होकर उस व्रत को पूरा करने में सहायक बनो। मैं प्रतीज्ञा कर कहता हूं, इससे तुम लोगों का हर प्रकार से कल्याण होगा, तुम लोग सब कुछ पाओगे। अन्य साधना भजन की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। फिर तुम लोग किस को लेकर साधना भजन करोगे? तुम लोगों के शरीर, मन और प्राणों में ऐसी शक्ति कहां है? मैं बारंबार कहता हूं कि तुम लोगों के पास कुछ नहीं है। तुम लोग मेरी कृपा पर निर्भर कर उस शुभ दिन की प्रतीक्षा में रहो। तुम लोगों की भुजाओं में शक्ति, हृदय में भक्ति और प्राणों में प्रेम का उन्माद स्वतः जाग उठेगा। तुम लोगों का जीवन धन्य होगा, धरती कृतार्थ होगी।"

तेईसवां अध्याय

नीलाचल वाणी और महासमाधि

ज्योतिर्मय मूर्ति

दिनांक ७ जुलाई, १६३१—आज प्रभुश्री अपराह्न में घूमने नहीं गए, समागत दर्शक मण्डली के साथ बैठे रहे। उनमें से हमारे गोविन्द भाई ने पूछा, प्रभो, हम लोग सदगुरु की पूजा न कर किसी दूसरे देवता की पूजा क्यों करें।

प्रभुश्री—कैसे जानोगे कि तुम्हारे गुरु सदगुरु हैं।

शिष्य—जिसने जान लिया है, वह क्या करेगा ?

प्रभुश्री—मैं जानता हूं कि जो अपने गुरु को सदगुरु के रूप में पहचान लेता है, वह बहुत बड़ा साधक है। उसे दूसरे देवी-देवताओं की पूजा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं दूसरों के बारे में नहीं जानता हूं और केवल अपनी बात कर रहा हूं। तुम लोग जानते हो कि जिस समय मैं गुरु की खोज कर रहा था, उस दौरान कितना कुछ कष्ट नहीं भोगा। परन्तु जब सदगुरु मिल गए, तब मुझे पता चला कि भगवान को पाने का इससे बेहतर कोई और उपाय नहीं है। जहां कहीं भी मेरे पतन की आशंका रहती थी, जैसे रखवाला गाय की रक्षा के लिए उसके साथ-साथ रहता है, उसी तरह वे सदैव मुझे सन्मार्ग पर पर खींच लाते थे। इसलिए मुझे पता है कि भगवान को पाना बहुत

ही सहज है। शिक्षा प्राप्त कर धनार्जन करना हो तो बुद्धि और प्रतिभा होनी चाहिए। व्यापार के लिए मूलधन चाहिए। परन्तु जो व्यक्ति श्रीगुरु पर निर्भरशील है, उसमें विद्या, बुद्धि, प्रतिभा शारीरिक बल, ये सब कुछ न होने पर भी वह भगवान को पा सकता है।

देखो, भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गुरु और भगवान के बारे में बहुत ही सुन्दर ढ़ंग से समझाया है। उन्होंने जिस समय निर्भरता के बारे में समझाया और गुरु के प्रति लक्ष्य रखा तो "अहं" शब्द का प्रयोग किया और जिस समय भगवान के प्रति लक्ष्य रखा तब "तत्" शब्द का प्रयोग किया। भगवान के प्रति लक्ष्य कर उन्होंने कहा —

"तत् प्रसादात् परां शांति स्थानं प्रापस्यसि शाश्वतं"

श्रीमत् भगवद् गीता १८/६२

यदि उन पर निर्भर नहीं कर सकते हो, तो—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणब्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

श्रीमत् भगवद् गीता १८/६६

यह उपदेश प्रदान करते समय प्रभुश्री गुरु गम्भीर मूर्ति धारण कर ऐसे तन्मय हो गए कि उनकी आकृति बदल गई। भक्त प्रभुश्री को हजारों किरण के समान प्रभायुक्त ज्योतिर्मय मण्डल के भीतर पद्मासन पर आसीन देखकर मूर्छित होकर उनके चरणों में गिर पड़ा। प्रभुश्री ने उसे गोद में उठा कर खुश होकर कहा, "इसका नाम शायद गोविन्द है।" प्रभुश्री ने इससे पहले उसे नहीं देखा था।

दीक्षा का फल

३० अप्रेल, १९३३ : जिस समय प्रभुश्री नीलाचल कुटीर में रह रहे थे, उस समय एक दिन सुबह एक भक्त ने आकर उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। प्रभुश्री ने कहा यदि तुम मुझे यह नहीं बताओगे कि दीक्षा का उद्देश्य क्या है, तो मैं तुम्हें दीक्षा नहीं दूंगा।

इस पर जब वह आगन्तुक भक्त चुप बैठा रहा, तो प्रभुश्री स्वतः कहने लगे —

"दीक्षा का उद्देश्य शक्ति लाभ नहीं है। दीक्षा के द्वारा भगवान भी नहीं मिल सकते। मनुष्य में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह अपनी शक्ति से भगवान को वश में कर सके। चूहा कितना भी बड़ा क्यों न हो, वह पहाड़ से टक्कर नहीं ले सकता। जुगनू में इतनी शक्ति नहीं कि वह सूरज जैसा प्रकाश दे सके। भगवान को वश में करने का एकमात्र उपाय व्याकुलता है। यदि तुम केवल उन्हीं के लिए रो सकते हो, तो वे तुम्हारा सर्वाभीष्ट पूरा कर देंगे। छोटा बच्चा किसी चीज का अभाव महसूस करते ही रो उठता है। उसका रोना सुनते ही उसकी माँ सारा काम छोड़ कर, यहाँ तक कि पति की बात को टाल कर दौड़ते हुए आकर उस बच्चे का अभाव पूरा कर देती है। ठीक वैसे ही यदि हम लोग विद्या बुद्धि भुलाकर बच्चों की तरह भगवान के पास रो सकते हैं, तो वे तत्काल हमारा अभाव दूर कर देंगे। परन्तु हम ऐसा नहीं कर पा रहे हैं। हम लोग धन के अभाव में रो सकते हैं। धन पाने के लिए संसार के हर किसी असाध्य कार्य में हाथ डाल सकते हैं। परन्तु चित्त की अशुद्धिवश हम भगवान की आवश्यकता नहीं समझ पा रहे हैं। इसलिए हमें उनके लिए रोना नहीं आता है। जिस प्रकार स्थूल शरीर की रक्षा और शांति के लिए धन की आवश्यकता होती , ठीक वैसे ही सूक्ष्म शरीर की रक्षा और शांति के लिए दीक्षा आवश्यक है। दीक्षा और मंत्र के नियमित जप से दम्भ और अभिमान नष्ट होकर शरणागत का भाव आता है और भगवान का अभाव आसानी से समझा जा सकता है। अभाव का बोध होते ही उनके पास रोने की शक्ति प्राप्त होती है। उस समय वे दर्शन दिए बिना नहीं रह सकते। अतः दीक्षा का उद्देश्य भगवान के लिए व्याकुलता पैदा करना है।

उद्धरफ साहब और प्रभुश्री

दिनांक ७ मार्च, १९३३ स्थान : नीलाचल कुटीर, पुरी

प्रसंगवश प्रभुश्री ने कहा, "साहब लोग बिना समझे-बूझे हमारी निन्दा करते रहते हैं, पर उन्हें समझा देने पर आसानी से समझ जाते

हैं। सर जॉन उडरफ एक उच्च कोटि के तांत्रिक थे। उन्होंने "तंत्र भूषण" की उपाधि लेने के लिए आकर चैतन्य लाईब्रेरी में तंत्र पर भाषण देते हुए कहा, "तंत्र में जो साधनाएं हैं, वे सब बहुत ही स्थूल हैं। मुझे लगता है कि इससे भी सूक्ष्म शक्ति है। संभवतया हिन्दू लोग इससे ऊपर नहीं गए हैं अथवा उन्हें इसकी जानकारी नहीं है। "विजया" नामक पत्रिका में इस भाषण का अनुवाद प्रकाशित हुआ। इसे "विजया" पत्रिका से पढ़ कर मैंने अपने एक शिष्य के द्वारा उसका प्रतिवाद कराते हुए कहा, "साहब, तुमने गलत समझा है। भगवान की अनन्त शक्तियां हैं। उनमें से तीन शक्तियां मुख्य हैं, माया शक्ति, चित्त शक्ति और तटस्था शक्ति। फिर चित्त शक्ति तीन भागों में विभाजित हैं—सम्वित्, संधिनी और आह्लादिनी। तंत्र में केवल माया शक्ति की उपासना का वर्णन है। इस शक्ति से केवल सृष्टि, स्थिति और लय की क्रिया साधित होती है। परन्तु चित्त शक्ति भगवान की स्वरूप शक्ति है। आपको वैष्णव शास्त्र से इस शक्ति के बारे में विस्तृत जानकारी मिलेगी।"

इस तर्क से संतुष्ट होकर उडरफ साहब पुरी आए और उन्होंने मुझसे भेंट कर मुझसे शक्ति तत्त्व के अनेक गूढ़ रहस्यों की जानकारी प्राप्त की।

स्वप्न और सदगुरु

दिनांक २४ मार्च, १९३१ स्थान : नीलाचल कुटीर, पुरी

शिष्य—प्रभो, कई बार स्वप्न में सदगुरु के दर्शन और उपदेश प्राप्त होते हैं, यह यथार्थ सत्य है या मन की भ्रांति है।

प्रभुश्री—यह प्रत्यक्ष सत्य है। प्राणमय कोष में जो स्वप्न दिखाई देता है वह सामान्य तन्द्रावश होता है। जिस समय मन मनोमय कोष में रहता है, उस समय चिंतन के अनुरूप स्वप्न दिखाई देता है। जिस समय मन विज्ञानमय कोष में रहता है, उस समय श्रीगुरु के दर्शन प्राप्त होते हैं। ये सब सत्य हैं और उनके उपदेश भी सत्य हैं। यदि

स्थूल देहधारी गुरु और स्वप्न में दर्शन देने वाले गुरु की बातें आपस में मेल नहीं खाती है और यदि गुरु स्थूलदेह में होंगे, तो स्थूल देहधारी गुरु की बात माननी पड़ेगी, क्योंकि अनेक समय श्रीगुरु परीक्षा लेते हैं।

शिष्य—प्रभो, श्रीगुरु को सूक्ष्म में पाने से पहले यदि उनका तिरोधान हो जाता है, तो शिष्य गुरु को कैसे पाएगा ?

प्रभुश्री—देखो, स्थूल रूप में पाना कुछ नहीं है, सूक्ष्म रूप में पाना ही वास्तविक पाना है। इस समय यदि तुम आंखें मूंद लोगे तो मुझे नहीं देख सकोगे। इन्द्रियों की सहायता से स्थूल की अनुभूति होती है। इससे ऊपर एक अतीन्द्रिय अनुभूति है। उससे जो प्राप्ति होती है, वह सूक्ष्म है। इसलिए याद रखो कि स्थूल देह में न होने पर भी श्रीगुरु हैं। तब स्थूल में नहीं पाने से सूक्ष्म में पाने का लोभ नहीं हो सकता। स्थूल में जैसा सोचोगे, सूक्ष्म में वैसा ही अनुभव करोगे। इसके लिए कोई साधना नहीं है। केवल मुझसे प्रेम कर सकने से सब कुछ खुल जाएगा।

शिष्य—प्रभो, मुझे पहले ध्यान में आपकी सूक्ष्म मूर्ति के दर्शन प्राप्त होते थे, अब क्यों नहीं देख पाता हूं।

प्रभुश्री—प्रभुश्री को देखना हो, तो अन्तर में रोना पड़ेगा, व्याकुलतापूर्वक प्रार्थना करनी होगी। जब तक मैं स्थूल देह में हूं, ऐसे ही देखते रहो। बाद में जब मैं देहत्याग करूंगा, तब मैं तुम लोगों के अन्तर में रह जाऊंगा। उस समय तुम लोग मुझे हमेशा देख सकोगे।

महासमाधि का पूर्वाभास

प्रभुश्री ने मठ से लौट कर विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और उसके बाद हमारे पास संदेश भेजा कि मैं ३१ अगस्त, १९३५ को पुरी पधार रहा हूं। हम सब ने उस दिन सुबह पुरी रेलवे स्टेशन पर उनके दर्शन किए और उनके गले में फूलमाला पहनाई तथा उन्हें नीलाचल कुटीर में लाए। इस वर्ष पुरी में सार्वभौम भक्त सम्मेलन बुलाया गया था। हम लोग भक्त सम्मेलन के पूरे आयोजन में लगे हुए थे।

प्रभुश्री ने नीलाचल कुटीर में पहुंचने के बाद पहली भेंट में वनमाली भाई से कहा, "इस वर्ष तुम यहाँ का सम्मेलन स्थगित कर दो। तुम लोग पास में होने वाले सम्मेलन में भाग लो, बाद में यहाँ सम्मेलन करना।" प्रभुश्री की बात सुनकर हम लोगों ने निराश न होकर उस वर्ष का सम्मेलन पुरी में ही करने की जिद पकड़ी। उस समय हम लोग प्रभुश्री का उद्देश्य कुछ नहीं समझ सके। हमारी बात सुन कर प्रभुश्री ने कहा, "अच्छा, ठीक है, जैसी तुम लोगों की इच्छा।"

हम लोग अपराह्न में प्रभुश्री को रिक्शे पर बिठा कर समुद्र तट पर घुमाने ले जाते थे। प्रभुश्री पुरी की गलियों में घूमने के बाद समुद्र के तट पर बैठकर ध्यान करते थे। हम लोग पुनः शाम के समय प्रभुश्री को नीलाचल कुटीर में छोड़ जाते थे। साथ में मनु होती थी। आनन्दा ब्रह्मचारी रिक्शा खींचते थे। नृप भाई, लक्ष्मीधर भाई आदि रिक्शे के पीछे पीछे चलते थे। हम लोग भी पीछे पीछे होते थे। इस समय प्रभुश्री हम लोगों के साथ विभिन्न प्रसंगों पर दिल खोल कर बातें करते थे। जिन प्रसंगों पर बातें होती थीं, उन सबको समाप्त करने के बाद अन्त में प्रभुश्री अपने देहत्याग की बात कहने लगते थे।

एक दिन प्रभुश्री ने अचानक कहा, "देखो, मेरी मृत्यु के बाद तुम लोग नीलाचल कुटीर में आते रहोगे। मैंने यह कुटीर महिला भक्तों को दिया है। यदि मैं पुरी में देह त्याग करूं, तो यहाँ पर (स्थान को दिखा कर) मेरी समाधि बनाओगे। मनु के वंशधर मेरी समाधि की सेवा पूजा करेंगे। जिस प्रकार गुरुधाम में मेरे आत्मीय लोग सेवा पूजा कर रहे हैं, मनु के वंशधर भी यहाँ पर वैसा ही करेंगे। यदि ऐसा नहीं होगा, तो किसी नैष्ठिक ब्राह्मण द्वारा सेवा पूजा की व्यवस्था करोगे।"

और एक दिन हम लोग प्रभुश्री को घेर कर बैठे हुए थे। प्रभुश्री अचानक कह उठे, "देखो, मेरा आसन यहाँ पर इस समय जैसा है, मेरे देहत्याग के बाद वह उसी प्रकार वैसा ही रह सके, तुम लोग उसकी व्यवस्था करोगे। मेरा आसन वर्तमान की तरह सुसज्जित रहेगा, भक्त-गण आकर देखते रहेंगे। रामकृष्ण देव को देहत्याग किए हुए कितने

दिन हो चूके हैं, परन्तु उनका आसन पहले की तरह सुसज्जित है–मानो वे कहीं बाहर गए हुए हैं, अभी-अभी लौटेंगे। तुम लोग भी मेरे आसन को उसी तरह सजा कर रखोगे। हम इस बात का उद्देश्य नहीं समझ सके। यह न समझ पाने के कारण कि प्रभुश्री ऐसा निर्देश क्यों दे रहे हैं, हमारा मन व्यग्र हो उठा। दिनांक ५ नवम्बर १९३५ मंगलवार के दिन प्रभुश्री बड़ा दांड* से होकर इन्द्रद्यूम्न सरोवर तक गए। रास्ते में कहने लगे, "बाहर आने पर मेरा मन प्रफुल्लित रहता है, परन्तु घर में जाते ही मन समाहित हो जाता है। इसलिए डाक्टर बुलाया था। रात में नींद नहीं आती है। डाक्टर की राय में मेरे शरीर में कोई रोग नहीं है। फिर भी पता नहीं क्यों मेरा दिल कमजोर क्यों लगता है? डाक्टर की बात से मन नहीं माना। यह मेरी मृत्यु का लक्षण है। कुछ समय रुक कर पुनः कहने लगे। "हृदय की गति रुक कर मरना बहुत अच्छी बात है। ऐसी मृत्यु पुण्यात्मा साधु महापुरुषों के लिए बहुत अच्छी है। परन्तु सर्वसाधारण के लिए अच्छी नहीं है। भुवन ब्रह्मचारी के पिताजी की ऐसी ही मृत्यु हुई थी। एक दिन मैंने उनके घर पर कहा, "भुवन, तेरे बाबा अबकी बार नहीं रहेंगे।" उसने यह बात सब को बता दी। यह सुनकर उसके पिता को मेरे प्रति थोड़ा क्रोध हुआ, क्योंकि वे सोचते थे कि सभी उनके पास बैठे रहें। मेरे चले आने के कुछ दिन बाद तार मिला कि वे मर चुके हैं। यह मृत्यु ज्ञानपूर्वक मृत्यु है। मेरी यह अवस्था मृत्यु का लक्षण है।" कुछ समय तक चुप रह कर पुनः कहने लगे, 'हो सकता है कि मैं पांच-छः मास के भीतर मर जाऊंगा। यह देहगत धर्म है। जब मैं जान सकूंगा कि मैं मरूंगा, तो मुझे बड़ी शांति होगी। जिस प्रकार अविश्रांत जीवन में विश्राम आता है, वैसा महसूस होगा। चेचक के समय लीला माँ ने मेरी बड़ी सेवा की। फणी बाबू और प्रज्ञानन्द स्वामी उनसे परामर्श कर मेरी सेवा कर रहे थे। मैं समाधिस्थ हो जाता था। परन्तु लीला माँ मुझे जगा देती थीं।

---

* पुरी की सबसे चौड़ी सड़क जिस पर श्रीजगन्नाथ जी का रथ चलता है।

उस अवस्था में वह बार-बार कहती थीं, हम प्रभुश्री को चाहते हैं, उन्हें रहना होगा। इससे मेरी समाधि टूट जाती थी।"

पुरी के असिस्टेंट सर्जन प्रभुश्री को देखने आए। उनका रक्त चाप १४० था। डाक्टर की राय के अनुसार साठ वर्ष की आयु के लोगों के लिए वह कुछ नहीं है। हृदय यंत्र (Heart) में कोई दोष नहीं है। चेहरा खूब आनन्दमय है, ऐसा कह कर डाक्टर चले गए। परन्तु इससे प्रभुश्री का मन नहीं माना।

उस दिन अपराह्न में रिक्शे में जाते समय प्रभुश्री ने कहा, "नृपाल, दुर्गाचरण, रिक्शे के साथ चलते समय तुम लोग क्या कष्ट महसूस करते हो। तुम लोगों के साथ आने से मुझे बड़ी खुशी होती है। जिस दिन तुम लोग नहीं आते हो, मैं बराबर पूछता रहता हूं।" उसके बाद अपनी देह की ओर लक्ष्य कर कहा, "मेरे भीतर जो अवस्था है, इससे या तो मेरी मृत्यु हो सकती है या मैं नई शक्ति या नए उत्साह के साथ जगत में पुनः दूसरे भाव में कार्य करूंगा।"

यह सुनकर हम लोगों ने पूछा, "प्रभो, आप के चले जाने पर हम सब कहां जाएंगे ?, क्या करेंगे ?" इसके उत्तर में प्रभुश्री ने कहा, "क्यों, मैं जहां पर रहूंगा, तुम लोग भी वहीं पर रहोगे।" इस प्रकार उस दिन की बातचीत पूरी हुई। तथापि हमें विश्वास नहीं हुआ कि प्रभुश्री इतना शीघ्र हमारी आँखों से दूर हो जाएंगे।

विदाई आशीर्वाद

दिनांक ६ नवम्बर १६३५—आज प्रभुश्री रिक्शे से शंकराचार्य मठ होकर हरचण्डी गली में गए। वहां से बी० एन० आर० होटल तक जाकर लौटते हुए कहा, "इस समय मेरा मन बहुत प्रफुल्ल है। मन में खुशियों की लहर दौड़ रही है। घर में स्थिर होकर बैठते ही पता नहीं क्यों कमजोरी महसूस होती है। आज खाना खाते समय खा नहीं सका। भात पेट के अन्दर नहीं गया। यह सुनकर नृप भाई ने गिरिधारी

जगती को बुला कर जल चिकित्सा करने का सुझाव दिया। प्रभुश्री उनका मन रखने के लिए जगती को बुलाने पर राजी हो गए।

उसके बाद हम लोगों को लक्ष्य कर कहा, "मेरे मर जाने के बाद तुम लोग मुझे अच्छी तरह पा सकोगे। मैं जिस शक्ति को लेकर जगत में आया था, मेरा स्थूल शरीर उस शक्ति को धारण करने के उपयोगी नहीं रहा। अबकी बार मैं समाधिस्थ होकर देहत्याग करूंगा अथवा नई शक्ति लेकर लौट आऊंगा। जो शक्ति मेरे भीतर केन्द्रित है, मेरी मृत्यु के बाद वह शिष्यों के भीतर संचारित हो जाएगी।"

कुछ समय तक चुप रहने के बाद प्रभुश्री ने पुनः कहा, "जो लोग भक्त के रूप में जीवन बिताएंगे, उनकी एक ही जन्म में मुक्ति होगी और जो लोग मेरे द्वारा प्रदत्त साधन भजन कर रहे हैं, पर मुझे नहीं चाहते हैं, वे पुनः जन्म लेंगे और दूसरे सदगुरु पाएंगे।" यह सुनकर हमने पूछा, "आपके चले जाने के बाद क्या हम लोग आपको इस रूप में देख सकेंगे।"

प्रभुश्री—हां, तुम्हें चिन्ता किस बात की है। तुम लोग मुझे बिल्कुल इसी रूप में पा सकोगे। इस चेहरे में भी देख सकोगे। जिस समय तुम लोगों के पास कोई काम नहीं होगा उस समय "जयगुरु" जप करोगे। ऐसा करते समय एक दिन ऐसा आएगा कि रात को सोते समय भी तुम लोग महसूस करोगे कि तुम्हारे भीतर "जयगुरु" जप चल रहा है। मैं उसी समय तुम्हारे अन्तर में खिल उठूंगा।"

हमने पूछा, "प्रभो, आप तो कह रहे हैं कि देहत्याग करेंगे, फिर अपना गुरुभार किसको देकर जाएंगे?"

प्रभुश्री ने उत्तर दिया, "नहीं, मैं स्वयं ही गुरु रहूंगा। किसी दिन शुद्ध आधार मिलने पर मैं उसके भीतर आविष्ट हो जाऊंगा। मेरे भक्तगण मुझे इसी रूप में पाएंगे।"

दिनांक १० नवम्बर, १९३५, कार्त्तिक पूर्णिमा—तार प्राप्त होने पर आज फणी बाबू आदि पधारे। प्रभुश्री ने पहले ही दिन बनमाली

भाई को देहत्याग का पूरा विवरण दे दिया था और यह भी संकेत दिया था कि यदि इस अवस्था में परिवर्तन नहीं हुआ, तो वे देहरक्षा करेंगे।

दिनांक १२ नवम्बर, १९३५—आज गिरिधारी बाबू ने एक्स-रे से परीक्षण किया। परन्तु उससे कोई लाभ न होते देखकर प्रभुश्री ने कहा, "उनसे कहो कि मैंने तीन दिन तक उनके नियमों का पालन किया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। अब मैं कलकत्ता जा रहा हूं। बाद में वहां से आने पर देखा जाएगा।" उसके बाद हम सब घूमने निकले। प्रभुश्री पानी पम्प के रास्ते से होकर गए। पानी पम्प के पास पहुंचने के बाद वे रिक्शे से उतर गए और पानी के नलों को देख आए। बाद में फणी बाबू आदि के साथ समुद्र तट पर कुछ देर बैठकर घर लौटे।

दिनांक १३ नवम्बर १९३५—आज सुबह हम लोगों के नीलाचल कुटीर में पहुंचने पर प्रभुश्री ने कहा, "आज मैं कलकत्ता जा रहा हूं। तुम लोग शीघ्र आकर सब सामान स्टेशन पर पहुंचा देना। अपराह्न को बिल्कुल पहले की तरह वे यथा समय रिक्शे पर घूमने निकले। नीलाचल कुटीर से निकल कर दोलमण्डप गली में घूम कर डाक घर के पास गए। वहां पर ६ बजकर ३५ मिनट होते देख अदालत के रास्ते होकर सीधे बी० एन० आर० होटल के रास्ते तक गए। उसके बाद स्टेशन होकर हैजा अस्पताल और बड़े पुल के रास्ते लौटते समय प्रभुश्री ने कहा, "आज थोड़ा जगन्नाथ जी के दर्शन भी करने होंगे। उसके बाद मरीचि कोट गली के रास्ते से होकर सिंहद्वार के पास पहुंच कर रिक्शा रोका। कुछ देर तक पतित पावन की ओर निहार कर कहा, "यही मेरे जगन्नाथ जी के अन्तिम दर्शन हैं।" वहां से आकर नीलाचल कुटीर में पहुंचे और वहां से कार में सवार होकर स्टेशन की ओर निकल पड़े। प्रभुश्री के गाड़ी में बैठते समय हम लोगों ने फूलमाला आदि पहनाकर उन्हें प्रणाम किया। प्रभुश्री ने पैर फैला कर आशीर्वाद दिया। आज प्रभुश्री के अन्तिम दर्शन और रिक्शे के साथ जाने की भी अन्तिम बारी थी।

प्रभुश्री कलकत्ता पहुंच कर पहले वेलघरिया में कुछ दिन रहे। उसके बाद वीडन स्ट्रीट में किराए के एक मकान में रहने लगे। प्रभुश्री की अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। भक्तगण डाक्टर विधान चन्द्र राय को लाए। प्रभुश्री ने कहा, "अब की बार विधान के विधान से कोई लाभ नहीं होगा।" डाक्टर ने पूछा, "आप को क्या तकलीफ है ?"

प्रभुश्री—मुझे क्या तकलीफ है, वह मैं कैसे बताऊं ? मान लो, किसी निःस्तरंग शांत पुष्करिणी में एक कंकर फेंकने पर पहले उसमें एक छोटी लहर उठती है। बाद में वह धीरे-धीरे चारों ओर व्याप्त होकर समूची पुष्करिणी में फैल जाती है। मेरी अवस्था भी बिल्कुल वैसी है। इसे तुम्हारे डाक्टरी शास्त्र में क्या रोग कहते हैं, यह देखो।"

दिनांक २८ नवम्बर, १९३५ को प्रभुश्री ने भक्त मोतीलाल से कहा, "मैं तुम लोगों का मंगल चिंतन करने के लिए जा रहा हूं।" अंत में दिनांक २९ नवम्बर १९३५ आया। प्रभुश्री ने सेवक भुवन ब्रह्मचारी से कहा, "जिस शरीर से मैं किसी को संतुष्ट नहीं कर सकता, किसी से मिलने नहीं जा सकता, किसी की सेवा नहीं कर सकता, उस शरीर को रखने से क्या लाभ ?" प्रभुश्री को धीरे-धीरे आत्मस्थ होते देखकर भुवन भाई को सन्देह हो गया। वे बारम्बार कहते रहे, "प्रभो, उठिए, मुंह धोइए, बात करिए, जिससे कि वे अपने अन्तर में डूब न जाए। प्रभुश्री ने तब तकअपने अंतर राज्य में डूबना आरम्भ कर दिया था। अनेक बार पुकारने पर प्रभुश्री ने कहा, 'और क्यों पुकार रहे हो बाबा, मुझे अन्तर में डूब जाने दो।" यही प्रभुश्री के श्रीमुख से निःसृत अन्तिम वाणी है।

महासमाधि

प्रभुश्री को बिस्तर से उठने का प्रयास करते देख भुवन भाई ने उन्हें पकड़ कर बिस्तर पर बिठा दिया। प्रभुश्री आसन पर बैठे। आसन पर बैठने के बाद उन्होंने घर में जितने लोग थे उन्हें आँखें खोल कर एक बार अच्छी तरह देख लिया, उसके बाद आँखें मूंद ली। अन्त

में १ बजकर १५ मिनट पर उन्होंने शेष निःश्वास लिया। उसके बाद उनका जल्दगम्भीर स्वर और नहीं सुनाई दिया, वे स्नेह सिक्त आँखें फिर नहीं खुलीं। विराट प्रतिष्ठान का प्राण प्रदीप बुझ गया, असंख्य भक्तों के हृदय स्वामी का नश्वर शरीर पड़ा रहा। आत्मदर्शी, जीवन्मुक्त योगी गुरु योग-पथ पर अन्तरमें ही डूब गए।

हम लोग आज नहीं समझ पा रहे हैं कि हम क्या खो बैठे हैं। हम यह भी नहीं जानते हैं कि उन्होंने हमारे भीतर जो आत्मबोध जागृत करा दिया है, हम अपने जीवन में उसे प्रत्यक्ष रूप से बोध करने के अधिकारी भी होंगे अथवा नहीं। परन्तु हमारे कानों में उनकी यह वाणी सतत गूंजती रहती है—"देह त्याग करने के बाद मैं जगद्गुरु के साथ मिल जाऊंगा सही, पर तुम लोगों को मेरी अधिक उपलब्धि होगी। मैं तुम लोगों के बीच शीघ्र ही खिल उठूंगा। तुम लोग पुनः मेरे लिए व्याकुल होगे।"

आज हम लोग अन्तर में समझ रहे हैं कि वह सत्य है, अटल सत्य है। आज अश्रुजल ही हमारा सम्बल है। अर्घ्य देने के लिए हमारे पास कुछ भी तो नहीं है। हे भगवान ! आप नरदेह धारण कर जितने दिन हमारे बीच विराजमान रहे, मानव सुलभ दुर्बलता और माया के भ्रम-वश हमसे कितनी त्रुटियाँ नहीं हुई होंगी। तुम्हारे स्थूल देह में रहते समय हमने क्षमा याचना करने का अभिमान कभी नहीं छोड़ा। आज पछतावा हो रहा है, हे प्रभो, हे अन्तर देवता, हे अन्तर के शांतिदाता ! मन में शांति दो, हृदय का अन्धकार दूर कर दो। तुम अपने द्वारा प्रदर्शित पथ पर अग्रसर होने का अशीर्वाद दो।

जयगुरु जयगुरु जयगुरु

उपसंहार

पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि अपने भीतर के शक्ति केन्द्र को जागृत करने के लिए श्रीगुरु का होना नितांत आवश्यक है। श्रीगुरु नित्य, सत्य और शाश्वत हैं। उनकी जरा-मृत्यु नहीं है। अतः वे नित्य वर्तमान और सनातन हैं। वे पहले जिस प्रकार थे अब भी वैसे ही हैं। हम लोगों के परमाराध्य गुरुदेव प्रभुश्री भी सदगुरु के रूप में नित्य वर्तमान हैं। सदगुरु करुणा की सघन मूर्ति हैं। उनकी महिमा अपरम्पार है। अतः वे स्थूल देह का त्याग कर देव शरीर में वर्तमान हैं। हम लोग जिस प्रकार उनके अतीत जीवन की लीला कहानी का स्मरण कर उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति अर्पित करते हैं, ठीक वैसे ही उनके प्रति सदगुरु के रूप में अब भी श्रद्धा कर रहे हैं। ऐसी बात नहीं है कि वे ऐतिहासिक महापुरुष के रूप में हैं। वे अब भी इस पृथ्वी पर स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में विहार कर रहे हैं अथवा लीला कर रहे हैं। वे अब भी अपने अनुयायियों और जनसाधारण को दर्शन दे रहे हैं और उपदेश प्रदान कर दिव्य मार्ग का दिग्दर्शन करा रहे हैं। सदगुरु विरले और दुर्लभ हैं। जो लोग सदगुरु के दर्शन कर रहे हैं और जिन्होंने किया है, उनका जन्म सार्थक है। श्रीगुरु की महिमा शुद्ध चित्त में प्रतिफलित होती है। सदगुरु ही भव बन्धन से मुक्त करने का एकमात्र अवलम्बन हैं। उनके दुर्लभ चरण अब भी धरती को पावन कर रहे हैं। इच्छा करने पर कोई भी सामान्य चेष्टा से आज भी उनके दर्शन प्राप्त करके धन्य हो सकता है। श्रीगुरु दया और करुणा की घनीभूत मूर्ति हैं। इसलिए वे ताप से संतप्त और जराग्रस्त शिष्य-भक्तों को भक्ति का पथ प्रदर्शित करके चिर काल से युवक के रूप में नित्य विराजमान हैं। वे ज्ञानवृद्ध युवा गुरुदेव ही ताप से दग्ध शिष्य-भक्तों का उद्धार करने के

लिए सदैव इस पृथ्वी में विचरण कर रहें हैं। जो लोग संसार के विविध तापों से संतप्त हैं, सदगुरु का दर्शन प्राप्त करते ही उनका हर दु:ख दूर हो जाता है। वे भव ताप से तापित शिष्य-भक्तों को दर्शन प्रदान कर उनमें शक्ति का संचार करते हैं और दिव्यज्ञान रूपी दीक्षा प्रदान करते हैं। श्रीगुरु अपने मुंह से कुछ भी व्यक्त न करके भी अपने भाव या शक्ति को शिष्य-भक्तों के भीतर संचारित कर सकते हैं।

ब्रह्मविद गुरुदेव की शक्ति विभिन्न भाव में शिष्य-भक्तों के भीतर संचारित होती है। इसलिए अनेक भक्त इन अनुयायियों के दर्शन करने से पहले उनके प्रति अनुरक्त हो जाते हैं। इससे पता चलता है कि जिस प्रकार सदगुरु नित्य हैं, उनके अनुयायी भी वैसे ही नित्य हैं। उनके सम्बन्ध अन्तर राज्य में नित्य वर्तमान हैं। इस भाव की उपलब्धि करने के लिए उनके आश्रित शिष्य-भक्तों को उन महापुरुष के ध्यान में अपने चित्त का लय करना होगा। ब्रह्मविद गुरुदेव के ध्यान से अपने चित्त का लय करना होगा। ब्रह्मविद गुरुदेव के ध्यान से चित्त की निम्ना-भिमुखी गति स्वत: रुक जाती है। इसलिए महापुरुषों का ध्यान, चिंतन और भावना तथा उनकी वाणी का अनुशीलन तथा उनके प्रियकर्म को करने से चित्त सहज ही शुद्ध और शांत भाव धारण करता है। जिनका अवलंबन लेकर चित्त ऊर्ध्वमुखी होता है, उन्हें ही सदगुरु या भगवान कहते हैं। उनसे प्रेम कर उनकी सेवा के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना सहज साध्य होता है। शुद्ध चित्त में सदगुरु के गुण और उनका ज्ञान प्रतिबिम्बित होता है। उनका प्रिय कर्म करना ही उनकी सेवा है। मन की स्थिरता ही उनके दर्शन प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। श्रीगुरु मन को निस्तरंग भूमि पर नित्य वर्तमान हैं। साधारणतया मन सतत बाहरी घात-प्रतिघातों से तरंगायित रहने के कारण चंचल या अशुद्ध रहता है। उस तरंगायित अवस्था को शांत करना हो, तो अपने जीवन में श्रीगुरु भगवान का अभावबोध जागृत करना नितांत आवश्यक है। इसके लिए साधुसंग और शास्त्रालोचना करना परम कर्त्तव्य है। गुरु सेवा, साधुसंग और शास्त्र पाठ जीवन की अमूल्य निधि है। इनमें गुरु

सेवा सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि गुरु सेवा से साधुसंग और शास्त्र पाठ का फल मिलता है।

भक्तों को सर्वप्रथम अपने जीवन में श्रीगुरु भगवान की आवश्यकता की उपलब्धि करनी चाहिए। इसके बाद उनकी प्राप्ति के लिए व्याकुलता उत्पन्न होने पर साधकगण उन्हें पाने के लिए साधना पथ पर अग्रसर हो सकेंगे। मन के ऊपरी स्तर की तरंगायित अवस्था ही जगत के रूप में प्रकाशित है और वह इस सीमा तक विकारग्रस्त है कि उसमें तनिक भी सुख और शांति नहीं है। अतः शांति प्राप्त करने के लिए मन को उस निस्तरंग भूमि में पहुंचना चाहिए। सदगुरु उस निस्तरंग भूमि पर नित्य वर्तमान हैं। इसलिए किस प्रकार उनके पास जाना होता है, सदगुरु ने उस पथ का भी निर्देश दिया है। वे देशवासी साधारण जन को मुक्ति का पथ प्रदर्शित करने के लिए निर्विकल्प भूमि के नैसर्गिक, एवं अनुपम आनन्द का त्याग कर सदगुरु के रूप में जनसमाज में लौटे हैं। उन्होंने देखा कि देशवासी उनके उद्बोधन मंत्र से उद्बुद्ध होने पर भी आधारशुद्धि के अभाव में उनकी भावधारा का पूर्ण विकास नहीं हो पा रहा है। इसलिए उन्होंने चित्त शुद्धि के लिए ध्यान और नाम साधना की व्यवस्था की है। नाम के साथ नामी का नित्य संबंध है। उनसे प्रेम कर उनके दर्शन प्राप्त करने के लिए नाम और नामी को अभिन्न मान कर उनके प्रदत्त साधना का अवलबन लेते हुए अहर्निश नाम जप का अनुशीलन अथवा अभ्यास करने से मन शुद्ध और शांत भाव धारण कर उनके लिए व्याकुल होगा। वह नाम ही सिद्ध मंत्र "जयगुरु" है। अतः भक्तगण उनके प्रदत्त सिद्धनाम, "जयगुरु" का जप कर चित्त का लय और उसकी एकाग्रता से श्री गुरुदेव के साक्षात् दर्शन प्राप्त कर धन्य होंगे। सदैव जागृत रहने के लिए उन्होंने सभी को उपर्युक्त नाम रूपी अमोघ अस्त्र प्रदान किया है। नींद में जागृत रह कर नाम का आश्रय लेते हुए उनके चरणों में आत्म समर्पण करना ही शिष्य-भक्तों की एक मात्र साधना है। उनके द्वारा प्रतिष्ठित संघ में योगदान देकर उनका ध्यान और उनके प्रसंग की पर्यालोचना से उन्हें पाने के लिए अन्तर में अभावबोध या

व्याकुलता पैदा करनी चाहिए। व्याकुलता ही उन्हें प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है। जिस समय उन्हें पाने के लिए अन्तर में सच्चा अभावबोध जागृत होगा, उस समय उनके दर्शन प्राप्त करना सहज साध्य होगा। सच्चा प्यार करना ही भावनिष्ठा है। अतः श्रीगुरु के अन्तर्धान होने के बाद ही सच्चे भक्तों की परीक्षा होती है। उनकी स्थूलदेह के नाश होने पर भक्ति अथवा प्रेम करने का भाव नष्ट नहीं होता है। उनके अन्तर्धान होने के बाद जिन लोगों को उनके अस्तित्व पर अविश्वास होता है, उनका जीवन यों ही व्यर्थ हो जाता है। वे भक्त नहीं हैं। गुरुदेव के प्रति प्रेमभाव ही नित्य और शाश्वत है। परन्तु जिस आधार को प्रेम किया जाता है, वह चिरकाल तक स्थिर नहीं रहता है। वे तो भक्तों के हृदय में भाव के रूप में नित्य वर्तमान हैं। नाम का चैतन्य होने पर उस भाव की मूर्ति अन्तर में प्रतिभासित होती है। उनका भाव घन विग्रह चिन्मय है। उस मूर्ति में उनका दर्शन करना हो तो, उनकी मूर्ति के ध्यान और उनके नाम के जप में तल्लीन होकर उनकी सेवा में आत्म नियोग करना नितान्त आवश्यक है। उस भावघन मूर्ति के दर्शन प्राप्त होने पर भक्तों की विरह व्यथा कम हो जाती है और अन्तर में सच्ची शांति और आनन्द का विकास होता है। जो लोग उनसे सचमुच प्यार करते हैं वे कभी भी अपने अन्तर मन्दिरों में उनके आसन पर किसी दूसरे के नाम रूप को स्थान नहीं देते हैं। भावरूपी प्रभुश्री के नाम का सिद्धदशा में चित्त की निःस्तरंग भूमि में साक्षात्कार होने पर उस मिलन में विछोह नहीं रहता है। अतः भक्तगण कभी भी उनके ध्यान और नामजप से विरत नहीं होंगे। जिस चिंतन और भावना से और जिस संग से इष्ट देव और गुरुदेव की याद आती है, सदैव उसी भाव के साथ चित्त को उसी ओर लगाना चाहिए। जिसे पाने की चाह रखोगे, यदि अन्तर की वृत्तियां तदभिमुखी नहीं हुईं, तो उनके पास पहुंचोगे भी कैसे ? प्राण जिन्हें चाहते हैं, उनकी ओर उन्मुख नहीं होने से वे मिलेंगे भी कैसे ? अतः साधकों को एक ही वृत्ति का अनुशीलन करते हुए एकतत्त्व का अभ्यास करना चाहिए। प्रभुश्री ने कहा है, "मेरे चिंतन, मेरी भावना और

मेरे कार्य में अकपट भाव से आत्म नियोग करने पर तुम लोगों का चित्त सहज ही शुद्ध होगा और मेरी अन्तर्निहित गुरुशक्ति तुम लोगों के भीतर संचारित होगी।" अतः सदैव दत्तचित्त होकर श्रीगुरु की सेवा में तन्मय रहना चाहिए। जो तीव्र संवेग के साथ किसी का चिंतन करता है, परिणामतः वह तत्सारूप्य प्राप्त करता है। उसी प्रकार यदि हम प्रभुश्री का चिंतन और उनके नाम जप में तल्लीन रह सकेंगे, तब उसके परिणामस्वरूप उनका स्वरूप प्राप्त कर धन्य होंगे। भारत पर भगवान की करुणा की अजस्र धारा की सतत वर्षा हो रही है। उन्हें पाने की आन्तरिक इच्छा होने पर और वह इच्छा घात-प्रतिघातों के बीच स्थिर रहने से साधक पर महापुरुषों की कृपा की वर्षा होती है। इसलिए सभी को सदगुरु महापुरुषों के उपदेशों का पालन कर उनके बताए गए मार्ग पर चलना चाहिए।

प्रभुश्री ने देशवासियों से कहा है—"भारत धर्म का देश है। तुम लोग धर्म मार्ग में उन्नति करो। तुम लोग विश्व में गुरु का स्थान प्राप्त करो। पाश्चात्य जगत ने ऐहिक उन्नति प्राप्त की है। तुम लोग आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर उनके साथ अपनी संपदा का आदान-प्रदान करो।

अन्त में पाठकों से अनुरोध है, सभी समवेत रूप से प्रभुश्री के भाव में अनुप्राणित होकर और उनके ध्यान और नाम जप में निमग्न होकर उनके चरणों में आत्म समर्पण करते हुए उनकी मूर्ति के सामने प्रार्थना रत होकर उनकी कृपा आकर्षित करें – यही हमारा एकमात्र निवेदन है।

ॐ नराकार परमब्रह्मः रूपायाऽज्ञान हारिणे,
आत्मज्ञान प्रदानेन तस्मै श्रीगुरवे नमः।

श्रावण पूर्णिमा,
बीरतुंग, पुरी,
दिनांक २० अगस्त, १९६७ संपादक

श्री दुर्गा चरण महान्ति

नीलाचल सारस्वत संघ, पुरी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों की सूची

उड़िया में	मूल्य (रुपयों में)
१. श्री श्री ठाकुर निगमानन्द	२५
२. निगम लहरी	१५
३. निगम तत्त्व	२०
४. श्री श्री निगमानन्द वचनामृत	१६
५. निगम उपदेश	२५
६. नीलाचल वाणी	४०
७. वेदान्त विवेक	१०
८. संसार पथे	२००
९. सारस्वत संघ नीति	१५
१०. तत्त्वमाला	३०
११. श्री श्री निगमानन्द कथा संग्रह (प्रथम भाग)	२०
१२. श्री श्री निगमानन्द कथा संग्रह (द्वितीय भाग)	१५
१३. निगम संगीत	१२
१४. भक्त सम्मेलन	१५
१५. प्रणति शतक (तीन भागों में)	२४
१६. श्री श्री निगमानन्द जीवन प्रसंग (प्रथम भाग)	२५
१७. श्री श्री निगमानन्द जीवन प्रसंग (द्वितीय भाग)	३५

१८.	पिलांक निगमानन्द	५
१९.	भगवान शंकराचार्य	१५
२०,	सती चरित माला (तीन भागों में)	३०
२१.	ब्रह्मचर्य साधन	५
२२.	योगी गुरु	१५
२३.	ज्ञानी गुरु	३०
२४.	प्रेमिक गुरु	३०
२५.	तांत्रिक गुरु	२५

बंगला में

१.	नीलाचल वाणी	५०

हिन्दी में

१.	बच्चों के निगमानन्द	१५

सर्वे भवन्तु सुखिनः,
सर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मा कश्चिद् दुःख भागभवेत ।

"मन के संशय का निवारण ही ज्ञान लाभ का मुख्य उद्देश्य है। मन में संशय रहने से विश्वास पैदा नहीं हो पाता और इसी कारण ज्ञान लाभ नहीं हो पाता है। उदाहरण के तौर पर भगवान के अस्तित्व को ही लें। उन्हें किसी ने नहीं देखा है, विश्वास ही इसका एक मात्र हेतु है। सन्देह दूर होने पर विश्वास आता है। विश्वास आ जाने से ज्ञान स्वतः प्रकाशित होता है। जिस प्रकार स्थूल शरीर की रक्षा के लिए भोजन आवश्यक है, ठीक वैसे ही शूक्ष्म शरीर की रक्षा के लिए ज्ञान आवश्यक है। जैसे स्थूल शरीर की रक्षा के लिए प्रतिदिन उत्तम खाद्य पदार्थ और परिश्रम आवश्यक है, वैसे ही शूक्ष्म शरीर की रक्षा करने और ज्ञानी बनने के लिए भगवत निर्दिष्ट नियमों का पालन करना आवश्यक है, क्योंकि नियम और संयम का पालन किये बिना मन स्थिर नहीं होता है।"

श्रीमत् स्वामी निगमानन्द
परमहंस देव